# वैदिक धर्म

मार्गशीर्ष सं. २००० 
दिसम्बर १९४३

विषयसूची।



संपादक
पं. श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

सहसंपादक
पं. दयानंद गणेश धारेश्वर, B. A.
स्वाध्याय-मण्डल, औंध

वार्षिक मूल्य
म. ऑ. से ५) रु; वी. पी. से ५।=) रु.
विदेशके लिये १५ शिलिंग।

क्रमांक २८८

# स्वाध्याय-मण्डल, औंध ( जि० सातारा ) की हिंदी पुस्तकें ।

| | मू. | डा०व्य० |
|---|---|---|
| १ ऋग्वेद-संहिता | ५) | १) |
| २ यजुर्वेद-संहिता | २) | ॥) |
| ३ सामवेद | ३) | १) |
| ४ अथर्ववेद | ५) | ।॥) |
| ५ काण्व-संहिता । | ३) | ॥=) |
| महाभारत आदिपर्व | ६) | १।) |
| ,, सभापर्व | २॥) | ॥) |
| संस्कृतपाठमाला । | ६॥) | ।॥≈) |
| वै. यज्ञसंस्था भाग १ | १) | ।) |
| **अथर्ववेदका सुबोध भाष्य ।** | | |
| १ द्वितीय काण्ड ,, | २) | ॥) |
| २ तृतीय काण्ड ,, | २) | ॥) |
| ३ चतुर्थ काण्ड ,, | २) | ॥) |
| ४ पंचम काण्ड ,, | २) | ॥) |
| ५ षष्ठ काण्ड ,, | २) | ॥) |
| ६ सप्तम काण्ड ,, | २) | ॥) |
| ७ अष्टम काण्ड ,, | २) | ॥) |
| ८ नवम काण्ड ,, | २) | ॥) |
| ९ एकादश काड ,, | २) | ॥) |
| १० त्रयोदश काण्ड ,, | १) | ॥) |
| ११ चतुर्दश काण्ड ,, | १) | ॥) |
| १२ १५ से १८ तक ४ काण्ड | २॥) | ॥) |
| छूत और अछूत | १।॥) | ॥) |
| भगवद्गीता (पुरुषार्थबोधिनी) | ९) | १॥) |
| महाभारतसमालोचना। (१-२) | १) | ॥) |
| वेदस्वयंशिक्षक (भा. १-२) | ३) | ॥) |
| **योगसाधनमाला ।** | | |
| १ सध्योपासना । | १॥) | ।-) |
| २ प्राणविद्या । | ॥) | ≈) |
| ३ योगके आसन । (सचित्र) | २) | ।≡) |
| ४ ब्रह्मचर्य । | १) | ।-) |
| ५ योगसाधनकी तैयारी । | ।॥) | ।-) |
| यजु अ ३६ शांतिका उपाय | ॥=) | ≡) |
| शतपथबोधामृत | ।) | -) |
| **देवतापरिचय-ग्रंथमाला** | | |
| १ रुद्रदेवतापरिचय | ॥) | =) |
| २ ऋग्वेदमें रुद्रदेवता | ॥=) | ≈) |
| ३ देवताविचार | ≡) | -) |
| ४ अग्निविद्या | १॥) | -) |
| **बालकधर्मशिक्षा** | | |
| १ प्रथम भाग | -) | -) |
| २ द्वितीय भाग | =) | -) |
| ३ वैदिक पाठमाला प्रथम पुस्तक | ≡) | ० -) |
| **आगमनिबंधमाला** | | |
| १ वैदिक राज्यपद्धति | ।-) | -) |
| २ मानवी आयुष्य | ।) | -) |
| ३ वैदिक सभ्यता | ।॥) | ≡) |
| ४ वैदिक स्वराज्यकी महिमा | ॥) | =) |
| ५ वैदिक सर्पविद्या | ॥) | =) |
| ६ शिवसंकल्पका विजय | ॥) | =) |
| ७ वेदमें चर्खा | ॥) | =) |
| ८ वैदिक धर्मकी विशेषता | ॥) | =) |
| ९ तर्कसे वेदका अर्थ | ॥) | =) |
| १० वेदमें रोगजंतुशास्त्र | ≡) | -) |
| ११ वेदमें लोहेके कारखाने | ।-) | -) |
| १२ वेदमें कृषिविद्या | ≡) | ।-) |
| १३ ब्रह्मचर्यका विघ्न | =) | -) |
| १४ इंद्रशक्तिका विकास | ॥) | =) |
| **उपनिषद्-माला।** १ ईशोपनिषद् | १) | ।-) |
| २ केन उपनिषद् | १।) | ।-) |
| १ वेदपरिचय । भाग१-२-३ | ३॥) | ।॥) |
| २ वेदप्रवेश | ४) | ।॥) |
| ३ गीता-लेखमाला १ से ६भाग | ५) | १॥) |
| ४ गीता-समीक्षा | =) | -) |
| ५ वेदोपदेश । | १।) | ॥) |
| ७ भगवद्गीता (प्रथम भाग) (मायानन्दी भाष्य) | १) | ।-) |
| ६ दैवत-संहिता १ म भाग | ५) | १॥) |

# वैदिकधर्म

क्रमाङ्क २८८

२४ : : : : अङ्क १२

मार्गशीर्ष संवत् २०००

दिसेंबर १९४३

## विश्वरूप देव ।

देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः
पुपोष प्रजाः पुरुधा जजान ।
इमा च विश्वा भुवनान्यस्य
महद् देवानां असुरत्वं एकम् ॥

( ऋ. ३।५५।१९ )

( त्वष्टा ) विश्व की रचना करनेवाला (सविता=प्रसवित्ता) विश्व को अपने अन्दर से प्रसवनेवाला देव ( विश्व-रूपः ) सब रूप धारण करता है, यही ( पुरु-धा ) अनेक प्रकार से सृष्टी का ( जजान ) प्रजनन करता और ( प्रजाः पुपोष ) सब प्रजाओं का पालनपोषण भी करता है। ( इमे विश्वा भुवनानि ) ये सब भुवन ( अस्य ) इस के ही रूप हैं। ( देवानां ) सूर्यचन्द्रादि देवों को ( असु-र-त्वं ) जीवन प्रदान करनेवाला ( एकं महत् ) एक ही बडा यह देव है। यही सब का उपास्य और संसेव्य है।

# एकत्व, द्वैत और त्रैत।

धर्म-सिद्धान्त के विषय में जब विचार चलता है तब एकत्व ( अ-द्वैत ), द्वैत और त्रैत के विषय में लोग झगडते रहते है। इसलिये इस विषय में वेद का अभिप्राय देखना योग्य है।

## अद्वैत मत।

' एक सत् ' विप्रा बहुधा वदन्ति।

( ऋ १।१६४।४६ )

' एक सत् है, ' ज्ञानी लोग उसी एक सत् का वर्णन अनेक प्रकार से करते है। इस मन्त्र में ' एक सत् ' का निःसंदेह वर्णन है। यही ' अ-द्वैत ' सिद्धान्त है। अ-द्वैत, निर्द्वन्द्व ये पद ठीक नहीं हैं। ' एक-सत् ' किंवा 'सदैक्य' यह शब्द प्रयोग अच्छा है। एक ही सत् है, यह सिद्धान्त यहां कहा है।

## द्वैत मत।

द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे। मूर्तं चैवाऽमूर्तं च।

( शतपथब्राह्मण १४। बृ० उप० २।३।१ )

' ब्रह्म के दो रूप है। एक मूर्त और दूसरा अमूर्त। ' मूर्त को क्षर और अमूर्त को अक्षर कहते हैं। जड और चेतन ऐसा भी कहते हैं। क्षर-अक्षर, जड-चेतन, मूर्त-अमूर्त ये दो अनुभव हैं परन्तु ये दो भिन्न वस्तु नहीं। एक ही ब्रह्म से आनेवाले ये दो अनुभव हैं।

जैसे एक ' मिश्री ' में ' रवा ' और ' मीठास ' ये दो अनुभव आते हैं। रवा और मीठास दो पृथक् सत्ताएं नहीं है, परन्तु एक ही सत्ताके ये दो विभिन्न अनुभव हैं। ' रवेमें क्षरत्व, जडत्व, तथा मूर्तत्व है। ' मीठास ' में अमूर्तत्व, अक्षरत्व है। इसी तरह एक ही ब्रह्म के जड-चेतन ये दो अनुभव है। दोनों मिलकर एक ही ब्रह्म है।

## त्रैत मत।

जड-चेतन तो द्वैत-मत के वर्णन में बताये हैं। अब तीसरा जीवभाव बताना है। यह ' अंश ' भाव है। गीता में कहा है—

मम एव अंशः जीवभूतः।

( गीता १५।७ )

' मेरा-परमेश्वर का-अंश जीव हुआ है। ' अर्थात् ' अंश ' जीव है और ' अंशी ' परमेश्वर है। खण्डित जीवभाव है और अखंडित ईश्वर-सत्ता है।

इस लेख का तात्पर्य इतना ही है कि ' एक ही ब्रह्म है ' वही एक मात्र ' सत् ' है। जिस को सत् कहा जाय ऐसी कोई दूसरी वस्तु यहां नहीं है। जो एक सत् है वही ब्रह्म, आत्मा, परमेश्वर आदि नामों से वर्णन किया जाता है।

इसी एक ब्रह्म के, एकही सत् के दो रूप हैं, जो ' जड-चेतन ' कहे जाते हैं। ये दो पृथक् वस्तु नहीं हैं। एक ब्रह्म से अनुभव में आनेवाले ये दो अनुभव हैं। तीसरा अनुभव ' अंशभाव का है। यही जीवभाव है। अर्थात् जड, चेतन और जीव ये तीन भाव एक ही ब्रह्म के हैं। अखण्ड सत्ता का नाम ' ब्रह्म ' है और अंशभाव का नाम जीव है। अतः श्वेताश्वतर उपनिषद् में कहा है—

त्रयं यदा विन्दते ब्रह्ममेतत्।

( श्वे० उ. )

तीनों का एकत्र भाव ही ब्रह्मभाव है और एक ब्रह्म के उक्त तीन अनुभव त्रैतवाद कहा जाता है। वास्तव में सत् एक ही है उसी से तीन अनुभव होते हैं।

शब्दों का व्यर्थ झगडा क्यों किया जाता है ?

इस तरह अद्वैत, द्वैत और त्रैत का मूल आधार एक ही सत्, एक ही ब्रह्म है।

# विश्वरूप ईश्वर।

( लेख १५ वाँ ) ×

इतने लेखों से यह सिद्ध हुआ कि, इस विश्व में एक ही ' सत् तत्त्व ' है, उस एक ही सत् तत्त्व के ये इस विश्व में दीखनेवाले नाना रूप हैं, जिनके संघात का नाम ही 'विश्व' है। यही ईश, ईश्वर, परमेश्वर, महेश्वर, आत्मा, परमात्मा, ब्रह्म, परब्रह्म आदि नामों से वैदिक धर्म के नाना ग्रंथों में प्रसिद्ध है।

इसका तात्पर्य यही है कि, यह विश्व ही ईश्वर का रूप है। इस कारण वेद में ईश्वर को ' विश्वरूप ' ही कहा है। वेद के नाम सार्थ होते हैं, अतः यदि वेद में ईश्वर को ' विश्वरूप ' कहा है, तब तो इस विश्व का जो रूप है, वही ईश्वर का रूप है, इस में किसी तरह का संदेह करने की आवश्यकता नहीं है। इस विषय के वेद मंत्र अब देखिये--

## सृष्टि में प्रजापति के नामरूप।

( अथर्वा। स्कम्भः, आत्मा वा। भुरिक् )

यत् परमं अवमं यच्च मध्यमम्
प्रजापतिः ससृजे विश्वरूपम्।
कियता स्कम्भः प्र विवेश तत्र
यन्न प्राविशत् कियत् तद्बभूव ॥

( अथर्व. १०।७।८ )

' जो ( परमं ) उच्चस्थान में स्थित अर्थात् द्युलोक में रहनेवाला, जो ( मध्यमं ) जो मध्यस्थान में स्थित अर्थात् अन्तरिक्ष लोक में रहनेवाला और जो ( अवमं ) निम्नस्थान में स्थित अर्थात् भूलोक में रहनेवाला ( विश्वरूपं ) विश्व का रूप है, अर्थात् यहां जो कुछ भी रूप है, वह सब का सब रूप प्रजापति परमेश्वरने ( ससृजे ) उत्पन्न किया है। इस विश्व में सब का आधारस्तंभ यह ईश्वर ( तत्र कियता प्रविवेश ) कितना प्रविष्ट हुआ है, और जिस में वह प्रविष्ट नहीं हुआ वह कितना अवशिष्ट रहा है ? '

इस मन्त्र में ( प्रजापतिः विश्वरूपं ससृजे ) प्रजापति परमेश्वर ने यह विश्वरूप, नानारूपोंवाला संसार, उत्पन्न किया है और ( तत्र प्रविवेश ) उस में वह प्रविष्ट हुआ है, ऐसा कहा है।

तत् सृष्ट्वा तदेवाऽनुप्राविशत्।
तदनुप्रविश्य सच्च त्यच्चाभवत्।. सत्य चानृत च।

( तै० उ० २।६ )

' इस विश्व का सृजन करने के पश्चात वह प्रजापति परमेश्वर उसमें प्रविष्ट हुआ। उस में प्रविष्ट होकर सत और असत् जो कुछ भी है वह सब बन गया। ' यह उपनिषद का कथन इस मंत्र के आधारपर अधिष्ठित है। अस्तु। प्रजापति परमेश्वरने संपूर्ण विश्व निर्माण किया और वह उसमें प्रविष्ट होकर विश्वरूप बन गया है, अत जो विश्व है, वही परमेश्वर का रूप है, इस में संदेह नहीं है। इस विषय में तैत्तिरीय आरण्यक का कथन मननीय है --

प्रजापतिः प्रजा असृजत। ताः सृष्टा समश्लिष्यन्।
ता रूपेणाऽनुप्राविशत्। तस्मादाहुः। रूपं वै
प्रजापतिरिति। ता नाम्नाऽनुप्राविशत्। तस्मा-
दाहुः। नाम वै प्रजापतिरिति।

सायनभाष्य-- प्रजापतिना याः प्रजाः सृष्टाः ताः सर्वाः संश्लिष्टा अभवन्। तदा प्रजापतिर्विचार्य स्वयमेव रूप-विशेषाकारेण नामविशेषाकारेण तासु प्रजासु प्रविष्टः। अत एव शास्त्रज्ञा नामरूपयोः सर्ववस्तुव्याप्तिं दृष्ट्वा प्राजापत्या-त्मकं तयोराहुः। ( तै. आ. ३।२।७ )

' प्रजापति परमेश्वरने प्रजा उत्पन्न की, परन्तु वह सब मिली जुली थी। पृथक् पहचानी नहीं जाती थी। इस का विचार प्रजापतिने किया, और वह अपने निज नाम तथा रूप के साथ उन प्रजाओंमें प्रविष्ट हुआ। तब से सब प्रजाएं नामरूपधारी हुईं। अत. कहते हैं कि, नाम और रूप प्रजापति का ही है। '

इस तरह नाम और रूप जितना है, वह प्रजापति का ही है। जो भी नाम है वह प्रजापति का नाम है और जो

× चौदहवां लेख क्रमाङ्क २८७ में देखें।

भी रूप हैं वह प्रजापतिका ही रूप है। यह 'रूप' पद 'गंध, रस, स्पर्श, शब्द' का उपलक्षण है। अर्थात् यहां जो नाम है, तथा जो शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गंध है, वह सब प्रजापति का ही निज है। इतना स्पष्ट प्रतिपादन होने के पश्चात् और अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। इस से स्पष्ट हो जाता है कि, सब विश्वरूप प्रजापति का ही रूप है।

यहां ( प्रजापतिः विश्वरूपं ससृजे ) प्रजापतिने यह सब विश्वरूप सृजन किया, ऐसा जो कहा, वह कुम्हार घडा उत्पन्न करता है वैसा नहीं है, 'स्वयं विश्वरूप बना' इस अर्थ का यह सृजन है। इस विषय की शंका को दूर करने के लिये ही नामरूप का वर्णन ऊपर किया है। वह ध्यान में धारण करने से सृजन का आशय ध्यान में आ सकता है। प्रजापति स्वयं ही विश्वरूप हो गया, यह आशय यहां है। जिस तरह मिट्टी घडे के रूप में ढलती है, सुवर्ण जेवरों के शकलों में ढला होता है, उसी तरह परमेश्वर विश्व के नाना रूपोंमें रहा है। यही निज नामरूप का विश्व के नाना पदार्थों को प्रदान करना है। सुवर्ण नाना जेवरों के रूपों में रहकर नाना नामों का धारण करता ही है। इसी तरह यहां समझना चाहिये। इस विषय का अधिक स्पष्टीकरण निम्न लिखित मन्त्र में है, जिसे पाठक अब देख सकते हैं-

## सब मिलकर एक ही सत् है।

( कुत्सः । आत्मा । जगती )

यदेजति पतति यच्च तिष्ठति,
प्राणत्, अप्राणत्, निमिषत्, च यत् भुवत्।
तत् दाधार पृथिवी विश्वरूपम्,
तत् सम्भूय भवत्येकं एव ॥

( अथर्व १०।८।११ )

'( यत् एजति ) जो हिलता है, ( पतति ) जो उडता है ( यत् च तिष्ठति ) जो ठहरा है, ( प्राणत् ) जो प्राण धारण करता है, ( अप्राणत् ) जो प्राण धारण नहीं करता, ( निमिषत् ) जो आंखों की पलकें हिलाता है, ( यत् च भुवत् ) जो होता है, जो बनता है ( तत् विश्वरूपं ) वह सब विश्वरूप है, वही पृथ्वी आदि का धारण करता है। ( तत् संभूय ) वह सब मिल कर ( एकं एव भवति ) एक ही तत्त्व होता है।' अर्थात् इस विश्व में कितने भी विविध पदार्थ हों, पर वे सब मिलकर एक ही तत्त्व, एक ही सत्, होता है। यहां विश्व में नानापदार्थों की प्रतीति होती है, तथापि वे सब पदार्थ मिलकर एक ही सत्तत्व है, यह बात स्पष्टता के साथ कही है।

यहां पदार्थों की विविधता, उन का पृथक् निर्देश करके ही कही है। 'एजति' पद से जंगम पदार्थों का बोध होता है, 'पतति' से भी वही बोध मिलता, 'तिष्ठति' से स्थावर पदार्थों का बोध हो रहा है, 'प्राणत् और निमिषत्' पदों से जीव जगत् का बोध होता है, 'भुवत्' पद से जन्म लेनेवाले, उत्पत्तिवाले, सभी पदार्थों का बोध होता है। इस तरह स्थावर जंगम, सजीव निर्जीव, स्थिर और गतिमान सब एक ही तत्त्व के रूप हैं। जो लोग समझते हैं कि, जीव अन्य संसार से सर्वथा पृथक् हैं, वे गलती करते हैं, ऐसा यहां इस मन्त्रने कहा है। सजीव और निर्जीव दोनों मिलकर एक ही 'सत्' होता है। इसी का नाम 'सदैक्यवाद' है, यही 'सर्वेश्वरवाद' है।

## बल बढानेवाला ज्ञान।

( विश्वामित्रो गाथिनः । बृहस्पतिः । गायत्री )

वृषभं चर्षणीनां विश्वरूपं अदाभ्यम्।
बृहस्पतिं वरेण्यम् ॥

( ऋ० ६।६२।६ )

( चर्षणीनां वृषभं ) मानवों में बल देनेवाले, ( अदाभ्यं ) न दबनेवाले ( वरेण्यं ) श्रेष्ठ ( विश्वरूपं बृहस्पतिं ) विश्वरूपी ज्ञानपति परमेश्वर की बल की प्राप्ति के लिये प्रार्थना करते हैं।

बृहस्पति ज्ञान का स्वामी है, परमेश्वर ही सच्चा ज्ञानपति बृहस्पति है। वह विश्वरूपी है, अर्थात् इस संसार में जो भी कुछ है वह सब उसीका रूप है। जो है ऐसा कहा जाता है, वह सब उसी का स्वरूप है। यहां ज्ञानपति परमेश्वर को 'विश्वरूप' कहा है। विश्व में जो है वह परमेश्वर ही है। मानवों का बल बढानेवाला विश्वरूपी ईश्वर है ऐसा यहां कहा है। व्यक्तिभाव से निर्बलता होती है, समष्टिभाव से ही बल बढता है। प्रत्येक मनुष्य जो अपने आपको व्यक्तिभाव में अनुभव कर रहा है, और निर्बल मान रहा है,

वही विश्वरूप अनुभव करेगा, तब उसकी निर्बलता दूर होगी, और वही बलवान् होनेका अनुभव करेगा। यही 'अल्प और भूमा' पदों से उपनिषद में कहा है—

यो वै भूमा तत् सुखं, नाल्पे सुखं अस्ति, भूमैव सुखम्।
(छां उ. ७।२३।१)

'जो व्यापक है वह सुख है. अल्प सुखकारक नहीं है। व्यापक अवस्था ही सुख देनेहारी है।' विश्वरूपस्थिति सर्व-व्यापक स्थिति है. अतः वह सुखकारक, बलवर्धक और आनन्ददायक है। व्यक्ति सत्ता अल्पत्व बतानेवाली है, अतः वह दुःखदायी है। अल्पत्व के साथ ही मृत्यु लगा रहता है। भूमा अमर अवस्था है। इस तरह विश्वरूप स्थिति श्रेष्ठ है—

| | |
|---|---|
| विश्वरूप ( भूमा ) | व्यक्तिरूप ( अल्प ) |
| सर्वरूप | अंशरूप |
| वृषभ ( बलवर्धन ) | निर्बल |
| अदाभ्य ( न दबना ) | दबना |
| वरेण्य ( वरिष्ठता ) | कनिष्ठता |
| बृहस्पति ( ज्ञानी ) | अज्ञान, मिथ्या ज्ञान |

मंत्र के पदों का विचार करने से इस तरह विश्वरूपभाव से शक्तिवर्धन और व्यक्तिरूप होने से शक्तिकी क्षीणता होने का ज्ञान हो सकता है। भगवद्गीता मे भगवान् श्रीकृष्ण विश्वरूप अवस्था का अनुभव करते थे, अत. सामर्थ्यवान् थे और अर्जुन अपनी स्थूल शरीरावस्था में ही था, वह अपनी विश्वरूप सत्ता को नहीं जानता था, इसलिये निर्बलता का अनुभव कर रहा था। इसी तरह सब पाठक समझें। प्रत्येक पाठक अपने वैयक्तिक शरीर तक के ही जीवन का अनुभव जब तक करता रहेगा, तब तक निर्बलता का अनुभव करेगा, परन्तु जब वह अपने विश्वरूप व्यापक भाव को जानेगा और अनुभव करेगा, तब वही अपने आपको पूर्ण सामर्थ्य-वान् अनुभव करेगा। हरएक पाठक का अनुष्ठान से,'वेद-मंत्रों के मनन से तथा वैदिक तत्त्वज्ञान को अपनाने से यह अधिकार हो सकता है। हरएक का महाकारण शरीर विश्व-व्यापक ही है, परन्तु प्रत्येक को इसका ज्ञान नहीं है। इस विषय में देखिये—

( अयास्य आंगिरसः। बृहस्पतिः। त्रिष्टुप् )

यदा वाजं असनद् विश्वरूपं,
आ द्यां अरुक्षत् उत्तराणि सद्म।
बृहस्पतिं वृषणं वर्धयन्त,
नाना सन्तः बिभ्रतो ज्योति आसा॥
( ऋ. १०।६७।१०; अथर्व २०।९१।१० )

साधक ( यदा ) जब ( विश्वरूपं वाजं असनत् ) विश्व-रूपी बल का धारण करते हैं, तब ( द्यां उत्तराणि सद्म अरुक्षत् ) स्वर्ग और उसके भी परे के स्थानोंपर वे आरोहण करते हैं, तब वे ही ( वृषभं बृहस्पतिं ) बलवर्धक ज्ञानपति परमेश्वर की ( आसा वर्धयन्तः ) अपने मुख से, अपनी अनुभवी वाणी से यथार्थ स्तुति करते हैं, और ( नाना सन्तः ) ये अनेक होनेपर भी वे सब विश्वरूपी ( ज्योतिः बिभ्रतः ) एकही तेज का धारण करते हैं।

इस मन्त्रमें कहा है कि, विश्वरूपी ज्ञानपति परमेश्वर का ज्ञान होना ही एक बडा बल प्राप्त होना है। अपने अल्पत्व की मर्यादा इस ज्ञान से विनष्ट होती है और अपने विभुत्व का अनुभव आता है। यही ईश्वरीय भाव की प्राप्ति है। यही भूमा अवस्था का अनुभव है। विश्वरूप भाव से बल का संवर्धन और व्यक्तिभाव से निर्बलता होती है। स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण ऐसे चार देह प्रत्येक मनुष्य के रहते है। व्यक्तिनिष्ठ मनुष्य अपने स्थूल देह का अभिमानी होता है, यह संपूर्ण वैयक्तिक मर्यादाओंसे अत्यंत मर्यादित अवस्था है। योगसमाधि में, योगनिद्रा में भी वैयक्तिक मनका लय व्यापक मनमें होता है। इस 'कारण-देह' में कार्य करनेवाले योगी अपनी बडी व्यापक सत्ता का अनुभव प्राप्त करते हैं। इसी तरह जो लोग महाकारण देह पर कार्य करते रहते हैं, वे भगवान् श्रीकृष्ण जैसे लोकोत्तर पुरुषोत्तम विश्वरूप बनकर कार्य करते हैं। इनको कोई मर्यादा बाधित नहीं कर सकती।

विश्वरूप सर्वव्यापक महाकारण देह पर कार्य करने से बडी शक्ति मिलती है यही ( विश्वरूपं वाजं ) विश्वरूपी शक्ति यहां कही है। स्वर्गलोक, द्युलोक से भी परे वे अपनी शक्ति से पहुंचते हैं। अनेक या नाना मानव रहनेपर भी ये एकत्व का अनुभव करते और वैसा व्यवहार भी करते हैं और अखण्ड दिव्य ज्योती को ये ही प्राप्त करते हैं।

( प्रजापतिर्वैश्वामित्रः, प्रजापतिर्वाच्यो वा, विश्वामित्रो गाथिनो वा। इन्द्रः। त्रिष्टुप् )

आतिष्ठन्तं परि विश्वे अभूषन्
श्रियो वसानश्चरति स्वरोचिः ।
महत् तद् वृष्णो असुरस्य नामा
विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ ॥

( ऋ. ३।३८।४; अथर्व ४।८।३; वा. य ३३।२२ )

अथर्ववेद में इस का पाठ ' श्रियं वसानः ' है और ' अथर्वाङ्गिरसः । विश्वरूप । त्रिष्टुप् । ' यह ऋषि-देवता-छन्द है । इस मन्त्र का यह अर्थ है-

( आतिष्ठन्तं ) सर्वत्र स्थिर रहनेवाले इस इन्द्र की, इस प्रभु की ( विश्वे परि अभूषन् ) सब देव शोभा बढा रहे हैं । यह ( स्वरोचिः ) स्वयं-प्रकाशी प्रभु ( श्रियः, श्रियं वसानः ) अपनी शोभा को धारण करता हुआ ( चरति ) सर्वत्र गति करता है; सबको प्रेरणा करता है । इस ( वृष्णः असु-रस्य ) बलवान् जीवन-प्रदाता प्रभु का ( तत् महत् नाम) वह बडा यश है, अर्थात् जो यश है वह सब उसी का है । यह ( विश्व-रूपः ) विश्वरूपी प्रभु ( अमृतानि तस्थौ ) सब अमर स्थानों को, नाना सुखों को अपने अन्दर धारण करके सर्वत्र स्थिर रहता है । संपूर्ण विश्वके रूप का धारण करनेपर भी उस में यत्किंचित् भी चञ्चलता नहीं होती, इतना उस का सामर्थ्य है ।

इस मन्त्र में कहा है कि, इन्द्र विश्वरूपी है। अर्थात् जो विश्व में रूप है वह सब इन्द्र का है । यहां इन्द्र का अर्थ प्रभु है, सब का स्वामी है । इस प्रभु के भूषण इस विश्व में दीखनेवाले सब पदार्थ हैं अर्थात् सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, वायु, जल, वनस्पति, प्राणी आदि सब पदार्थ उसी की शोभा बढा रहे हैं । सब अमर भाव उसी में है ।

## विश्वरूप के ज्ञान से आरोग्य, दीर्घायु और सुप्रजा की प्राप्ति ।

( ब्रह्मा । ऋषभः । त्रिष्टुप् )

पिशङ्गरूपो नभसो वयोधा
ऐन्द्रः शुष्मो विश्वरूपो न आगन् ।
आयुरस्मभ्यं दधत् प्रजां च
रायश्च पोषैरभि नः सचताम् ॥

( अथर्व. ५।४।२२; उत्तरार्ध अथर्व. १८।४।६२ )

'( नभसः पिशङ्गरूपः ) आकाश के समान तेजस्वी रंग-रूपवाला ( वयो-धाः ) बल देनेवाला ( विश्व-रूपः ऐन्द्रः शुष्मः ) विश्वरूपी इन्द्र का प्रभावी सामर्थ्य ( नः आगन् ) हमारे पास आगया है, वह ( अस्मभ्यं ) हमें ( आयुः ) दीर्घ आयुष्य, ( प्रजां ) उत्तम संतति, ( दधत् ) देता है ( पोषैः रायः च ) और सब प्रकार की पोषण शक्तियों के साथ सब धन ( न. अभि सचन्तां ) हमें देवे । '

यहां विश्वरूपी इन्द्र का ही वर्णन है । साधकों को वह विश्वरूपी इन्द्र का सामर्थ्य प्राप्त होता है, अर्थात् वे विश्व-रूपी सामर्थ्य से युक्त होते हैं, वे स्वयं विश्वरूप बनते हैं, यह भी यहां कहा है । महा कारण शरीर संपूर्ण विश्व का एक ही है, पर उस विश्वरूपी शरीर पर कार्य करने की शक्ति प्रत्येक में नहीं जाग्रत हुई होती । वह जिसकी जाग्रत होती है वह सिद्ध पुरुष सर्व साधारण अज्ञ जन स्थूल शरीरपर कार्य करने के समान, उस महाकारण शरीरपर कार्य करता है। यही मुक्ति की स्थिति है। यही भूमा अवस्था में अवस्थान है । यही नर का नारायण होना है ।

इस मंत्र में यह विश्वरूपी सामर्थ्य प्राप्त होने से ( १ ) दीर्घायु, ( २ ) सुप्रजा और ( ३ ) पोषक धन प्राप्त होता है, ऐसा कहा है । यही फल ( अथर्व १०।२।२९ में ) ' ब्रह्म च ब्राह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः ' ब्रह्म तथा अन्य देव उस ब्रह्मज्ञानी को ( १ ) उत्तम इंद्रिय, ( २ ) दीर्घायु और ( ३ ) सुसंतति देते हैं, इन शब्दों से कहा है । ब्रह्म-ज्ञान का यही फल है । इस विषय में इन मन्त्रों को देखने से कोई संदेह नहीं रहता ।

( प्रजापतिर्वैश्वामित्रो, वाच्यो वा । विश्वेदेवाः । त्रिष्टुप् )

त्रिपाजस्यो वृषभो विश्वरूप
उत त्र्युधा पुरुध प्रजावान् ।
त्र्यनीकः पत्यते माहिनावान्
स रेतोधा वृषभः शश्वतीनाम् ॥

( ऋ. ३।५६।३ )

( त्रि-पाजस्यः ) भूमी अन्तरिक्ष और द्युलोक ये जिसके तीन पेट हैं, ऐसा एक ही ( वृषभः विश्वरूपः ) बलवान् देव विश्वरूपी है। ( उत प्रजावान् ) और यही सब प्रजाओं से युक्त है अर्थात् सब प्रजाएं, सब प्राणी, उसी के हैं। यह

( त्रि-ऊधाः ) स्थूल सूक्ष्म कारण ऐसे तीनों शरीरों का पोषण करनेवाला अर्थात् तीन प्रकार के दुग्धाशयों से युक्त है, वह ( पुरु-ध ) सब का अनेक प्रकार से धारण करनेवाला है। यह ( महिना-वान् ) महत्व से युक्त श्रेष्ठ प्रभु ( त्रि-अनीकः पत्यते ) तीन बलों से युक्त होकर सर्वत्र गति करता है, अन्दर रहकर सब का संचालन करता है। ( सः वृषभः ) वह बलवान् है और ( शश्वतीनां रेतो-धाः ) शाश्वत प्रजाओं को वीर्य का प्रदान करनेवाला है।

इस मंत्र में विश्वरूपी एक देव है ऐसा कहा है। जो विश्वरूप होगा वह एक ही हो सकता है, इसमें संदेह नहीं हो सकता, क्योंकि सब विश्व ही जिसका रूप है ऐसे अनेक देव होना असंभव ही है। विश्व एक है और उसी कारण विश्वरूप देव भी एक ही है। भूलोक, अन्तरिक्ष लोक और द्युलोक ये इसके पेट है अर्थात् इन तीन पेटों में ही सब कुछ समाया है। इसीसे स्पष्ट होता है कि, सब मिलकर एक ही देव है। स्थिरचर सब रूप इसी का है और इसको छोडकर और कुछ भी इससे पृथक् नहीं रहता।

( प्रजापतिर्वैश्वामित्रः, वाच्यो वा। विश्वेदेवाः। त्रिष्टुप् )

देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः
पुपोष प्रजाः पुरुधा जजान।
इमा च विश्वा भुवनान्यस्य
महद् देवानां असुरत्वं एकम्॥

( ऋ ३।५५।१९ )

( त्वष्टा सविता देवः ) संसार की निर्मिती करनेवाला, संसारको प्रसवनेवाला देव ( विश्वरूपः ) विश्वरूप है अर्थात् उस का रूप विश्व ही है, सब विश्व ही उस का देह है। वही ( प्रजाः जजान ) प्रजाओं का प्रजनन करता और ( पुरुधा पुपोष ) प्रजाओंका अनेक प्रकार से पोषण भी करता है। ( इमा विश्वा भुवनानि ) ये सब भुवन (अस्य) इस प्रभुके ही रूप हैं। ( देवानां ) सब देवों का ( महत् एकं ) यही बडा एक ( असु-र-त्वं ) जीवनसत्त्व प्रदान करनेवाला है।

यह मन्त्र विशेष महत्त्व का ज्ञान दे रहा है। 'त्वष्टा' का अर्थ तर्क्षाण है, जो नाना प्रकार के आकार और रूप बनाता है। ' सविता ' का अर्थ प्रसवनेवाला है, अपने अन्दर से नाना प्रकार के देहोंका प्रसव जिस से होता है। जो विश्वरूपी देव है वही अपने अन्दरसे नाना प्रकार के रूप निर्माण करता है, और उन सब का पालनपोषण भी वही करता है, इस कारण ये सब भुवन तथा सूर्यचन्द्रादि देव इस प्रभु के ही अंग और अवयव हैं। सब देवताओं में जो विशेष सत्त्व है वह सब इसी प्रभुसे उनमें संचारित हो रहा है। क्योंकि सब को प्रसवनेवाला यही एक प्रभु है। प्रभु के विश्वरूप का निर्णय करनेवाला यह मंत्र है, अतः यह विशेष महत्व का है।

( यमी। यमः। त्रिष्टुप् )

.. जनिता .देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः।
न किः अस्य प्र मिनाति व्रतानि।

( ऋ १०।१०।५, अथर्व १८।१।५ )

[ अथर्ववेद में इस का ऋषि अथर्वा है ] ( त्वष्टा सविता ) रचना करनेवाला, सबका प्रसविता और (जनिता) सब का जनक ( देवः ) देव ( विश्वरूपः ) विश्वरूपी है। जो यह विश्वका रूप है वह उसी का रूप है। ( अस्य व्रतानि ) इसके नियमों का ( न किः प्र मिनाति ) कोई बिगाड कर नहीं सकता।

यहां ' त्वष्टा, सविता, जनिता, विश्वरूपः देवः ' ये पद अत्यंत महत्त्व के हैं। इन में ' जनिता ' पद जनक के अर्थ में है, अन्य पदों का अर्थ पूर्व मन्त्रके स्पष्टीकरण में बताया ही है। यह विश्वरूप देव इतना सामर्थ्यवान् है कि, इस के नियमों का कोई उल्लंघन कर नहीं सकता।

( मेधातिथिः काण्वः। आप्रीयः। गायत्री )

इह त्वष्टारं अग्रियं विश्वरूपं उपह्वये।
अस्माकं अस्तु केवलः॥

( ऋ. १।१३।१० )

( इह ) इस प्रार्थना करने के समय ( अग्रियं ) मुख्य ( विश्वरूपं त्वष्टारं ) विश्वरूपी कारीगर की मैं (उपह्वये) स्तुति करता हूँ। ( वह केवलः अस्माकं अस्तु ) वह केवल हमारा सहायक होवे।

यहां ' विश्वरूप त्वष्टा ' देव का वर्णन है। ' केवल ' पद यहां महत्त्व का है, इस का अर्थ अकेला एक, जिस के बराबर दूसरा कोई नहीं है। परिपूर्ण, असीम अकेला जो है वही ' केवल ' है। अग्रियं ' पद का अर्थ सब में मुख्य,

प्रमुख, अग्रगण्य है । एक ही प्रभु इन विशेषणों के लिये योग्य है और यह मुख्य अकेला ही एक प्रभु 'विश्वरूप' है ।

( गृत्समदः शौनकः । रुद्रः । त्रिष्टुप् )
अर्हन् बिभर्षि सायकानि धन्व
अर्हन् निष्कं यजतं विश्वरूपम् ।
अर्हन् इदं दयसे विश्वं अभ्वम्
न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति ॥

( ऋ. २।३३।१० )

( अर्हन् धन्व सायकानि बिभर्षि ) तू योग्य होनेके कारण ही धनुष्य और बाण धारण करता है और युद्ध करता है । तू ( अर्हन् ) योग्य है इसीलिये तूने (यजतं विश्वरूपं निष्कं) पूज्य विश्वरूपी हार धारण किया है । तू ( अर्हन् ) योग्य है इसीलिये ( अभ्वं विश्वं दयसे ) इस विशाल विश्वका रक्षण करता है । हे रुद्र ! ( त्वत् ओजीयः न वै अस्ति ) तुझसे अधिक बलवान् कोई भी नहीं है ।

सूर्यचन्द्रादिकों के सुवर्णालंकार ईश्वरने धारण किये हैं वही विश्वरूपी हार का धारणकर्ता है । जिस परमात्माने विश्वरूप आभूषण धारण किये हैं, वह बडा सामर्थ्यवान् प्रभु है, और उससे अधिक शक्तिशाली दूसरा कोई भी नहीं है ।

ज्योतिरसि विश्वरूपं विश्वेषां देवानां समित् ।

( वा. य. ५।३५ )

( विश्वेषां देवानां सं-इत् ) सब देवों का एकत्रीकरण ही ( विश्वरूपं ज्योतिः ) विश्वरूप तेज है ।

संपूर्ण जितने देव यहां हैं वे सब देव मिलकर ही यह विश्व होता है, इस विश्व के सब पदार्थ नाना प्रकार के देव हैं । ये सब देव मिलकर ही एक विश्वरूपी तेज होता है । यही विश्वरूपी तेज परमेश्वर का तेज है । सब देव परस्पर विभिन्न होनेपर भी उनमें जो अभिन्न एक सत्ता है वही विश्वरूपी प्रभु है । इसी में सब देवताएं समायी हैं ।

## विश्वरूप वस्त्र ।

विश्वरूपी वस्त्र की उपमा निम्न लिखित मन्त्रमें कही है-

सुजातो ज्योतिषा सह शर्म वरूथं आसदत्स्वः ।
वासो अग्ने विश्वरूपं सं व्ययस्व विभावसो ॥

( वा. य. ११।४० )

हे अग्ने ! तू ( ज्योतिषा सह सुजातः ) तेजके साथ प्रकट हुआ है, तेरा ( स्वः वरूथं शर्म ) अपना प्रकाश बलशाली और सुखदायी है, हे स्वयंप्रकाशी अग्ने ! तू ( विश्वरूपं वासः संव्ययस्व ) विश्वरूपी वस्त्र बुनकर तैयार कर ।

विश्वरूप एक वस्त्र है ऐसा यहां कहा है । वस्त्र में ताना और बाना रहता है, वैसे ये देव यहां हैं । ये सब देव ब्रह्म से उत्पन्न होने के कारण ' ब्राह्म ' कहे जाते हैं । ब्रह्म स्वयं कपास के स्थान पर है, उस कपास से बने तानेबाने के समान सब देव हैं । इनका यह विश्वरूपी वस्त्र है । जैसा कपास वस्त्ररूप बनता है, वैसा ही ब्रह्म देवतारूप बनकर विश्वरूप बनता है ।

| | |
|---|---|
| ब्रह्म | रुई ( कपास ) |
| \| | \| |
| ३३ देवता ( ब्राह्माः ) | सूत्र ( ताना+बाना ) |
| \| | \| |
| विश्व | वस्त्र |

वस्त्र की उपमा से यहां जिसका वर्णन किया है, वह बात इस चित्र से स्पष्ट हो सकता है । तथा और देखिये-

आदित्यं गर्भं पयसा समङ्धि
सहस्रस्य प्रतिमां विश्वरूपम् ।

( वा. य. १३।४१ )

(सहस्रस्य प्रतिमां) सहस्रों पदार्थों की जैसी एक प्रतिमा होती है, वैसी ही ( विश्वरूपं ) विश्वरूप एक ही प्रतिमा है । इस का ( आदित्यं गर्भं ) सूर्य गर्भ है उसको ( पयसा समङ्धि ) दूध की आहुतियों से सिंचित कर ।

सहस्रों वस्तुओं की मिलकर एक ही प्रतिमा जो होगी वही यह विश्वरूप है । अर्थात् इसमें सहस्रावधि पदार्थ हैं तो भी सब मिलकर एक ही प्रतिमा है । यहां यद्यपि वस्तु वस्तु में भेद दीखता है, तथापि तत्त्वदृष्टी से सब की एकता होनेसे सब सहस्रावधि वस्तुओं की मिलकर यह एक ही प्रतिमा है ।

इमे द्यावापृथिवी विश्वरूपे ।

( वा. य. ९।१९ )

ये द्यावापृथिवी विश्वरूपी हैं । अर्थात् द्युलोक और पृथिवी लोक इनका ही यह विश्वरूप है । पाठक यहां इस

विश्वरूप में देखेंगे तो उनको पता लग जायगा कि, इस विश्वरूप में कुछ भाग पृथ्वी के अन्तर्गत है और कुछ भाग द्युलोक के अन्तर्गत है। बीच का अन्तरिक्ष लोक, द्युलोक और पृथ्वीलोकमें विभक्त हुआ है। इस कारण द्यावा पृथिवी विश्वरूपी हैं। यह स्पष्ट ही है। द्यावा पृथिवी से भिन्न यहां कुछ भी नहीं है। इस विश्वरूप में कुछ भाग पृथ्वी का है, शेष भाग द्युलोक का है। इस तरह द्यावापृथिवीने विश्वका रूप धारण किया है।

विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्च वो नमः।

( वा. य. १६।२५ )

विविधरूप धारण करनेवाले तथा विश्वरूप बननेवाले रुद्र के लिये प्रणाम है। यहां अकेली रुद्रदेवता विश्वरूप बनती है ऐसा कहा है। रुद्र देवता के विश्वरूप होने का वर्णन इसी लेखमाला के क्रमांक ९ में देखिये। ( यह लेख वै. ध. क्रमाङ्क २८१ वैशाख सं. १९९९ में छपा है। )

## विश्वरूप का अर्थ।

विश्वरूप पद का अर्थ वेदने ही किया है, वह मन्त्र देखिये—

एतद् वै विश्वरूपं सर्वरूपं गोरूपम् ॥

( अथर्व ९।१२(७)।२५ )

' यह सब विश्वरूप सर्वरूप है और यही गोरूप है। ' गोरूप ' का अर्थ ' गो ' नाम इंद्रियों से जो रूप ग्रहण किया जाता है वह सब रूप है, यही सब रूप विश्वरूप कहा जाता है। अर्थात् इस विश्व में जो नाना रूप या अरूप जो भी पदार्थ हैं, जो पंच ज्ञानेन्द्रियों तथा मन बुद्धि से समझे जाते हैं, वे सब के सब विश्वरूप के अन्दर संमिलित होते हैं। '

## विश्वरूप देवता।

( दीर्घतमा औचथ्यः। विश्वेदेवाः त्रिष्टुप् )

युक्ता मातासीद् धुरि दक्षिणाया
अतिष्ठद् गर्भो वृजनीष्वन्तः।
अमीमेद् वत्सो अनु गां अपश्यद्
विश्वरूप्यं त्रिषु योजनेषु ॥

( ऋ. १।१६४।९; अथर्व ९।१४।९ )

दक्षिणाके लिये गौमाता नियुक्त हुई थी, उसका बछडा वहीं बन्धन में रखा था। वह बछडा गौ माता को देख देख कर शब्द कर रहा था। ( त्रिषु योजनेषु ) तीनों योजनाओंमें अर्थात् तीनों लोकोंमें जो है, वह सब ( विश्वरूप्यं ) विश्वरूपी देवताके लिये अर्पण करने योग्य है।

भूः अन्तरिक्ष और द्यु इन तीन लोकों में जो भी कुछ है वह सब विश्वरूप देवता का सर्वव्यापक एक रस प्रभुका ही रूप है।

## विश्वरूप गर्भ, त्रिपुटी का एकत्व।

( अथर्वा। मधु, अश्विनौ। त्रिष्टुप् )

मधोः कशां अजनयन्त देवाः
तस्या गर्भो अभवद् विश्वरूपः।
तं जातं तरुणं पिपर्ति माता
स जातो विश्वा भुवना विचष्टे ॥

( अथर्व ९।१।५ )

देवोंने मधुकशा देवता को उत्पन्न किया (तस्या गर्भः) उस का गर्भ ( विश्वरूपः अभवत्, ) विश्वरूप हुआ। माताने उस तरुण गर्भ को जन्मते ही परिपुष्ट किया। ( सः जातः ) वह प्रकट होनेपर ( विश्वा भुवना ) सब भुवनों को ( विचष्टे ) विशेष रीति से देखता है।

यहां कहा है कि ( १ ) एक मधुकशा नामक देवता है। यही मधु है। यही अपनी मधुरता के कारण सब को अपनी ओर प्रेरित करता है, अपनी ओर खींचता है। यह मधु है और सब को अपने पास खींचनेवाला है। ( २ ) इस मधु से विश्वरूप उत्पन्न हुआ, अर्थात् सब विश्व में दीखनेवाले पदार्थ इसी मधु ब्रह्म से उत्पन्न हुए। ( ३ ) जो उत्पन्न हुआ, उस का पालनपोषण और उन्नतीभवन वही मधुब्रह्म करता है। ( ४ ) और यही सब भुवनों को देखता है।

यही द्रष्टा है, दृश्य है और ज्ञान भी यही है, तथा ज्ञान से होनेवाला मधुर आनन्द भी यही है। त्रिपुटी का एकत्व यहां वर्णन किया है। ( १ ) एक मधु तत्त्व है, ( २ ) उस एक मधु तत्त्व से विश्व के नाना रूप उत्पन्न हुए, ( ३ ) उस मधुतत्त्व से ही इन सब विश्व का पालनपोषण हो रहा है ( ४ ) और वही मधु तत्त्व सब विश्व का यथायोग्य निरीक्षण कर रहा है। इस तरह ज्ञाता ज्ञेय और ज्ञान एक ही है। यह विशेष महत्त्व की बात यहां कही है।

## विश्वरूप दूध ।

( अथर्वा । मधु, अश्विनौ । त्रिष्टुबगर्भा पंक्तिः )

महत् पयो विश्वरूप अस्याः
समुद्रस्य त्वोत रेत आहुः
यत एति मधुकशा रराणा
तत् प्राणः तदमृतं निविष्टम् ॥

( अथर्व. ९।१।२ )

( अस्याः पयः ) इस गौ का दूध ही ( महत् विश्वरूपं ) यह बडा विश्वरूप है। यह बडे ( समुद्रस्य रेतः ) समुद्र का जल जैसा ही है, ऐसा सब ज्ञानी ( आहुः ) कहते हैं। यह मधुकशा देवता सचमुच ( तत् प्राणः ) सब का प्राण है और यही ( तत् अमृतं निविष्टं ) अमृत अर्थात् सब अमरत्व संगृहित होने के समान है ।

ब्रह्मरूप एक गौ है, उस गौसे जो दूध निकल आया वही यह विश्वरूप है, अर्थात् इस विश्व में जो है, वह सब ब्रह्मरूपी गौका दूध ही है। ब्रह्म का ही रूप यह विश्व है। वह प्राण अर्थात् जीवन रूप है और यही अमृत अर्थात् मोक्ष रूप है।

## विश्वरूप यश ।

( कुत्सः । आत्मा । त्रिष्टुप् )

तिर्यग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नः,
तस्मिन् यशो निहितं विश्वरूपम् ।
तदासत ऋषयः सप्त साकं,
ये अस्य गोपा महतो बभूवुः ॥

( अथर्व. १०।८।९ )

तिरच्छा मुखवाला एक लोटा उलटा करके रखा है। यही मानव का मस्तक है। इस में ( विश्वरूपं यशः ) विश्वरूप यश रखा है, यही मस्तिष्क-मगज- है। इस मस्तिष्क में सात ऋषि-सात ज्ञानेन्द्रिय-बैठे हैं, जो इस बडे आत्मा के रक्षक हैं।

मनुष्य का सिरही उलटा लोटा है। इस का तला ऊपर है और मुख नीचे परन्तु तिरच्छा है। इस लोटे के-मस्तक के- तले में विश्वरूपी यश अर्थात् मस्तिष्क अथवा मगज है। इस मस्तिष्क में संपूर्ण विश्व के नाना रूपों का ज्ञान रहता है। यदि यह मगज मनुष्य के सिर में न होता, तो विश्वरूप का ज्ञान मनुष्य को न होता। विश्वरूप ही इस परमेश्वर का यशस्वी सामर्थ्य है। यह मानो परमेश्वर का ही यश है। यह सब मानवी मस्तिष्क में समाया है। मनुष्य का मगज ही इस विश्वरूप का आकलन कर सकता है। इस मगज में दो नेत्र, दो कान, दो नासिकाएं, और एक मुख ये सात ऋषि ज्ञानयोग का साधन कर रहे हैं। अतः यही सात ऋषियों का आश्रम है। ये ही सात ऋषि इस विश्वरूप के ज्ञान की रक्षा यहां कर रहे हैं।

इस मंत्र में कहा कि ब्रह्म से जो विश्वरूप बना है, वह ब्रह्म के सामर्थ्य का प्रकटीकरण है। इस का आकलन मनुष्य का मस्तिष्क कर सकता है। मनुष्य का मस्तिष्क जिस का आकलन करता है, उतना ही विश्व उस के लिये है। न ज्यादह और न कम। इसलिये मनुष्य का मस्तिष्क ही मनुष्य का यश है। क्योंकि जैसा मनुष्य का मगज होगा, वैसा ही मनुष्य होगा।

इस मंत्र में कहा है कि मानवी ज्ञान में ही ब्रह्म और उस से बने संपूर्ण और अखण्ड विश्वरूप की स्थिति है।

## रोहित का विश्वरूप ।

( ब्रह्मा । अध्यात्मं, रोहितः, आदित्यः । भुरिक् )

वि रोहितो अमृशद् विश्वरूपं,
समाकुर्वाणः प्ररुहो रुहश्च ।
दिवं रुढ्वा महता महिम्ना,
स ते राष्ट्रं अनक्तु पयसा घृतेन ॥

( अथर्व. १३।१।८ )

(प्ररुहः रुहः च समाकुर्वाणः) अंकुर और पौधोंको इकट्ठा करनेवाला ( रोहितः ) रोहित देव ( विश्वरूपं वि अमृशत् ) सब विश्वरूप का विमर्श करता है। वह अपने बडे महिमा से द्युलोक पर चढकर तेरे राष्ट्र को दूध और घी देवे।

जो एक देव द्युलोक पर चढता है, अर्थात् जो स्वर्गलोक में विराजमान होता है, वह अपने विचार में बीज, अंकुर और पौधों को इकट्ठा लेता है। यही विश्वरूप का विमर्श है। यही विश्वरूप का विचार है। अंकुर, बीज, पौधा, वृक्ष, शाखा, पत्ते, टहनियां, फूल, फल इन पदों से प्रतीत होने-वाली प्रत्येक वस्तु एक दूसरे से पृथक् दिखती है। बीज अंकुर नहीं, पौधा वृक्ष नहीं, शाखा टहनी नहीं, फूल फल

नहीं। ये सब पदार्थ परस्पर पृथक् है। यह विभक्तीकरण की एक दृष्टी है। परन्तु दूसरी ( समाकुर्वाणः ) संगतिकरण की एक दृष्टी है, उस दृष्टी से उक्त सभी पदार्थ 'वृक्ष' के एक ही रूप में समाविष्ट हो जाते हैं। यही विश्वरूप दृष्टी है। इस दृष्टी से पृथ्वी, जल, वनस्पति, मानव, पशु, पक्षी, वायु, मेघ, वृष्टी, विद्युत्, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र ये सब 'विश्वरूपी सत्' में संमिलित हुए हैं। एक दृष्टी विभक्तीकरण की है और दूसरी संगतिकरण की है। विश्वरूप में अनेक विभिन्न पदार्थ होते हुए भी, समीकरण की दृष्टी से विश्वरूप एक ही सत् है, यह सत्य प्रकट होता है। ( समाकुर्वाणः विश्वरूपं व्यमृशत् ) समीकरण करनेवाला विश्वरूप एक है, ऐसा विचार द्वारा जानता है, परन्तु जो ( विषमीकुर्वाणः ) विषम भाव से देखेगा, वह प्रत्येक पदार्थ पृथक् पृथक् देखेगा।

इस तरह इस मंत्र में विश्वरूप के साक्षात्कार की दिव्य दृष्टि 'समाकुर्वाण.' पद से दर्शायी है। यह पद अत्यंत महत्त्व पूर्ण है।

यहां तक हमने 'विश्वरूपी प्रभु' का वर्णन करनेवाले अनेक मंत्र दिये हैं। ये विश्वरूपी प्रभु का वर्णन तो कर ही रहे हैं, परन्तु साथ ही साथ विश्वरूप प्रभु के साक्षात्कार की दिव्यदृष्टी भी बता रहे हैं। पाठक इस दृष्टी से इन मन्त्रों का विचार करे। पाठकों की सुविधा के लिये हम पूर्वोक्त मंत्रों में आनेवाले विशेष मननीय मंत्रांशों को यहां रख देते हैं--

१ प्रजापतिः विश्वरूपं ससृजे, तत्र प्रविवेश। =
( अथर्व. १०।७८ )

प्रजापतिने विश्वरूप का सृजन किया और उसमें वह स्वयं प्रविष्ट हुआ।

२ प्रजापतिः प्रजा असृजत.... ता रूपेण.... नाम्नाऽनुप्राविशत। रूपं .... नाम .... वै प्रजापति.।
( तै. आ. २।२।७ )

प्रजापतिने प्रजाओं का सृजन किया और अपने रूप तथा नाम से वही उस में प्रविष्ट हुआ। नाम और रूप प्रजापति ही हैं।

३ एजत्, पतत्, तिष्ठत्, प्राणत्, अप्राणत्, निमिषत्, भुवत्, विश्वरूपं, संभूय, एकं एव भवति।
( अथर्व. १०।८।११)

कांपने, उडने, ठहरने, प्राण धारण करने, प्राण धारण न करने, निमेषोन्मेष करने और बनने वाला जो है, वह विश्वरूप है, वह सब मिलकर एक ही तत्त्व है।

४ विश्वरूपं चर्षणीनां वृषभं। ( ऋ. ६।६२।६ )

विश्वरूप सब मानवों का बल बढानेवाला है।

५ विश्वरूपं वाजं असनत्, द्यां आ अरुक्षत्॥
( ऋ. १०।६७।१० )

जो साधक विश्वरूप का बल प्राप्त करता है, वह स्वर्गधाम पर चढता है।

६ विश्वरूप अमृतानि तस्थौ। ( ऋ.३।३८।४ )

विश्वरूपी प्रभुके पास सब प्रकार के अमृत हैं।

७ ऐंद्र विश्वरूप शुष्मः अरमर्त्यं आयु प्रजां रायं च दधत्। ( अथर्व. ९।४।२२ )

प्रभु का विश्वरूपी बल हमें दीर्घायु, सुप्रजा और धन देता है।

८ विश्वरूपः वृषभ त्रिपाजस्यः स शश्वतीनां रेतोधा वृषभ.। ( ऋ. ३।५६।३ )

प्रभुका विश्वरूप बल देनेवाला है और वह तीनों भुवनोंमें फैला है, वह शाश्वत प्रजाओंमें वीर्य और ओज भर देता है।

९ सविता देवः विश्वरूपः प्रजा जजान, पुपोष च।
( ऋ ३।५५।१९ )

प्रभु विश्वरूपी है, वह अपने में से सब प्रजाओं को निर्माण करता है और उन का पालन पोषण करता है।

१० सविता देव विश्वरूप जनिता, अस्य व्रतानि न किः प्रमिनाति। ( ऋ. १०।१०।५ )

विश्वरूपी प्रभु सब का जनक है, कोई भी उस के नियमोंका उल्लंघन कर नहीं सकता।

११ विश्वरूप अग्रियं त्वष्टारं उपह्वये।
( ऋ १।१३।१० )

विश्वरूपी पहिले कारीगर की मैं स्तुति करता हूं।

१२ विश्वरूपं यजतं। ( ऋ. २।३३।१० )

विश्वरूपी प्रभू ही पूजनीय है।

१३ विश्वरूपं ज्योतिः विश्वेषां देवानां समित् ।

( वा. य. ५।३५ )

विश्वरूप प्रभुकी ज्योति सब देवोंका इकट्ठा हुआ तेज है।

१४ विश्वरूपं वासः । ( वा. य. ११।४० )

विश्वरूपी एक वस्त्र है ( इस में सब देव ताने बाने हैं जो ब्रह्म से उत्पन्न हुए हैं )

१५ सहस्रस्य प्रतिमां विश्वरूपं । (वा. य. १३।४१)

सहस्रों पदार्थों की एक प्रतिमा ही विश्वरूप प्रभु है ।

१६ द्यावा-पृथिवी विश्वरूपे । ( वा. य. ९।१९ )

ये द्युलोक और पृथिवी ये ही विश्वरूप हैं ( द्युलोक से पृथ्वीपर्यंत जो है वह विश्वरूप है )

१७ विश्वरूपं सर्वरूपं गोरूपं ।

( अथर्व ९।१२।२५ )

जो विश्वरूप कहते हैं वही सब रूप है और वही सब इंद्रियोंके अनुभव में आनेवाला है ।

१८ त्रिषु योजनेषु विश्वरूप्यं । ( ऋ. १।१६४।९ )

तीनों लोकों में जो है वह सब विश्वरूप है।

१९ विश्वरूपः विश्वा भुवना वि चष्टे। (अथर्व. ९।१।५)

विश्वरूप प्रभु सब भुवनों को देखता है ।

२० अस्याः पयः विश्वरूपं, तत् प्राणः अमृतं ।

( अथर्व ९।१।२ )

( ब्रह्मरूपी ) गौका दूध ही यह विश्वरूप है वह सब को जीवन देता और अमरत्व भी देता है ।

२१ विश्वरूपं यशः । ( अथर्व. १०८।९ )

विश्वरूप यश है ।

२२ प्ररुहो रुहः च समाकुर्वाणः विश्वरूपं व्यमृशत्।

( अथर्व. १३।१।८ )

अंकुर और पौधे को इकट्ठा देखनेवाला ही विश्वरूप प्रभु का विमर्श कर सकता है ।

ये सब मन्त्रभाग मनन करनेयोग्य हैं। इन का ठीक मनन होने से ' परमेश्वर के विश्वरूप ' की ठीक ठीक कल्पना आ सकती है। पाठक इन मन्त्रभागों का विचार करें और विश्वरूप को यथावत् समझने का यत्न करें, क्योंकि वैदिकधर्म का संपूर्ण आचार विचार सर्वथा विश्वरूप के यथावत् ज्ञान पर अवलम्बित है ।

## एक देवता के अनेक नाम ।

पूर्वोक्त मंत्रोंमें जिन देवताओं के विश्वरूप का वर्णन हुआ है, वे देवता निम्नलिखित हैं-

आत्मा, स्कम्भ (आधारस्तम्भ) बृहस्पतिः, इंद्रः, ऋषभः, वृषभः, त्वष्टा, सविता, देवः, आप्रियः (अग्निः) रुद्रः, आदित्यः, द्यावापृथिवी, गौः, मधु, अश्विनौ, रोहितः, अध्यात्मं,

इतने देवताओं के वर्णनपरक मन्त्रों में विश्वरूप का वर्णन है । इतने देव विश्व के रूप में प्रकट हुए हैं, ऐसा यहां कहा है । ये सब नाम एक ही आत्मा के नाम हैं, यह बात सब पाठक जानते हैं ।

एकं सत् विप्रा बहुधा वदंति,

अग्निं यमं मातरिश्वानं आहुः ।

(ऋ. १।१६४।४६; अथर्व० ९।१०।२८ )

' एक ही सत् है, जिस का वर्णन ज्ञानी अग्नि, यम, वायु आदि नामों से करते हैं । ' यह वेद का नियम है, अर्थात् ' एक सत् ' आत्मा ही है और उसी के लिये इंद्रादि नाम प्रयुक्त होते हैं ।

## मंत्र-द्रष्टा ऋषि ।

इन विश्वरूप वर्णन के मंत्रों के द्रष्टा ऋषि ये हैं- अथर्वा, कुत्सः, विश्वामित्रः, अयास्यः, प्रजापतिः, ब्रह्मा, यमी, मेधातिथिः, गृत्समदः, दीर्घतमाः । इन ऋषियों के मंत्रों में विश्वरूप देवता का वर्णन है । अर्थात् यह विश्वरूप देवता की कल्पना किसी एक ऋषिने देखी, ऐसी बात नहीं, अपि तु अनेक ऋषियोंने इस का अनुभव लिया है ।

पूर्वस्थान में जिन देवताओं और ऋषियों के मंत्र लिखे हैं, उतने ही मंत्र इस विषय का प्रतिपादन करनेवाले हैं, ऐसा समझना अशुद्ध होगा । प्रायः सभी देवताओं के और प्रायः सभी ऋषियों के मंत्रों में विश्वरूप देवता का वर्णन है । ऐसे देवता और ऋषि अत्यन्त थोडे होंगे कि, जिन में विश्वरूप देवता का उल्लेख नहीं है । अतः विश्वरूप देवता का वर्णन वैदिक सिद्धांत के रूप में मानना उचित है । सर्वेश्वरवाद अथवा सर्वैक्यवाद वेद का मुख्य सिद्धांत ही है । इसीलिये अनेक देवताओं के मंत्रों में तथा अनेक ऋषियों के मंत्रों में विश्वरूप देवता का वर्णन आता है ।

इस तरह यह सब विश्वरूप एक ही आत्मा का रूप है। विश्वरूप का अर्थ ' देवता रूप ' ही है। जितने पदार्थ हैं वे सब के सब देवता के ही रूप है, और सब देवता आत्मा के रूप हैं, अतः आत्मा का ही यह सब विश्वरूप है। अब पूर्वोक्त मंत्रों का संक्षेप से आशय यहां बताते हैं—

## पूर्वोक्त मंत्रों का तात्पर्य ।

इस विश्व में जो पदार्थमात्र आकाश, अन्तरिक्ष और पृथ्वी पर है, वह सब परमेश्वर का स्वरूप है। सब सृष्टि की उत्पत्ति करके वही परमेश्वर सृष्टी के नामरूपों में घुस गया है। ये सब नामरूप उसी के हैं इस कारण जो नाम और जो रूप आपके सामने आ जाय, वह परमेश्वर का है, ऐसा मानो। ( अथर्व १०।७।८; तै. आ. २।२।७ )

जो जंगम पदार्थ चलते, उडते, श्वासलेते, आंखें खोलते हैं, जो स्थावर पदार्थ अपने स्थान पर ठहरते हैं, अथवा जो स्थावर जंगम पदार्थ उत्पन्न होते हैं, वे सब मिलकर परमेश्वर का रूप होता है, ये सब विमिश्र पदार्थ मिलकर एक ही ' सत् ' होता है। ( अथर्व. १०।८।११ )

विश्वरूपी एक सत् का ज्ञान होनेसे मानवों का बल बढता है, जिनको यह ज्ञान होता है वे श्रेष्ठ होते हैं और इनको कोई दबा नहीं सकता। ( ऋ. ६।६२।६ )

जो मानव विश्वरूपी एक सत्तत्त्व का यथावत् ज्ञान प्राप्त करता है वह स्वर्ग में जाता है और उससे भी उच्चतम लोक में वह पहुंचता है। वही अपने अनुभव से परमेश्वर का यथावत् वर्णन करता है। वह नाना पदार्थों में एक ही ज्योती की सत्ता देखता है। ( ऋ. १०।६७।१०; अथर्व. २०।९१।१० )

विश्वरूपी परमेश्वर के शरीर के सूर्यचन्द्रादि देव भूषण हैं। वह एक देव स्वयंप्रकाश है, वही सबका जीवनदाता है, और उसी के पास सब अमरभाव नित्य रहते हैं। ( ऋ. ३।३८।४; अथर्व. ४।८।३; वा. य. ३३।१२ )

आकाश के समान एक ही देव है, वह अपने बल से विश्वरूप बनता है। सब का बलदाता यही है। यही सब को दीर्घायु, सुप्रजा, और पोषण करनेवाला धन देता है। ( अथर्व ९।४।२२ )

विश्वरूपी देव के तीन पेट भूमि अन्तरिक्ष और द्यु ये लोक हैं, इसी की सब प्रजा है। यही अपने पोषक रस से सब का पोषण करता है। यह महत्ववान और सामर्थ्यवान है। शाश्वत काल से सब प्रजाओं को यही बल देता है। ( ऋ. ३।५६।३ )

विश्वरूपी देव सब का उत्पन्न कर्ता है और वही सबका पोषणकर्ता भी है। सब भुवन इसी के अर्थात् इसी से बने हैं सब देवोंको यही एक जीवन देता है। (ऋ. ३।५५।१९)

विश्वरूप परमेश्वर सब का सृजन करनेवाला है। वह इतना सामर्थ्यवान है कि, कोई इस के नियमों का उलंघन कर नहीं सकता। ( ऋ. १०।१०।५; अथर्व १८।१।५ )

विश्वरूपी देव प्रथम उपास्य है, उसका मैं वर्णन करता हूं। वह हमारे लिये सहायक होवे। ( ऋ. १।१३।१० )

ईश्वर ही सब प्रकार से आदर के लिये योग्य है। उस का यह सब विश्वरूप पूजनीय है। इस देवता से अधिक समर्थ दूसरा कोई नहीं है। ( ऋ. २।३३।१० )

तेजस्वी देव विश्वरूपी वस्त्र बुनता है। ( वा. य. ११।४० )

सहस्रों वस्तुओं की जो एक प्रतिमा है वही विश्वरूप देव है। ( वा. य. १३।४१

द्युलोक से पृथ्वीपर्यन्त जो है वही विश्वरूप है। ( वा. ९।१९ )

जो इंद्रियगोचर है वह सब विश्वरूप है। ( अथर्व. ९।१२।२५ )

ईश्वर के गर्भ से विश्वरूप प्रकट होता है, उत्पन्न होने के पश्चात् ईश्वर ही उस का पालन करता है और वही विश्वरूप में समाविष्ट सब भुवनोंका निरीक्षण भी करता है। ( अथर्व ९।१।५ )

ईश्वर गौ है उस का दूध ही यह विश्वरूप है, अतः यह विश्वरूप सब को जीवन और अमरत्व देता है। ( अथर्व ९।१।२ )

मनुष्य के मस्तिष्क में इस विश्वरूप का ज्ञान समाविष्ट होता है। ( अथर्व १०।८।९ )

सब का एकीकरण करने की दृष्टी से विश्वरूप के एक सत्ता का अनुभव आता है। जो यह अनुभव लेता है वह स्वर्गपर आरोहण करता है। ( अथर्व १३।१।८ )

पूर्वोक्त मंत्रों का मुख्य भाव यहां इसलिये बताया है कि, पाठक इस का वारंवार मनन करें, पूर्वापर संबंध देखें,

पूर्वस्थान में जो पदों का अर्थ दिया है, उस का विचार करें, पश्चात् ' विश्वरूप ' के जो सूचक मन्त्रभाग दिये हैं उन का अवलोकन करें और भावार्थ का मनन करें, और वेद के इस ' विश्वरूप परमेश्वर ' का स्वरूप ठीक तरह समझनेका यत्न करें। यह वेदका मुख्य सिद्धान्त होनेसे और वैदिक धर्म द्वारा समाज का जो व्यवहार निश्चित होना है, उस के लिये इस सिद्धान्त के ठीक तरह पता लगने की अत्यंत आवश्यकता होने से इस विषय में इतना विशेष रीतिसे लिखा जा रहा है।

ऐसा भी संभव होगा कि, कई पाठक विशेष विचार करनेपर इस निश्चयपर पहुंच सकते हैं कि, इनमेंसे कुछ मन्त्र विश्वरूप देवता का विचार पूर्ण अंश से करनेवाले नहीं हैं। इसलिये इन मन्त्रों को यहां से हटाना चाहिये। ऐसे गौण अर्थवाले मन्त्रों को हटा देनेपर भी जो मन्त्र शेष रहेंगे, वे 'परमेश्वर विश्वरूप ' है. यही बात सिद्ध करेंगे। यहां प्रश्न यह नहीं है कि, परमेश्वर के विश्वरूप का उपदेश करनेवाले मन्त्र संख्या में कितने हैं। विश्वरूप का विचार करनेवाले मन्त्र थोडे हों, अथवा अधिक हों, मंत्रों में ' परमेश्वर विश्वरूपी है ' यह बात कही है, वा नहीं कही है, यही विचार करने का विषय है।

हमारे मत से पूर्वोक्त मन्त्र परमेश्वर के विश्वरूप का उपदेश करनेवाले हैं। और इन मंत्रोंने परमेश्वर विश्वरूप है यह बात सिद्ध की है। विश्व में जो शब्द स्पर्श रूप रस गंध हैं उनका दर्शन हमारे इन्द्रिय करते है। यही विश्वरूप का अनुभव है। मनुष्य इस विश्वरूप का अनुभव कर रहे हैं। यह विश्व परमेश्वर का व्यक्तरूप है और इसी विश्वरूप परमेश्वर की सेवा करना मानव का धर्म है।

विश्वरूप परमेश्वर का यही तात्पर्य है। मनुष्य दिन रात इसी परमेश्वरीय विश्वरूप में विचर रहा है, इसीसे सब व्यवहार कर रहा है और स्वयं इस विश्वरूप का वह एक अंश ही है।

**ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थितः।** ( गीता ५।२० )

ब्रह्म का ज्ञान जिसको प्राप्त होता है, वह अपने आप को ब्रह्म में अवस्थित देखता है। इसका अनुभव पाठक यहां कर सकते हैं।

प्रत्येक पाठक इस विश्व में है, वह विश्व का अंश है, विश्व के रूप के साथ उस का रूप मिला जुला है, विश्वरूप से वह पृथक् नहीं है। यदि विश्वरूप परमेश्वर का ही रूप है, तब तो यह बात नितान्त निश्चित हो है, कि प्रत्येक पाठक परमेश्वर के स्वरूप में अवस्थित है और वह परमेश्वर का अंश है। ' ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः। ( गीता ) ' मेरा एक अंश जीव बना है, यह गीता वचन सत्य है, यह बात यहां निर्णीततसी होती है। पाठक इस का अनुभव करें।

अस्तु, यहां तक परमेश्वरका ही निजरूप यह विश्वका रूप है, तथा जो विश्व का रूप है, वही परमेश्वर का देह है, जिसमें सब पाठक संमिलित हैं, इतनी बात यहां सिद्ध हुई। विश्वरूप का अर्थ ' सर्वरूप, अनंतरूप, बहुरूप, गोचररूप' है। यह अर्थ इस पद का निश्चित होने के पश्चात्, यही पद गौण अर्थमें ' अनेक रूपोंसे युक्त ' इस अर्थ में वेदमें प्रयुक्त हुआ दीखता है। ये मंत्रभाग अब हम यहां देखते हैं-

१ सुकिंशुकं हिरण्यवर्णं सुचक्रं विश्वरूपं ( रथ ) आरोह। = ( ऋ. १०।८५।२०; अथर्व १४।१।६१ )

उत्तम वस्त्रों से युक्त सुनहरी और उत्तम चक्रवाले, अनेक रंगरूपवाले ( रथ ) पर चढ।

२ त्वाष्ट्रं विश्वरूपं- ( ऋ. २।११।१९ ) त्वाष्ट्रस्य विश्वरूपस्य ( ऋ. १०।८।९ ) =

त्वष्टा द्वारा निर्मित बहुत रूप।

३ पर्याणद्धं विश्वरूपं यदस्ति, पतिभ्यः स्योन- ( अथर्व १४।२।१२ )

एकत्र लाया जो नाना प्रकार के रूपवाला दहेज है वह पतिके लिये सुखकारी हो।

४ वेदा विश्वरूपाः ( अथर्व ४।३५।६ )

वेद अनेक प्रकार के हैं।

५ **अस्य विश्वरूपाः स्तीर्णाः** ( ऋ. ३।१।७ ) =

इस ( अग्नि ) के नाना प्रकार के रंगरूपवाले किरण फैले हैं।

६ **जिगत्नवः विश्वरूपाः** ( ऋ. १०।७८।५ ) =

प्रगतिशील अनेक रूपवाले ( मरुत् ) हैं।

७ **विश्वरूपः सोमः** ( ऋ. ६।४१।३ ) =

अनेक रंगरूपवाला सोम है।

८ **यत् पृथिव्यां... अन्तरिक्षे... दिवि... देवेषु...**

लोकेषु विश्वरूपं। ( अथर्व ९।११।७–११ ) =
जो पृथ्वी अन्तरिक्ष द्युलोक, देव और लोकोंमें नाना प्रकार के रूप हैं।

९ विश्वरूपाणां कन्यानां मनः गृभाय।
( अथर्व २।३०।४ ),
विश्वरूपां वधूं ( अथर्व १०।१।१ );
विश्वरूपा ( नारी ) पत्या संभव इह।
( अथर्व १४।२।३२ ) =
अनेक रंगरूप वेषभूषावाली कन्याओं का मन आकर्षित कर; अनेक रूपवाली वधू यह है; अनेक प्रकार की वेष-भूषा करनेवाली यह स्त्री पति से संगत हो।

१० एताः द्वारः सुभगाः विश्वरूपाः।
( वा. य. २९।५ ) =
ये सुन्दर द्वार अनेक प्रकार के रूपोंवाले हैं।

११ बभ्रुं कृष्णां विश्वरूपां रोहिणीं भूमिं अध्यष्ठां
( अथर्व १२।१।११ ) =
भूरे और काले ऐसे नाना प्रकार के रंगरूपवाली उपजाऊ भूमि पर मैं अध्यक्ष होऊंगा।

१२ विश्वरूपा ओषधीः।
( ऋ. ५।८३।५; १०।८८।१० ) =
अनेक रंग-रूप-आकार वाली औषधियां होती हैं।

१३ विश्वरूपा ओषधयः पृथक् जायन्तां, विश्वरूपा वीरुधः भूमिं महयन्तु। (अथर्व. ४।१५।२-३) =
नाना प्रकार की रंगरूपवाली औषधि वनस्पतियां भूमि पर उपजें और भूमि की महिमा बढा देवें।

१४ विश्वरूपां सुभगां जीवलां आवदामि।
( अथर्व ६।५९।३ ) =
अनेक रंगरूपवाली भाग्यशाली दीर्घायु बढानेवाली औषधि का वर्णन करता हूं।

१५ विश्वरूपान् वाजान् जयेम।
( अथर्व १३।१।२२ ) =
अनेक रंगरूपवाले अन्न विजय करके प्राप्त करेंगे।

१६ विश्वरूपं सारंगं अर्जुनं कृमिं शृणामि।
( अथर्व २।३२।२ ) =
अनेक रंगरूपवाला चितकबरा तथा श्वेत कीडा है उस का मैं नाश करता हूं।

१७ विश्वरूपाः कृमयः। ( अथर्व ५।२३।५ ) =
अनेक रंगरूपवाले कृमी होते है।

१८ विश्वरूपां उपाजत। ( ऋ १।१६१।६ ) =
अनेक रंगवाली गौ को प्राप्त किया।

१९ विश्वरूपां धेनुं चक्रुः। ( ऋ. ४।३३।८ ) =
अनेक रंगरूपवाली धेनु को ( ऋभुओंने ) बनाया।

२० भूतकृतः विश्वरूपाः गाः असृजन्त।
( अथर्व ३।२८।१ ) =
भूतों को बनानेवाले देवोंने नाना रंगरूपवाली गौवें निर्माण कीं।

२१ विश्वरूपा धेनुः मे कामदुघा अस्तु।
( अथर्व ४।३४।८, ९।५।१० ) =
अनेक रंगवाली धेनु मेरी इच्छा के अनुसार दूध देवें।

२२ विश्वरूपां गौ मा आविश ( वा. य. ३।२२ ) =
अनेक रूपवाली गौ मुझे प्राप्त होवे।

२३ विश्वरूपेभिः अश्वैः इह आयातु।
( ऋ. १०।७०।२ ) =
अनेक रंगरूपवाले घोडों को जोतकर वह यहां आवे।

२४ विश्वरूप अजः मेम्यत्।
( ऋ. १।१६२।२; वा., य. २५।२५ ) =
अनेक रंगरूपवाला बकरा शब्द करता है।

२५ विश्वरूपं अजं प्रोर्णुहि। ( अथर्व ४।१४।९ ) =
अनेक रंगी बकरी को आच्छादित कर।

२६ विश्वरूपाः पशवः। ( ऋ. ८।१००।११ ), =
विश्वरूपाः सर्वरूपाः पशवः। (अथर्व ९।७।२६);
ग्राम्याः पशवो विश्वरूपाः।
( अथर्व ३।१०।६; २।३४।४ );
विश्वरूपैः पशुभिः नः पृणीहि।
( अथर्व १७।१।६–१९; ४४ ) =
अनेक रंगरूप और आकार के पशु ग्राम में होते हैं।

२७ विश्वरूपा वाहिनी। (अथर्व १०।१।२, १५; २४) =
अनेक प्रकार के सैनिकों की यह सेना शत्रुका नाश करनेवाली है।

यहां तक चारों वेदों में करीब करीब ६० वार ' विश्वरूप पद आया है और सर्वत्र इस इस का अर्थ ' अनेक विभिन्न रंगरूप और आकारवाला ' ऐसा है। इसका प्रयोग

यहां ' रथ, कारीगरी के पदार्थ, दहेज, वेद, किरण, वीर मरुत्, सोमवल्ली, त्रिलोकी के पदार्थ, कन्या, नारी, वधू, द्वार, भूमि, औषधि, वनस्पति, अन्न, क्रिमी, गौ, धेनु, अश्व, बकरा, पशु, सेना इनके विशेषण के लिये यह ' विश्वरूप ' पद आया है और पाठकोंने देखा है कि सर्वत्र ' अनेक रंग-रूप आकारवाला ' ऐसा ही अर्थ है । इस पद का यह अर्थ गौण है । मुख्य अर्थ ' विश्व में समाविष्ट सब पदार्थ ' ऐसा है, और वह इस लेख के प्रारंभ में २२ मंत्रों में बताया है। यह अर्थ मुख्य वृत्ति से परमेश्वर पर लगता है और गौण वृत्ती से सब अन्य पदार्थों के विशेषण अर्थात् गुण वर्णन के लिये प्रयुक्त होता है।

इस से पाठकों के मन में ' विश्वरूपी परमेश्वर ' का वैदिक सिद्धान्त स्पष्ट रूप से आ जायगा । चारों वेदों के सब मन्त्र यहां हमने इसलिये दिये हैं कि, विश्वरूप पद-वाले मुख्य और गौण वृत्तिवाले चारों वेदों के सब मन्त्र पाठकों के सामने आजायँ, यहां हमने एक भी मन्त्र इस लिये छिपाया नहीं है, कि संपूर्ण वेदका यह सिद्धान्त पाठकों के सामने स्पष्ट रूप से आजाय, और वेद का यह मुख्य सिद्धान्त बिलकुल स्पष्ट हो जाय ।

परमेश्वर अदृश्य है यह कल्पना असत्य है । परमेश्वर का देह ही यह संपूर्ण विश्व है । अतः परमेश्वर विश्वरूप है । इस संपूर्ण विश्व में जो भी कुछ पदार्थ हैं, वे सब परमेश्वर के विराट् देह के अंश हैं, सब मानव उसी के देह के अंश हैं, सब पाठक परमेश्वर के देह में अंशरूप से रहे हैं । पाठक प्रतिक्षण जो व्यवहार कर रहे हैं, वह परमेश्वर के रूपों के साथ ही कर रहे हैं। पाठक विचार करें कि वे जो छलकपट कर रहे हैं वह साक्षात् परमेश्वर से ही छलकपट कर रहे हैं ।

मनुष्य भ्रम से समझ रहा है कि, यह संसार तुच्छ है, यह संसार परमेश्वर से भिन्न है, परमेश्वर प्राप्ति के लिये इस जगत् का त्याग करना चाहिये इ० इ०, जो अवैदिक विचार पाठकों के मन में इस समय हैं, और जिन अवैदिक विचारों को वेद प्रचार करनेवाले उपदेशक ही वारंवार दुहरा रहे हैं, और पाठकों के मनों में अवैदिक विचारों को सुस्थिर करने का यत्न कर रहे हैं, वे सब अवैदिक विचार हैं, वे सब त्याज्य हैं और वेद के धर्म से दूर ले जानेवाले विचार हैं ।

वेद कहता है कि ' यह सब विश्व परमेश्वर का रूप है, ' परमेश्वर का महात्म्य इस विश्व में विश्वरूप से प्रकट हुआ है, प्रत्यक्ष परमेश्वर ही विश्वरूप होकर हमारे सामने खडा है, स्वकर्म से उस की सेवा करना ही मानव का ' सना-तन धर्म ' है । ' सना ' का अर्थ ' सेवा ' है, ' तन ' का अर्थ ' विस्तार ' है । परमेश्वर के विश्वरूप की सेवा का विस्तार करनेवाला वैदिक धर्म है । इसे पाठक यहां देखें ।

ब्रह्म का यह विश्वरूप है । अतः यह विश्व हीन तुच्छ और त्याज्य नहीं है । यह विश्वरूपही संसेव्य है । इस समय विश्व को जेलखाना, बंधन, मोहका कारण आदि जो बताया जाता है, वह सब अवैदिक भाव है । वैदिक धर्म की दृष्टीसे जन्म प्राप्त होना बंधन में पडना नहीं है, जन्म से तो परमेश्वर के स्वरूप में अपना निवास होता है, परमेश्वरके महाकार्य की योजना में अपने आप का समर्पण करने का वह एक अत्यंत उत्तम अवसर है । अतः वैदिक धर्मी जन्मका स्वागत करता है । अन्य मतवाले जन्म से घबराते, जगत्को बंधन मानते, विश्व को तुच्छ समझते और यहां से भागने का उपदेश करते हुए जनता में भ्रम फैला रहे हैं, वैदिक ईश्वर से जनता को दूर ले जा रहे हैं । इन सब अवैदिक मतों का निरसन वेद के ' विश्वरूप परमेश्वर ' के वर्णनने किया है । जो पाठक इस विश्वरूप को ठीक तरह जानेंगे, वे अवैदिक उपदेशों के भ्रमजाल को तत्काल दूर फेंक देंगे । यह है विश्वरूप के यथार्थ ज्ञान का फल । जो जानने का यत्न करेंगे, वे ही लाभ उठायेंगे और वैदिक धर्म की जाग्रति करने के अग्रगामी सैनिक होंगे ।

# वेदका रहस्य।

## [ अध्याय २० वाँ ]

## अन्धकार के पुत्र।

[ लेखक- श्रीअरविंद; अनुवादक- स्वामी अभयदेवजी, ]

एक बार नहीं बल्कि बार-बार हम यह देख चुके हैं कि यह सम्भव ही नहीं है कि अङ्गिरसों, इन्द्र और सरमा की कहानी में हम पणियों की गुफा से **उषा**, **सूर्य** व **गौओं** की विजय करने का यह अर्थ लगायें कि यह आर्य आक्रान्ताओं तथा गुफानिवासी द्रविडियों के बीच होनेवाले राजनीतिक व सैनिक संघर्ष का वर्णन है। यह तो वह संघर्ष है जो **प्रकाश** के अन्वेष्टाओं और **अन्धकार** की शक्तियों के बीच होता है, गौएं हैं **सूर्य** तथा **उषा** की ज्योतियाँ, वे भौतिक गायें नहीं हो सकतीं, **गौओं** का विशाल भयरहित खेत जिसे इन्द्रने आर्यों के लिए जीता 'स्वः' का विशाल लोक है, सौर **प्रकाश** का लोक है, द्यौका त्रिगुण प्रकाशमय प्रदेश है। इसलिए इसके अनुरूप ही पणियों को इस रूप में लेना चाहिए कि वे अन्धकार-गुहा की शक्तियाँ है। यह बिल्कुल सच है कि पणि 'दस्यु' या 'दास' है, इस नाम से उनका वर्णन सततरूप से देखने में आता है, उनके लिए यह वर्णन मिलता है कि वे **आर्य-वर्ण** के प्रतिकूल **दास-वर्ण** हैं, और रंगवाची 'वर्ण' शब्द ब्राह्मणग्रन्थों में तथा पीछे के लेखों में जाति या श्रेणी के लिए प्रयुक्त हुआ है, यद्यपि इससे यह परिणाम नहीं निकलता कि ऋग्वेद में इसका यह अर्थ है। दस्यु हैं पवित्र **वाणी** से घृणा करनेवाले; ये वे हैं जो हवि को या सोमरस को देवों के लिए अर्पित नहीं करते, जो गौओं व घोडों की दौलत को तथा अन्य खजानों को अपने ही लिए रख लेते हैं और उन चीजों को द्रष्टाओं ( ऋषियों ) के लिए नहीं देते; ये वे हैं जो यज्ञ नहीं करते। यदि हम चाहें तो यह भी कल्पना कर सकते हैं कि भारत में दो ऐसे विभिन्न सम्प्रदायों के बीच एक संघर्ष हुआ करता था और इन सम्प्रदायों के मानवीय प्रतिनिधियों के बीच होनेवाले इस भौतिक संघर्ष को देख कर उस से ही ऋषियोंने अपने प्रतीकों को लिया तथा उन्हें आध्यात्मिक संघर्षमें प्रयुक्त कर दिया, वैसे ही जैसे उन्होंने अपने भौतिक जीवन के अन्य अंग-उपांगों को आध्यात्मिक यज्ञ, आध्यात्मिक दौलत और आध्यात्मिक युद्ध व यात्रा के लिए प्रतीक के रूप में प्रयुक्त किया। यह कल्पना ठीक हो या न हो, इतना तो पूर्णतया निश्चित है कि ऋग्वेद में कम से कम जिस युद्ध और विजय का वर्णन हुआ है वह कोई भौतिक युद्ध और लूटमार नहीं है बल्कि एक आध्यात्मिक संघर्ष और आध्यात्मिक विजय है।

यदि हम इक्के दुक्के संदर्भो को लेकर उन्हें कोईसा एक विशेष अर्थ दे डालें जो केवल उसी जगह ठीक लग सके जब कि हम उन बहुत से अन्य संदर्भों की उपेक्षा कर देते हों जिन में वह अर्थ स्पष्ट ही अनुपपन्न ठहरता है तो अर्थ करने की यह प्रणाली या तो विचारतुला पर ठीक न उतरनेवाली होगी या एक कपटपूर्ण प्रणाली होगी। हमें इकट्ठे रूप से वेद के उन सभी उल्लेखों को लेना चाहिये जिन में पणियों का, उन की दौलत का, उन के विशेष गुणों का और उन पणियों पर प्राप्त की गई देवों, द्रष्टाओं तथा आर्यों की विजय का वर्णन है और इस प्रकार उन सभी सन्दर्भों को इकट्ठा लेकर देखने से जो परिणाम निकले उसे एकविध रूप से स्वीकार करना चाहिए। जब हम इस प्रणाली का अनुसरण करते हैं तो हम देखते हैं कि, इन सन्दर्भों में से कई सन्दर्भ ऐसे हैं, जिन में पणियों के सम्बन्ध में यह विचार कि ये मानवप्राणी हैं पूर्णतया असंभव लगता है और उन सन्दर्भों से यह प्रतीत होता है कि पणियां तो भौतिक अन्धकारकी या आध्यात्मिक अन्धकारकी शक्तियाँ है, दूसरे कुछ सन्दर्भ ऐसे हैं, जिन में पणि भौतिक अन्धकार की शक्तियाँ सर्वथा नहीं हो सकते, बल्कि या तो वे देवान्वेषकों और यज्ञकर्त्ताओं के मानवीय शत्रु हैं और या वे आध्यात्मिक **प्रकाश** के शत्रु हैं; फिर अन्य कुछ सन्दर्भ

हमें ऐसे मिलते हैं जिनमें वे न तो मानवीय शत्रु हो सकते हैं न भौतिक **प्रकाश** के शत्रु, बल्कि निश्चित तौर पर वे आध्यात्मिक **प्रकाश**, दिव्य **सत्य** और दिव्य **विचार** के शत्रु हैं। इन तथ्योंसे केवल एक ही परिणाम निकल सकता है कि पणि वेद में सदा आध्यात्मिक प्रकाशके और केवल आध्यात्मिक प्रकाशके शत्रु है।

इन दस्युओं के सामान्य स्वरूप को बतानेवाले मूल-सूत्र के तौर पर हम ऋक् ५.१४.४ को ले सकते हैं, "**अग्नि** पैदा होकर चमका, **ज्योति** से दस्युओं को, अन्धकार को हनन करता हुआ, उसने **गौओं** को, **जलों** को, **स्वः** को पा लिया"।

**अग्निर्जातो अरोचत, घ्नन् दस्यून् ज्योतिषा तमः।**
**अविन्दद् गा अपः स्वः॥** ( ऋ. ५-१४-४ )

दस्युओं के दो बडे विभाग हैं, एक तो 'पणि' जो गौओं तथा जलों दोनों को अवरुद्ध करते हैं, पर मुख्यतः जिन का सम्बन्ध गौओं के रुन्धन से है, दूसरे 'वृत्र' जो जलोंको और प्रकाश को अवरुद्ध करते हैं पर मुख्य रूप से जलोंके रुन्धन से जिनका सम्बन्ध है, सभी दस्यु निरपवाद रूप से 'स्वः' को आरोहण करने के मार्ग में आकर खडे हो जाते हैं और वे आर्य द्रष्टाओं द्वारा की जानेवाली दौलत की प्राप्ति का विरोध करते हैं। प्रकाश के रुन्धन से अभिप्राय है, उन द्वारा 'स्वः' के दर्शन, **स्वर्दृक्** और सूर्य के दर्शन का, ज्ञान के उच्च दर्शन, **उपमाकेतु** का निरोध, जलों के रुन्धन से अभिप्राय है उन द्वारा 'स्वः' की विपुल गति **स्ववती अपः** का **सत्य** की गति या प्रवाहों, **ऋतस्य प्रेषा, ऋतस्य धाराः** का निरोध; दौलत प्राप्ति से विरोध का अभिप्राय है 'स्व.' के विपुल सारपदार्थ **वसु, धन, वाज**, हिरण्यका उन द्वारा रुन्धन, उस महान् सम्पत्तिका रुन्धन जो सम्पत्ति सूर्यमें और जलोंमें निहित है, (**अप्सु सूर्ये महद् धनम्।**) तो भी क्योंकि सारी लडाई **प्रकाश** और **अन्धकार** के बीच, **सत्य** और **अनृत** के बीच, दिव्य **माया** और अदिव्य माया के बीच है, इसलिये सभी दस्यु यहाँ एक समान अन्धकार के अभिन्नरूप मान लिये गए है, और यह अग्नि के पैदा होने और चमकने लगने पर होता है कि **ज्योति** उत्पन्न हो जाती है जिस के कि द्वारा वह दस्युओं का और अन्धकार का हनन करता है। ऐतिहासिक व्याख्या से यहाँ बिल्कुल भी काम नहीं चलेगा, यद्यपि प्रकृतिवादी व्याख्याको रास्ता मिल सकता है यदि हम इस सन्दर्भ को अन्य वर्णन से जुदा रूप में ही देखें और यह मान ले कि यज्ञिय अग्नि को प्रज्वलित करना दैनिक सूर्योदय का कारण होता है; पर हमें वेद के तुलनात्मक अध्ययनसे किसी निर्णय पर पहुँचना है न कि जुदा-जुदा सन्दर्भों के बल पर।

आर्यों और पणियों या दस्युओं के बीचका विरोध पाँचवे मण्डल के एक अन्य सूक्त ( ५।३४ ) में स्पष्ट हो गया है, और ३।३४ में हमें **आर्यवर्ण** यह प्रयोग मिलता है। यह हमें अवश्य स्मरण रखना चाहिए कि 'दस्यु' अन्धकार से अभिन्नरूप बताये गये हैं, इसलिये आर्योंका सम्बन्ध प्रकाश से होना चाहिए, और वस्तुतः ही हम पाते हैं कि स्पष्टतया **दास-अन्धकार** की कल्पना के मुकाबले में, सूर्य के प्रकाश को वेद में **आर्य-प्रकाश** कहा गया है। वसिष्ठ भी तीन आर्यजनों का वर्णन करता है जो कि "ज्योतिरग्राः" अर्थात् प्रकाश को अपना नेता बनानेवाले हैं, **प्रकाश** को जो अपने आगे-आगे रखते है। आर्य-दस्यु पक्ष पर यथोचित रूप से तभी विचार हो सकता है यदि एक व्यापक विवाद चलाया जाये जिस में सभी प्रसंगप्राप्त सन्दर्भों की परीक्षा की जाये और जो कठिनाइयाँ आयें उन का मुकाबला किया जाये। परन्तु मेरे वर्तमान प्रयोजन के लिए यह प्रारंभिक-बिन्दु पर्याप्त है।

हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि वेद में हमें '**ऋतं ज्योति**' '**हिरण्यं ज्योतिः**' 'सत्य प्रकाश,' 'सुनहला प्रकाश' ये मुहाविरे मिलते हैं जो हमारे हाथ में एक और सूत्र पकडाते हैं। अब सौर प्रकाश के ये तीन विशेषण, **आर्य, ऋत, हिरण्य** मेरी राय में परस्पर एक दूसरे के अर्थ द्योतक हैं और लगभग समानार्थक हैं। सूर्य सत्य का देवता, इसलिये इस का प्रकाश '**ऋतं ज्योतिः**' है, यह सत्य का प्रकाश वह है जिसे आर्य, वह देव हो या मनुष्य, धारण करता है और जिस से उस का आर्यत्व बनता है, फिर 'सूर्य' के लिए 'सुनहला' यह विशेषण सततरूप से प्रयुक्त हुआ है और 'सोना' वेद में संभवतः सत्य के सार का प्रतीक है, क्योंकि सत्य का सार है प्रकाश जो वह सुनहली दौलत है जो सूर्य में और 'स्वः' के जलों

में (अप्सु सूर्ये) पाई गई है,- इस लिए हम ' हिरण्यज्योतिः ' यह विशेषण पाते हैं। यह सुनहला या चमकीला प्रकाश सत्य का रंग, ' वर्ण ' है; साथ ही यह उन विचारों का भी रंग है जो विचार उस प्रकाश से परिपूर्ण हैं जिसे आर्योंने जीता था, वे गौएं जो रंग में चमकीली, शुक्र, श्वेत हैं, वैसी जैसा कि प्रकाश का रंग होता है, जब कि दस्यु, क्योंकि वह अन्धकार की एक शक्ति है, रंग में काला है।

मेरी सम्मति में सत्य के प्रकाश का आर्यज्योति का, चमकीलापन ही आर्यवर्ण है अर्थात् उन आर्यों का वर्ण जो ' ज्योतिरग्राः ' हैं, अज्ञानकी रात्रिका कालापन पणियों का रंग है, दासवर्ण। इस प्रकार प्राय. ' वर्ण ' का अर्थ होगा, ' स्वभाव ' अथवा वे सब जो उस विशेष स्वभाववाले हैं, क्योंकि रग स्वभाव का द्योतक है, और यह बात कि यह विचार प्राचीन आर्यों के अन्दर एक प्रचलित विचार था मुझे इस से पुष्ट होती प्रतीत होती है कि बाद के काल में भिन्न भिन्न रंग-सफेद, लाल, पीला, काला-चार जातियों (वर्णों) में भेद करने के लिए व्यवहृत हुए है। ऋ. ५।३४ का सन्दर्भ निम्न प्रकार है—

"वह (इन्द्र) पाँच के साथ और दसके साथ आरोहण करने की इच्छा नहीं करता; वह उसके साथ संयुक्त नहीं होता जो सोम की हवि नहीं देता है, चाहे वह वृद्धि को ही क्यों न प्राप्त हो रहा हो; वह उसे पराजित कर देता है या वह अपनी वेगयुक्त गति से उस का वध कर देता है, वह देवत्व के अभिलाषी ( देवयुः ) को उसके सुखभोग के लिए गौओं से परिपूर्ण बाडे को देता है। " [ मन्त्र ५ ]

" युद्ध-संघट्ट में ( शत्रु का ) विदारण करनेवाला, चक्र ( या पहिये ) को दृढता से थामनेवाला, जो सोमरस अर्पित नहीं करता उस से पराङ्मुख, पर सोमरस अर्पित करनेवाले को बढानेवाला, वह इन्द्र बडा भीषण है और सब का दमन करनेवाला है; वह ' आर्य ' इन्द्र ' दास ' को पूर्णतया अपने वश में कर लेता है। " [ मंत्र ६ ]

" पणि के इस सुखभोग को चलित करता हुआ, अपहरण करता हुआ वह ( इन्द्र ) आता है और वह देनेवाले को ( दाशुषे ) उस के सुख के लिए ' सूनरं वसु ' बाँटता है अर्थात् वह दौलत बाँटता है जो कि वीर-शक्तियो से ( शब्दार्थ में मनुष्यों से ) समृद्ध है। [ यहां ' सूनरं ' का अर्थ ' वीर-शक्तियों से समृद्ध ' यह किया है, क्योंकि ' वीर ' और ' नृ ' बहुधा पर्यायरूप में प्रयुक्त होते हैं ] वह मनुष्य जो इन्द्र के बल को क्रुद्ध करता है, एक दुर्गम यात्रा में अनेक रूपसे रुकावटों को पाता है। " (+ दुर्गे चन ध्रियते आ पुरु।) [ मन्त्र ७ ]

" जब मघवा ( इन्द्र ) ने चमकीली गौओं के अन्दर उन दो ( जनों ) को जान लिया जो भरपूर दौलतवाले ( सुधनौ ) और सब बलों से युक्त ( विश्वशर्धसौ ) हैं, तब वह ज्ञान में बढता हुआ एक तीसरे ( जन ) को अपना सहायक बनाता है और तेजी से गति करता हुआ अपने योद्धाओं की सहायता से गौओं के समुदाय को ( गव्यम ) ऊपर की तरफ खोल देता है। " [ मन्त्र ८ ] ×

---

+ ऋषि देवों से सदा यह प्रार्थना करते हैं कि वे ' सर्वोच्च सुख ' की ओर उन का मार्ग बना देवें जो मार्ग सुगम और अकण्टक ' सुग ' हो; ' दुर्ग ' इस सुगम का उलटा है, यह वह मार्ग है जो अनेकविध ( पुरु ) आपत्तियों और कष्टों व कठिनाइयों से भरा पडा है।

× न पञ्चभिर्दशभिर्वष्ट्यारभं नासुन्वता सचते पुष्यता चन ।
जिनाति वेदमुया हन्ति वा धुनिरा देवयुं भजति गोमति व्रजे ॥ ५ ॥
वित्वक्षणः समृतौ चक्रमासजोऽसुन्वतो विषुणः सुन्वतो वृधः ।
इन्द्रो विश्वस्य दमिता विभीषणो यथावशं नयति दासमार्यः ॥ ६ ॥
समीं पणेरजति भोजनं मुषे वि दाशुषे भजति सूनरं वसु ।
दुर्गे चन ध्रियते विश्व आ पुरु जनो यो अस्य तविषीमचुक्रुधत् ॥ ७ ॥
सं यज्जनौ सुधनौ विश्वशर्धसाववेदिन्द्रो मघवा गोषु शुभ्रिषु ।
युजं ह्यन्यमकृत प्रवेपन्युदीं गव्यं सृजते सत्वभिर्धुनिः ॥ ८ ॥ ( ऋ. ५।३४ )

और इस सूक्त की अन्तिम ऋचा आर्य ( चाहे वह देव हो या मनुष्य ) के विषय में यह वर्णन करती है कि वह आर्य सर्वोच्च ज्ञान दर्शन पर पहुंच जाता है ( उपमां केतुं अर्य. ), जल अपने संगमों में उसे पालित करते है और उस के अन्दर बलवती तथा जाज्वल्यमान संग्राम-शक्ति, ( **क्षत्रम् अमवत् त्वेषम्**, ) रहती है ॐ।

जितना कुछ इन प्रतीकों के बारे में हम पहले से ही जानते हैं उतने से हम इस सूक्त के आन्तरिक आशय को सुगमता से समझ सकते हैं। इन्द्र, जो **दिव्य मन शक्ति** है, **अज्ञान** की शक्तियों के पास से उन की छिपा कर रखी हुई दौलतको ले लेता है और तब भी जब कि वे **अज्ञान**-शक्तियाँ प्रचुर और पुष्टियुक्त होती है वह उन से सम्बन्ध स्थापित करने को तैयार नहीं होता, वह प्रकाशमयी **उषा** की बन्द पडी गौओं को, उस यज्ञ करनेवाले को दे देता है जो देवत्वों का अभिलाषी है। वह ( इन्द्र ) स्वयं **आर्य** है जो अज्ञान के जीवन को पूर्ण तौर से उच्चतर जीवन के वश में कर देता है जिस से कि यह अज्ञान का जीवन उस सारी दौलत को जो इस के कब्जे में थी इस उच्चतर जीवन के हाथ में सौंप देता है। देवों को निरूपित करने के लिए ' आर्य ' तथा ' अर्य ' शब्दों का प्रयोग न केवल यहाँ पर बल्कि अन्य सन्दर्भों में भी अपने आप में यह दर्शाने की प्रवृत्ति रखता है कि **आर्य** तथा **दस्यु** का विरोध एक राष्ट्रिय या जातिगत अथवा केवलमात्र मानवीय भेद नहीं है, बल्कि इस का एक गंभीरतर अर्थ है।

योद्धा यहाँ निश्चित ही सात अंगिरस हैं, क्योंकि वेही, न कि ' मरुत् ' जैसा कि सायण ने ' सत्वभिः ' का अर्थ लिया है, गौओं की मुक्ति में इन्द्र के सहायक होते हैं। पर जिनको इन्द्र चमकीली गौओं के अन्दर प्रविष्ट होकर अर्थात् **विचार** के पुञ्जीभूत प्रकाशों को अधिगत करके पाता है या जानता है, वे **तीन जन** यहाँ कौन हैं निश्चय कर सकना अधिक कठिन है। बहुत अधिक सम्भव यह है कि ये वे तीन हैं जिन के द्वारा अंगिरस ज्ञान की सात किरणें बढकर दस हो जाती है, जिससे कि अंगिरस सफलतापूर्वक दस महीनों को पार कर लेते हैं और सूर्य तथा गौओं को मुक्त करा लेते हैं; क्योंकि यहाँ भी दो ( जनों ) को पा लेने या जान लेने और तीसरे ( जन ) की मदद पा लेने के बाद ही यह होता है कि इन्द्र पणियों के पास से गौओं को छुडा पाता है। इन तीन जनों का सम्बन्ध प्रकाशको नेता बनानेवाले ( ज्योतिरग्रः ) तीन आर्यजनों के प्रतीकवाद के साथ तथा ' स्वः ' के तीन प्रकाशमान लोकोंके प्रतीकवाद के साथ भी जुड सकता है क्योंकि, सर्वोच्च ज्ञान-दर्शन (**उपमाकेतुः**) की उपलब्धि उनकी क्रिया का अन्तिम परिणाम है और यह सर्वोच्च ज्ञान वह है जो ' स्वः ' के दर्शन से युक्त है तथा अपने तीन प्रकाशमान लोकों ( **रोचनानि** ) में स्थित है जैसा कि हम ३.२.१४ में पाते है **स्वर्दृशं केतुं दिवो रोचनस्थामुषर्बुधम्**, " वह ज्ञान-दर्शन जो ' स्वः ' को देखता है, जो प्रकाशमान लोकों में स्थित है, जो उषा में जागृत होता है। "

ऋ. ३ ३४ में विश्वामित्रने 'आर्यवर्ण' यह पदप्रयोग किया है और साथ ही वहाँ उसने इसके अध्यात्मपरक अर्थ की कुञ्जी भी हमें दे दी है। इस सूक्त की ( ८ से १० तक ) तीन ऋचाएं निम्न प्रकार से हैं-

**सत्रासाहं वरेण्यं सहोदां ससवांसं स्वरपश्च देवीः ससान यः पृथिवीं द्यामुतेमामिन्द्रं मदन्त्यनु धीरणासः ॥ ८॥**

" (वे स्तुति करते हैं) अतिशय वाञ्छनीय, सदा अभिभव करनेवाले, बलके देनेवाले, ' स्वः ' तथा दिव्य जलों को जीतकर अधिगत करनेवाले ( इन्द्र ) की, विचारक लोग इन्द्रके आनन्दमें आनन्दित होते हैं, जो इन्द्र पृथिवी तथा द्यौ को अधिकृत कर लेनेवाला है " ॥ ८॥

**ससानात्याँ उत सूर्यं ससानेन्द्रः ससान पुरुभोजसं गाम्। हिरण्ययमुत भोगं ससान हत्वी दस्यून् प्रार्यं वर्णमावत् ॥ ९॥**

" इन्द्र **घोडों** को अधिगत कर लेता है, **सूर्य** को अधिगत कर लेता है, अनेक सुख-भोगोंवाली **गौ** को अधिगत कर लेता है; वह सुनहले सुख-भोगोंको जीत लेता है, दस्युओं का वध करके वह ' **आर्यवर्ण** ' की पालना करता है ( या रक्षा करता है,) " ॥ ९॥

---

ॐ सहस्रसामाग्निवेशिं गृणीषे शत्रिमग्न उपमां केतुमर्यः ।
तस्मा आपः संयतः पीपयन्त तस्मिन् क्षत्रममवत् त्वेषमस्तु ॥ ९॥ ( ऋ. ५.३४.९)

**इन्द्र ओषधीरसनोदहानि वनस्पतींरसनोदन्तरिक्षम् । बिभेद वलं नुनुदे विवाचो ऽथाभवद् दमिताभिक्रतूनाम् ॥ १० ॥**

" इन्द्र ओषधियों को और दिनोंको जीत लेता है, वनस्पतियोंको और अन्तरिक्षको जीत लेता है, वह 'बल' का भेदन कर डालता है और **वाणियों** के वक्ताको आगे की तरफ प्रेरणा दे देता है, इस प्रकार वह उन का दमन--कर्ता बन जाता है, जो उसके विरुद्ध कर्मों के करने का संकल्प रखनेवाले हैं ।" ( अभिक्रतूनाम् ) ॥ १० ॥

यहाँ हम देखते है कि उस सारी दौलत के प्रतीकमय तत्त्व आगये हैं जिसे कि इन्द्रने आर्य के लिए जीता है और उस दौलत में सम्मिलित है, सूर्य, दिन, पृथिवी, द्युलोक, अन्तरिक्षलोक, घोडे, पार्थिव उपचय, ओषधियाँ और वनस्पतियाँ ( ' वनस्पतीन् ' यहाँ द्वयर्थक रूप में है. वन के अधिपति और सुखभोग के अधिपति ); और ' वल ' तथा उसके सहायक दस्युओं के विरोधी रूपमें यहाँ हम ' आर्य--वर्ण ' को पाते हैं ।

परन्तु इस से पूर्ववर्ती ऋचाओं में ( ४--६ में ) पहले ही ' वर्ण ' शब्द इस अर्थ में आ चुका है कि यह आर्य के विचारों का रंग है, उन विचारों का जो सच्चे तथा प्रकाश से परिपूर्ण हैं । ' स्वः के विजेता इन्द्रने, दिनों को पैदा करके, इच्छुकों ( अंगिरसों ) को साथ लेकर ( दस्युओं की ) इन सेनाओं पर आक्रमण किया और उन्हें जीत लिया; उसने मनुष्य के लिए दिनोंके ज्ञान-दर्शनको (केतुम् अह्नाम्) प्रकाशित कर दिया, उसने विशाल आनन्द के लिए **प्रकाश** को पा लिया [ ऋचा ४ ] उसने अपने उपासक के लिए इन विचारों को ज्ञान--चेतना से युक्त किया, जागृत किया, उसने इन ( विचारों ) के चमकीले ' वर्ण ' को आगे ( दस्युओं की बाधासे परे ) पहुँचा दिया ( **अचेतयद् धिय इमा जरित्रे प्रेमं वर्णमतिरच्छुक्रमासाम्** ) [ ऋचा ५ ] । ' वे महान् इन्द्रके अनेक महान् और पूर्ण कर्मों को क्रिया में लाते हैं; ( या उन की स्तुति करते हैं ) अपने बल से, अपनी अभिभूत कर देनेवाली शक्ति में भरकर, अपनी ज्ञान को क्रियाओं द्वारा ( मायाभिः ) वह कुटिल दस्युओं को पीस डालता है । [ ऋचा ६ ] ' ×

यहाँ हम ' केतुम् अह्नाम् ' अर्थात् ' दिनों का ज्ञान--दर्शन ' इस वैदिक मुहावरे को पाते है, जिस से **सत्य** के **सूर्य**का वह प्रकाश अभिप्रेत है जो विशाल दिव्य आनन्द को प्राप्त कराता है, क्योंकि ' दिन ' वे हैं जो मनुष्य के लिए इन्द्र से की गई ' स्वः ' की विजय द्वारा किये गये उस समय जब कि, जैसा कि हम जानते है, इन्द्रने पहले उत्पन्न अंगिरसों की सहायता से पणि--सेनाओं का विनाश कर लिया, तथा **सूर्य** और प्रकाशमय **गौओं** का उदयन हो चुका ।

देव यह सब कुछ मनुष्यके लिए और मनुष्यकी शक्तियों का रूप धारण करके करते हैं, न कि स्वयं अपने लिए क्योंकि वे तो पहले से ही इन दौलतों से युक्त हैं,-- मनुष्य के लिए वह इन्द्र ' नृ ' अर्थात् **दिव्य मनुष्य** या **पुरुष** बनकर उस पौरुष के अनेक बलों को धारण करता है, (**नृवद् नर्या पुरूणि**) मनुष्य को वह इसके लिए जागृत करता है कि वह इन विचारों का ज्ञान प्राप्त करे, जिन विचारों को यहाँ प्रतीकरूप में पणियों पास से छुडाई गई चमकदार गौएँ कहा गया है; और इन विचारोंका चमकीला रंग, (**शुक्रं वर्णमासाम्**,) स्पष्टतः वही है जो ' शुक्र ' या ' श्वेत ' आर्य--रंग है, जिस का नौवी ऋचा में उल्लेख हुआ है । इन्द्र इन विचारों के ' रंग ' को आगे लेकर या वृद्धि--गत करके पणियों के विरोध से परे कर देता है, ( **प्रवर्णमतिरच्छुक्रम्** ' ) ऐसा करके वह दस्युओं को मार डालता है और आर्य के ' रंग ' की रक्षा करता है या पालना करता है और वृद्धि करता है, (**हत्वी दस्यून् प्रार्यं वर्णमावत्** ।) इसके अतिरिक्त एक बात यह है कि ये दस्यु कुटिल हैं,

× इन्द्रः स्वर्षा जनयन्नहानि जिगायोशिग्भिः पृतना. अभिष्टिः ।
प्रारोचयन्मनवे केतुमह्नामविन्दज्ज्योतिर्बृहते रणाय ॥ ४ ॥
( इन्द्रस्तुजो बर्हणा आ विवेश नृवद् दधानो नर्या पुरूणि ) ।
अचेतयद् धिय इमा जरित्रे प्रेमं वर्णमतिरच्छुक्रमासाम् ॥ ५ ॥
महो महानि पनयन्त्यस्येन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि ।
वृजनेन वृजिनान् त्सं पिपेष मायाभिर्दस्यूँरभिभूत्योजाः ॥ ६ ॥( ऋ. ३।३४।४--६ )

**(वृजिनान्,)** तथा ये जीते जाते हैं इन्द्रके कर्मों या ज्ञान के रूपों द्वारा, उस की ' मायाओं ' द्वारा, जिन मायाओं से, जैसा कि अन्य कई स्थानोंपर कहा मिलता है, वह इन्द्र दस्युओंकी, ' वृत्र ' की या ' बल ' की विरोधिनी 'मायाओं' को अभिभूत करता है । ' ऋजु ' और ' कुटिल ' ये वेद में सततरूप से क्रमशः ' सत्य ' और ' अनृत ' के पर्याय-वाची के तौरपर आते हैं । इस लिए यह स्पष्ट है कि ये ' पणिदस्यु ' अनृत और अज्ञान की कुटिल शक्तियाँ हैं जो अपने मिथ्या ज्ञान को, अपने मिथ्या बल, संकल्प और कर्मों को देवों तथा आर्योंके सच्चे ज्ञान, सच्चे बल, सच्चे संकल्प और कर्मों के विरोध में लगाती हैं । **प्रकाश** की विजय का अभिप्राय है इस मिथ्या ज्ञान या दानवीय ज्ञान पर सत्यके दिव्य ज्ञान की विजय; और उस विजय का मतलब है **सूर्य** का ऊर्ध्वारोहण, **दिनों** का जन्म, उषा का उदय, प्रकाशमान **किरणों** रूपी गौओं की मुक्ति और उन गौओं का **प्रकाश** के लोक में चढना ।

ये गौएं सत्य के विचार हैं, यह हमें सोम देवता के एक सूक्त ९-१११ में पर्याप्त स्पष्ट रूप में बता दिया गया है ।

' इस जगमगानेवाले प्रकाश से, अपने को पवित्र करता हुआ, अपने स्वयं जुते घोडों द्वारा वह सब विद्वेषिणी शक्तियों को चीरकर पार निकल जाता है, मानों उस के वे घोडे **सूर्य** के स्वयं जुते घोडे हों । निचोडे हुए सोम की धारा-रूप, अपने को पवित्र करता हुआ, आरोचमान, जगमगाने-वाला वह चमक उठता है, जब कि वह ' ऋक के वक्ताओं के साथ, सात–मुखों–वाले, ऋक् के वक्ताओं (अंगिरस शक्तियों) के साथ, ( वस्तुओं के ) सब रूपों को चारों ओर से घेरता है। [ ऋचा १' ]

' तू, हे सोम ' पणियों की उस दौलत को पा लेता है; तू अपने आप को ' माताओं ' के द्वारा ( अर्थात् पणियों की गौओं के द्वारा, क्योंकि दूसरे सूक्तों में पणियोंकी गौओं को ' माता ' यह नाम कई जगह दिया गया है, ) अपने स्वकीय घर ( स्वः ) में चमका लेता है, **'सत्यके विचारों'** के द्वारा अपने घर में ( चमका लेता है ), **संमातृभिर्म-र्जयसि स्व आ दम, ऋतस्य धीतिभिर्दमे** । मानों उच्च तर लोक का ( परावतः ) ' साम ' ( समतापूर्ण निष्पत्ति या सिद्धि, (समानं ऊर्व,) समतल विस्तार में ) वह ( स्वः ) है जहां ( सत्य के ) विचार आनन्द लेते हैं । त्रिगुण लोक में रहनेवाली ( या तीन मूलतत्त्वोंवाली ) उन आरोचमान ( गौओं ) द्वारा वह ( ज्ञान की ) विशाल अभिव्यक्ति को धारण करता है, वह जगमगाता हुआ विशाल अभि–व्यक्तियों को धारण करता है । [ ऋचा २ ] ' ॐ

यहाँ हम देखते हैं कि पणियों की गौएं वे विचार हैं जो **सत्य** को प्राप्त कर लेते हैं– पणियों की जिन गौओं के विषय में यहाँ यह कहा गया है कि इनके द्वारा सोम अपने निज घर में [ अर्थात् उस घर में जो ' अग्नि ' तथा अन्य देवोंका घर है और जिस घर से हम इस रूप में परिचित है कि यह ' स्वः ' का बृहत् **सत्य** ( ऋतं बृहत् ) है ] साफ और चमकीला हो जाता है और यह कहा गया है कि ये जगमगानेवाली गौएं अपने अन्दर सर्वोच्च लोक के त्रिगुण स्वभाव को रखती हैं, **(त्रिधातुभिः अरुषीभिः)** और इन के द्वारा सोम उस **सत्य** के जन्म को या उस की विशाल अभिव्यक्ति × को धारण करता है, उन इन गौओं से अभिप्रेत वे विचार हैं जो **सत्य** को प्राप्त कर लेते हैं । यह ' स्वः ' जो उन तीन प्रकाशमान लोकोंवाला है जिन

---

ॐ अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषांसि तरति स्वयुग्वभिः सूरो न स्वयुग्वभिः ।
धारा सुतस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः । विश्वा यद्रूपा परियात्यृकभिः सप्तास्येभिर्ऋकभिः ॥ १ ॥
त्वं त्यत् पणीनां विदो वसु सं मातृभिर्मर्जयसि स्व आ दम ऋतस्य धीतिभिर्दमे ।
परावतो न साम तद् यत्रा रणन्ति धीतयः ।
त्रिधातुभिररुषीभिर्वयो दधे रोचमानो वयो दधे ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१११।१-२ )

× वयः, तुलना करो ६.२१.२–३से, जहाँ यह कहा गया है कि जो इन्द्र ज्ञानी है और जो हमारे शब्दों (वाणियों) को वहन करता है और उन शब्दों द्वारा यज्ञ में प्रवृद्ध होता है, **(इन्द्रं यो विदानो गिर्वाहसं गीर्भिर्यज्ञवृद्धम्)** वह इन्द्र उस अन्धकार को जो ज्ञान से शून्य फैला पडा था **सूर्य** के द्वारा उस रूप में परिणत कर देता है जो ज्ञान की अभिव्यक्ति से युक्त है, **(स इत्तमोऽवयुनं ततन्वत् सूर्येण वयुनवच्चकार ।)**

की विशालता में 'त्रिधातु' समतापूर्ण निष्पन्नता रहती है ('त्रिधातु' यह मुहावरा प्राय: उस त्रिविध परम तत्त्व के लिए प्रयुक्त हुआ है जिससे त्रिगुणित सर्वोच्च लोक, **तिस्रः परावतः** बना है), अन्यत्र इस रूप में वर्णित किया है कि यह विशाल तथा भयरहित चरागाह है जिस में **गौएं** इच्छानुसार विचरण करती हैं और आनन्द लेती हैं (रण्यंति) और यहाँ भी यह 'स्वः' वह प्रदेश है जहां **सत्य के विचार** आनन्द लेते हैं, (**यत्र रणन्ति धीतय**) और अगली (तीसरी) ऋचा में यह कहा गया है कि 'सोम' का दिव्य रथ ज्ञान को प्राप्त करता हुआ, प्रकृष्ट (परम) दिशा का अनुसरण करता है और दर्शन (Vision) से युक्त होकर किरणों द्वारा आगे बढने का यत्न करता है, (**पूर्वामनु प्रदिशं याति चेकितत् सं रश्मिभिर्यतते दर्शतो रथो दैव्यो दर्शतो रथः**) यह परम दिशा स्पष्ट ही दिव्य या बृहत् **सत्य** की दिशा है; ये किरणें स्पष्टतः **दिव्य उषा** की या **सत्य के सूर्य** की किरणें हैं, वे गौएं हैं जिन्हें पणियोंने छिपा रखा है, ये है प्रकाशमान विचार, चमकीले रंग की 'धियः,' 'ऋतस्य धीतयः'।

वेद की सारी अन्तःसाक्षी जहाँ कहीं भी पणियों, गौओं, अंगिरसों का उल्लेख हुआ है, नियत रूप से इसी परिणाम को सन्तुष्ट करती है, स्थापित करती है। पणि हैं **सत्य** के विचारों के अवरोधक, ज्ञान-रहित अन्धकार (तमो अवयुनम्) में निवास करनेवाले, जिस अन्धकार को इन्द्र और अंगिरस **दिव्य शब्द** के द्वारा, **सूर्य**के द्वारा हटा कर उस के स्थान में **प्रकाश** को ले आते हैं, ताकि जहाँ पहले अन्धकार था, वहाँ **सत्य** का विस्तार अभिव्यक्त हो जाये। इन्द्र पणियों के साथ भौतिक आयुधों से नहीं बल्कि **शब्दों** से युद्ध करता है (देखो ऋ.६.३९ २) **पणींर्वचोभिरभियोधदिन्द्र**। जिस सूक्त में यह वाक्यांश आया है उस सूक्त (६.३८) का बिना कोई टिप्पणी किये केवल अनुवाद कर देना पर्याप्त होगा, जिससे कि इस प्रतीकवाद का स्वरूप अन्तिम रूप से प्रकट हो जाय।

'उस दिव्य और आनन्दमग्न क्रान्तदर्शी (सोम) की-उस की जो यज्ञ का वाहक है, उस की जो प्रकाशमान विचार वाला मधुमय वक्ता है, प्रेरणाओं को, हे देव! हम से, **शब्द** के वक्ता से संयुक्त कर, जो प्रेरणाएँ प्रकाश की **गौओं** से पुरःसृत (इषो गो अग्रा.) हैं। [मन्त्र १']

'यह था जिसने चमकीली (गौओं, 'उस्राः'' को, जो पहाडी के चारों ओर थीं चाहा, जो **सत्य** को जोतनेवाला, **सत्य** के विचारों से अपने रथ को जोते हुए था, (**ऋतधीतिभिर्ऋतयुग् युजानः**;) (तब) इन्द्रने 'बल' के अभग्न पहाडी सम प्रदेश (सानु) को तोडा, **शब्दों** के द्वारा उसने पणियों के साथ युद्ध किया।' [मन्त्र २]

'यह (सोम) था जिसने **चन्द्र-शक्ति** (इन्दु) के रूप में, दिन-रात लगकर और वर्षों में प्रकाश-रहित रात्रियों को चमकाया, और वे (रात्रियाँ) दिनों के दर्शन (Vision, केतु) को धारण करने लग पडीं; उसने **उषाओं** को रचा जो उषाएँ जन्म में पवित्र थीं' [मन्त्र ३]

'यह था जिसने आरोचमान होकर प्रकाश-रहितों को प्रकाश से परिपूर्ण किया; उसने **सत्य** के द्वारा अनेकों (उषाओं) को चमकाया, वह **सत्य** से जोते हुए घोडों के साथ, 'स्वः' को पालेनेवाले पहिये के साथ चल पडा, कर्मों के कर्त्ताको (दौलत से) परितृप्त करता हुआ (चर्षणिप्रा.)।' [मन्त्र ४] ॐ

यह सर्वत्र विचार है, **सत्य** है, शब्द है जो पणियों की **गौओं** के साथ सम्बद्ध पाया जाता है; **दिव्य मन शक्ति** इन्द्र के शब्दों द्वारा वे जीते जाते हैं जो गौओं को अवरुद्ध करते हैं, वह जो कि अन्धकारपूर्ण था प्रकाशमय हो जाता

---

ॐ ६.३८:- मन्द्रस्य कवेर्दिव्यस्य वह्नेर्विप्रमन्मनो वचनस्य मध्वः।
अपा नस्तस्य सचनस्य देवेषो युवस्व गृणते गोअग्राः ॥ १ ॥
अयमुशानः पर्यद्रिमुस्रा ऋतधीतिभिर्ऋतयुग्युजानः।
रुजदरुग्णं वि वलस्य सानुं पणींर्वचोभिरभियोधदिन्द्रः ॥ २ ॥
अयं द्योतयदद्युतो व्य१क्तून् दोषा वस्तोः शरद इन्दुरिन्द्र ।
इमं केतुमदधुर्नू चिदह्नां शुचिजन्मन उषसश्चकार ॥ ३ ॥
अयं रोचयदरुचो रुचानो३ऽयं वासयद् व्यृ१तेन पूर्वीः। अयमीयत ऋतयुग्भिरश्वैः स्वर्विदा नाभिना चर्षणिप्राः ॥४॥
(ऋ. ६।३९.१-४)

है, सत्यसे जोते गए घोडों से खिंचनेवाला रथ ( ज्ञान के द्वारा, स्वर्विदा नाभिना ) सत्ता की, चेतना की, और आनन्द की प्रकाशमय विस्तीर्णता को पाता है जो कि अब तक हमारी दृष्टि से ओझल हैं। ' ब्रह्म ' ( विचार ) के द्वारा इन्द्र 'बल' का भेदन करता है, अन्धकार को ओझल करता है, ' स्वः ' को सुदृश्य करता है।

उद् गा आजद् अभिनद् ब्रह्मणा वलम्। अगूहत्तमो व्यचक्षयत् स्वः। (ऋ. २.२४.३ )

सारा ऋग्वेद प्रकाश की शक्तियों का एक विजयगीत है और गीत है प्रकाश की शक्तियोंके ऊर्ध्वारोहणका, जो आरोहण सत्यके बल तथा दर्शनके द्वारा होता है और जो इस उद्देश्यसे होता है कि सत्यके स्रोत व घर में, जहाँ कि सत्य अनृत के आक्रमण से स्वतन्त्र रहता है, पहुँचकर उस सत्य को अधिगत कर लिया जावे। 'सत्य के द्वारा गौएँ (प्रकाशमान विचार ) सत्य में प्रविष्ट होती हैं, सत्य की तरफ जाने का यत्न करता हुआ व्यक्ति सत्य को जीतता है; सत्य का अग्रगामी बल प्रकाश की गौओं को पाना चाहता है और ( शत्रु को ) बीच में से चीरता हुआ चला जाता है; सत्य के लिए दो विस्तृत ( द्यौ व पृथ्वी ) बहुत और गभीर हो जाते हैं, सत्य के लिए दो परम माताएँ अपना दूध देती हैं। '

... ऋतेन गाव ऋतमा विवेशुः॥ ऋतं येमान ऋतमिद् वनोति, ऋतस्य शुष्मस्तुरया उ गव्युः। ऋताय पृथिवी बहुले गभीरे, ऋताय धेनू परमे दुहाते॥

(ऋ. ४.२३.९,१० ) इति।

---

# राजनीतिमें अहिंसा।

[ लेखक- श्री भाऊ धर्माधिकारी; अनुवादक- श्री. द. ग. धारेश्वर, बी. ए. ]

पिछले कई वर्षोंसे हम यह समालोचना सुनते आ रहे कि 'महात्मा गांधीजीने, अँग्रेजोंसे जूझकर, तीव्र मुठभेड करके स्वराज्य प्राप्त करनेके लिए प्रवर्तित आन्दोलनमें व्यर्थही धार्मिकतासे अनुप्राणित अहिंसा सिद्धान्तको घुसेड कर भारतवर्षीय राजनैतिक आन्दोलनको बिगाड रखा है।' महाराष्ट्र प्रान्तके बुजुर्ग एव कार्यशील पुरुष, जो कि स्व० लोकमान्य तिलकके जमानेमें पले हुए हैं, बस इसी विचारधारासे प्रभावित होकर काँग्रेस दलसे बाहर निकल आये। आज दिन भी कई नवयुवक नेता जो कृषकों तथा श्रमजीवियोंके हितार्थ कार्य करनेका दावा करते हैं, इसी विचारसे प्रभावित होकर 'गांधीजीके संपर्कसे प्रतिगामी' बने हुए काँग्रेसके राजनैतिक कार्यक्रम के बारेमें अश्रद्धाके भाव मनमें रखते हैं और राष्ट्रीय महासभाको 'क्रान्तिवादी' बनानेमें सचेष्ट बने हुए हैं।

यह स्पष्ट है कि क्रान्तिवादी नवयुवक तथा लड़ाके वृद्ध दोनोंकेही अन्तस्तलमें महात्मा गांधीके प्रवर्तित राजनैतिक अहिंसाके बारेमें गलतफहमी उठ खड़ी हुई है। १९१५-१९१६ से लेकर, अर्थात् भारतके राजनैतिक रंगमंचपर उतर आनेके पहले ही, महात्मा गांधीजी भारतवर्षके राजनैतिक क्षेत्रमें 'अहिंसा' को प्रविष्ट करनेकी कोशिश कर रहे हैं। सन् १९१६ के फर्वरीमें काशी हिन्दु विश्वविद्यालय की प्राणप्रतिष्ठा करनेके अवसरपर उन्होंने जो दिल दहलानेवाला अमर वक्तव्य किया था, उसी अभिभाषणमें अपनी राजनैतिक अहिंसाका स्वरूप उन्होंने सुस्पष्ट कर दिया है। महात्माजी के हृदयपर बचपनसेही हिन्दुस्थानकी आझादी की धुन परमात्मप्राप्ति की जितनी ही उत्कटतासे सवार है, इतनाही नहीं, बल्कि उनकी यह मान्यता है कि ईश्वरप्राप्तिकी साधनामें भारत की स्वतंत्रता-प्राप्ति एक आवश्यक एवं अनिवार्य मंजिल है।

जिनकी गणना संसारके अत्यन्त कट्टर देशभक्तों में की जाती है ऐसे वीर पुरुषोंकी देशभक्ति के बनिस्बत म० गांधीजी की स्वदेशविषयक आत्मीयता किसीभी अनुपातमें तनिकभी कम नहीं है।

ध्यानमें रहे कि म० गांधीजी दक्षिण अफ्रीकासे सन् १९१५ ई० में भारत लौट आये सो सिर्फ भारत की सेवा करनेके विचारसे प्रभावित होकरही। यदि उन्हें निरा आत्मसाक्षात्कार ही (आज जिस अर्थमें समझा जाता है उस अर्थमें) प्राप्त करना होता तो भला इन्हें क्या पड़ी थी कि वे स्वराज्य सम्पादन के उलझनमें पड जाते? अगर उनका मतलब धर्मप्रचार करनेका होता तो ब्रिटिश सत्ताको चुनौती देने एवं उससे मुठभेड करनेके संघर्षमय आन्दोलमें वे भला क्योंकर अपनेको झोंक देते? उनके लिए आत्म-साक्षात्कारकी व्याख्याही बिलकुल निभिन्न है और उनके धर्मका स्वरूप भी अत्यन्त निराला ही है। म० गांधीजी की निगाहमें व्यक्ति समाज का एक अभिन्न घटक है, इसलिए उनकी यही राय है कि बिना समाज की मुक्तता किए व्यक्तिकी मुक्तता असंभव है। उनके धर्मका संक्षेपमें यही स्वरूप है कि समाजमें जिधरभी अन्याय दीख पडे वहाँ उससे जूझकर न्यायकी प्रतिष्ठापना करना। जिसे हम विचारमें 'सत्य' कहते हैं, वही आचारमें 'न्याय' का रूप धारण कर लेता है। अगर व्यक्ति के विचार- आचारमें सत्यकी उपासना न हो तो भला वह समाजमें विद्यमान असत्य-अन्यायसे किस भाँति लड झगड सकेगा? अतएव व्यक्ति सत्याग्रही एवं न्यायी हो जाए यही उनका सिद्धान्त है और वे अपने निजी जीवनमें इसीके अनुकूल बर्ताव रख उसे क्रियात्मक रूप देनेके लिए अविरत प्रयत्न करते रहे हैं।

आज भारतीय राजनीतिका स्वरूप क्या है? कुछ इने गिने विदेशी लोगोंने अपनी स्वार्थलालसा पूरी करनेके लिए भारतीय जनताको निरे पाशवी सामर्थ्यके बलबूतेपर

गुलामीमें रखकर भारतीय शासन-व्यवस्था प्रचलित रखी है। अब उस विदेशी सत्ताको उन्मूलित कर स्वयं ही निज देशके स्वामित्वको प्राप्त कर लेना यही भारतीय जनता का उद्देश्य है। भारतीय राजनीतिका सार मर्म इसीमें है। इस उद्देश्यमें सफलता पानेके लिए याचना, विनंति-पत्रक एवं प्रतिनिधि-मंडल भिजवानेसे लेकर पिस्तौल चलानेतक अनेक उद्योग अनेक लोगोंने इस दिशामें किये हैं। म० गान्धीजीका भी उसी उद्देश्य-सिद्धिके लिए यह एक प्रयोग है जो कि उनकी रायमें अंतिम सफलता दिलानेमें बेजोड है।

इसी दृष्टिबिन्दुको सामने रखकर उन्होंने खुद भारतीय दशाकी छानबीन की थी और ऐसा करते वक्त न केवल बाह्य परिस्थितिका ही उन्होंने ख्याल किया, अपितु जिस आन्तरिक मन स्थितिके परिणामस्वरूप यह बाहरी हालत प्रकट रूपसे अस्तित्वमें आती है, उसकी भी ठीक जानकारी प्राप्त की। उदाहरणके लिए, वस्तुतः विदेशी राजसत्ता अपना पद अक्षुण्ण बनाये रखनेके लिए भेदनीतिका अवलंब बारबार करती है। अब देखना उचित होगा कि भारतीय जनता की मनोवृत्ति किस ढंगकी है जो उपरिनिर्दिष्ट वस्तु-स्थितिका निर्माण किये देती है। यदि भारतीयोंकी उस मनोदशामें परिवर्तन किया जा सके, तो यह स्वाभाविक है कि भेदनीतिके लिए यहाँ तनिक भी मौका नहीं मिल सकेगा।

म० गांधीजीके प्रयोगकी तहमें इस प्रकार मूलग्राही विचार-धारा बहती है। अपनी निजी विचार-प्रणालीके अनुसार उन्होंने भारतीय दासत्वके कारण ढूँढ निकाले और उनके निराकरणार्थ खुदही विशिष्ट उपाययोजना भी सुझाई है। भारत की स्वतंत्रताको मूर्त स्वरूप देनेके लिए ही अस्तित्वमें आयी हुई देशकी एकमेवाद्वितीय संगठित संस्था याने राष्ट्रसभाके सम्मुख उन्होंने अपनी आयोजना रख दी। यदि राष्ट्रसभा को यूं प्रतीत होता कि म० गांधीजीका मार्ग निरे आध्यात्मिक या धार्मिक स्वरूपकाही है तथा उनका चरम ध्येय इस देशका 'स्वराज्य' नहीं किन्तु 'सर्वभूतोंके कल्याणकी सिद्धि' जैसा व्यापक है, तो अवश्यही राष्ट्रसभा जैसी संगठित राजनैतिक संस्था उसका ग्रहणही नहीं करती और भला म० गांधीजी भी क्योंकर इस मार्ग का अवलंबन करनेके लिए राष्ट्र-सभामें प्रविष्ट होते? हाँ, इसका यह मतलब सर्वथैव नहीं कि म० गांधीजीकी मनोवृत्ति अध्यात्म-प्रवण नहीं है। यदि अध्यात्म का मर्म यही हो कि 'जीवमात्र' में अथवा तनिक संकुचित अर्थमें 'मानवमात्रमें खुदको अनुभव करना और अपनेमें समूची मानव जातिको निहार लेना' तो इसी अध्यात्म-प्रवण मनोभूमिकाकी नींवपर म० गांधीजीका राजनैतिक प्रासाद उठ खडा हुआ है और ध्यानमें रखना चाहिए कि इसके परिणाम स्वरूप गांधीजी की राजनीतिमें तनिक भी मंदता या ढिलाई नहीं पाई जाती है, उलटे वह अत्यधिक तीव्र हो उठी है। यदि इस तरह की मनोवृत्ति तैयार करना कि 'मैं अन्याय नहीं बरदाश्त करता वैसेही दूसरा भी उसे नहीं सह सकता है,' अध्यात्म हो तो निस्सन्देह गांधीजीकी राजनीति उन की आध्यात्मिकताकी रँगतमें रँगी हुई है।

किसी एकमें दुर्बलता है इसीलिये किसी अन्यमें अन्याय या जुल्म करनेकी प्रवृत्ति उत्पन्न हो बढ जाती है; हरएकके हृदयविकास तथा आत्मबलके बढनेमें ही मानवी समाज की मुक्ति सुनिश्चित है। इस विचारधाराको अगर अध्यात्म कह सकें तो निस्सन्देह गांधीजीकी राजनीति इससे अत्यधिक प्रभावित हुई है और इसीलिए उन्होंने मूलग्राही ढंगसे इस घटनाकी पूरी जाँच-पडताल की है कि भारतीय जनता शताब्दियोंसे क्योंकर परतंत्रता-पाशमें यों जकडी हुई पडी है। उसी मूलग्राही तरीकेसे उन्होंने उसके लिये प्रतिकार आयोजना भी सुझाई है।

दक्षिण अफरीकामें बसे हुए भारतीयोंको वहाँ के गोरे राजसत्ताधारियों ने मानव-साधारण अधिकारों से भी वंचित कर रखा था। इस कारण उस राजसत्तासे सामना करनेका कर्तव्य प्रसंगवशात् गांधीजीके सामने उठ खडा हुआ और अपनी स्वभावसिद्ध सत्यप्रियता एवं अनवरत प्रयत्नशीलताके सहारे अन्ततक अपना कर्तव्य पूर्ण करके उन्होंने सफलता प्राप्त कर ली। ध्यानमें रहे कि जिस प्रकार कोई तत्ववेत्ता अपने मस्तिष्कसे कुछ सिद्धान्तोंकी निर्मिति कर लेता है, उस ढंगपर गांधीजीने अपने प्रवर्तित 'सत्याग्रह-युद्धके तत्व' का आविष्कार नहीं किया था। याने सत्याग्रह-समरके सिद्धांतोंकी रूपरेखा अपने दिलमें

पहलेही निर्धारित कर पीछेसे संग्राम छेड दिया हो, सो बात नहीं; लेकिन लड़ाई ठाननेपर प्रसंगवश और वहाँकी परिस्थितिके अनुकूल कार्य संचालन करते हुए उन्हें जो कुछ करना पड़ा, उसका बुद्धिपूर्वक सूक्ष्म निरीक्षण उन्होंने किया, जिसके फलस्वरूप कई सामाजिक जीवनके मूल्योंका उन्हें भली भाँति परिचय हुआ।

अन्ततः ही एकदूसरेके बारेमें प्रेमभाव मानव-स्वभावमें विद्यमान रहता है तथा सहयोगकी प्रवृत्ति पायी जाती है, ऐसा ज्ञान गांधीजीको उस समय हुआ और उन्हें यह अनुभव मिला कि हम मानवको कभी एक आध वक्त उस जानकारी को भूला हुआ पाते हैं, तोभी अगर ज्ञानपूर्वक उस प्रेमभावकी सतत वृद्धि की जाय, तथा बखेडों के मौके आनेपरभी इस जीवनसिद्धान्तको अक्षुण्ण बनाये रखते हुए तदनुसारही अपनी मंजिल तै करते रहें, तो कलह मिट जायेंगे; इतना ही नहीं बल्कि कभी कभी झगडों को जडमूलसे उखाडनेके लिए काममें लाये जानेवाले उपायोंके कारण ही फिर नये झगडे उठ खडे होते हैं; ऐसी अवस्था न होने पाये इसका गांधीजीने ख्याल किया। उन्होंने यह बात अच्छी तरह जान ली कि, सचमुच विभिन्न परिस्थितियों एवं गुणोंके कारण ही मानवी समाजमें विविधता पायी जाती है और इसीमें अन्तर्निगूढ एकताका स्वरूप हमें पहचान लेना है, तथा संगठन का सूत्रपात करना है।

दक्षिण अफरीकाके सत्याग्रह-समरमें अपने उपायों से सफलता प्राप्त करनेवाले वीरपुरुष गांधीजी भारत लौट आये और चूँकि उनके अन्तस्तलमें हमेशा यही तीव्र लालसा धधकती थी कि अपनी मातृभूमि अँग्रेजोंके गुलामीसे आजाद हो जाए; अतः वे बडी लगनसे सोचने लगे कि भारतीय स्वराज्य प्राप्तिके पुनीत कार्यको अबतक संपादित सत्य तथा अनुभव के द्वारा किस तरह लाभ पहुँचाया जा सकता है। भारतीय राजनैतिक क्षेत्रमें वे तुरन्त नहीं उतर आये, क्योंकि महामना भारतसेवक गोखलेजीकी बडी ही दूरदर्शी सलाहसे प्रभावित होकर गांधीजीने समूचे भारत का भ्रमण कर देश-दर्शन किया और जनमनःस्थिति तथा लोगोंकी हालतका सूक्ष्म निरीक्षण किया, एवं अच्छा अध्ययन भी कर लिया। म० गांधीजीका यह अवलोकन ठीक उसी तरह था जैसे कि एक रणबाँकुरा सेनापति अपनी रणभूमिका संपूर्ण निरीक्षण कर लेता है। राष्ट्र-सभाके सभी अधिवेशनोंमें वे उपस्थित हुआ करते थे लेकिन प्रत्यक्ष कार्यवाहीमें कभी उन्होंने हिस्सा नहीं लिया था। कई महान् नेताओंकी विचार-प्रणालीसे वे प्रत्यक्ष मुलाकात प्राप्त करके बहुत कुछ अंशमें परिचित हुए। अकस्मात् उपस्थित हुए चंपारण्य जैसे छोटे छोटे क्षेत्रोंमें अपने सत्याग्रह अस्त्रका प्रयोग किया, मतलब यही कि देखें भारतभूमें ऊंट किस करवट बैठेगा। अब इसके पश्चात् याने इतना सुदीर्घ परिशीलन करनेपर ही वे सन् १९२० ई० में भारतीय राजनीतिके प्रथम सर्वसर्वा नेता बन गये।

अच्छा, इतने वर्षोंमें भारतमें उन्हें भला क्या दृश्य देखने मिला होगा? स्वराज्य पाने एवं उसे सभालनेके लिये एकराष्ट्रीयताकी भावनासे सुतरां प्रभावित होनेकी सख्त जरूरत होती है जिसकी कि भारतमें शोचनीय कमी थी। आत्मविश्वास तो बस लापताही हो गया था। परावलंबनके नीचे जनमानस दबसा गया था। हरजगह स्वार्थ-परायणताका नग्न नृत्य जारी था। दासत्वके प्रबल बोझसे मानवताके भावोंका दम घुटा जा रहा था। भीरुता एवं कायरपनका बाजार गर्म था। बुद्धिजीवी श्रेणी तथा श्रमजीवी बहुजनसमाजके बीचकी खाई धीरेधीरे ज्यादह चौडी होती जा रही थी और सार्वजनिक जीवनमें कर्मण्यता का अभावही दिखाई दे रहा था। हाँ, यह बात सच है कि लोकमान्यकी दहाडसे ब्रिटिश शासक गण विचलित एवं चिन्तित हो चुका था और इधर जनताभी खूब समझ गयी थी कि ब्रिटिशोंसे त्राण पानेकी आशा करना व्यर्थ है। लेकिन, इस मनःस्थितिको पहुंचनेतक स्वर्गीय लोकमान्य तिलक महाराज का जीवन समाप्तप्राय हो चुका। जनतामें 'उद्धरेदात्मनात्मानं' या 'खुदही अपने हैं हम तारनहार' के भाव जगाकर आत्मविश्वास तथा स्वावलंबनकी मनोवृत्तिका संचार कर धैर्यपूर्वक और पूरे लगनके साथ आगे किस प्रकार मार्ग क्रमण करें सो बताना निहायत जरूरी था। यही ठीक तरह जानकर गांधीजीने पथप्रदर्शन करने का भार अपने ऊपर उठा लिया।

'स्वराज्य अपना जन्मसिद्ध अधिकार है,' बात ठीक है

न ? तो फिर जो जन्मसिद्ध है वह स्वराज्य आज ही अपने हाथमें है ही ऐसी कर्तव्य तथा उत्तरदायित्वकी पूरी जानकारी रखकर हमें चलना चाहिये। स्वराज्यका अर्थ है जालिमोंसे तथा शोषण करनेवालोंसे छुटकारा पाना। स्वराज्य समूची जनताका है, समूची जनताके लिए है, अतएव उसकी हिफाजत करना आम जनताका काम है। यह स्वराज्य ऐसा हो कि उस में हरएक सुरक्षितता का अनुभव करे और सबके लिये रोटीका सवाल हल हो जाय। इतने दिनोंतक विदेशी राजसत्ता के पास याचना, प्रार्थनापत्र द्वारा हमने 'भिक्षां देहि' नीतिका यथेष्ट अनुसरण किया, लेकिन अब हमें चाहिए कि भीख माँगना छोडकर अपनेही बलपर जितना हो सके स्वतंत्र रूपसे याने राजसत्ताकी तनिक भी मदद न लेकर हम अपना कार्य प्रारंभ करें। सबको मिलकर परस्पर के हितसंबंधोंकी समुचित रक्षाके लिए सतर्क रहना चाहिए; तब अवश्यही भारतमें दिखाई देनेवाले हिन्दु-मुस्लिम, छूत-अछूत, ब्राह्मण-अब्राह्मण जैसे भेदोंको हमें ही स्वच्छया जडमूलसे उखाड फेंक देना होगा। जमीदार-रैयत, देशी राज्य-रियाया, पूँजीपति-श्रमजीवि वर्ग इन के बीच प्रेमपूर्ण एवं न्यायान्वित संबंध प्रस्थापित कर लेने चाहिए ताकि दोनोंही एक दूसरेका हितकर्ता बनकर, कठिनाई आनेपर तुरन्त दूसरे की मदद करनेपर कटिबद्ध हो सकें। ऐसा होनेपर ही आज दिन दिखाई देनेवाला पारस्परिक अविश्वास हट जायगा, सुरक्षितता के भाव आपही फैलने लगेंगे और राष्ट्रीय एकता प्रतिपल अधिकाधिक मूर्त रूप धारण करती रहेगी।

ब्रिटिश पूँजीवादने भारतको केवल अपने लिये आवश्यक कच्चे मालका आगार तथा तैयार व पक्की वस्तुओंकी बिक्रीका बाजार बना रखा है! भारतीय व्यापारी तो ब्रिटिश पूँजीपतियोंके आढतिया मात्र बन चुके हैं और इन देसी आढतियोंके द्वारा भारतीय कृषक तथा मजदूर श्रेणीके लोग लूटे जा रहे हैं। अंग्रजोंके कलकारखानोंके लिए कच्चे मालका गोदाम भरा देनेसे हमारा पूर्वपरंपरागत ग्रामीण और स्वावलंबी आर्थिक संगठन नष्टप्राय हुआ; और भारतीयोंके स्वतंत्र अस्तित्वकोही मिटा दिया गया है। भारतकी दशा इतनी हीन, दीन एवं लज्जाजनक बन गयी है कि जो अँग्रेज पूँजीपतियोंके उपयुक्त कार्य करते हैं उन्हें छोड शेष सारे बेकार निठल्ले बनकर जीवन बिताते हैं। अगर ऐसी दुर्दशाको हमें अपने प्रयत्नसे ही हटाना हो तो सिर्फ बहिष्कारके अभावात्मक उपायोंसेही काम न चलेगा, किन्तु साथही साथ देशके जो उद्योग, व्यवसाय तथा धन्धे मृतप्राय हो चुके हैं, उनमें फिर नवजीवनका संचार करना होगा। जो धन्धे बडी कठिनाईसे किसी न किसी तरह अपना अस्तित्व मात्र बनाये रहे हैं, उनको कार्यक्षम तथा वेगवान् बनाना चाहिए। अपने आपको मुख्य मानकर निज जीवनार्थ अनुकूल हो ऐसाही आर्थिक संगठन प्रचलित करना चाहिए और इस तरह लाखों देहाती लोगोंको स्वावलंबी बनाना चाहिए। यही 'स्वदेशी' का अविकल स्वरूप है।

उपर्युक्त कार्यक्रमकी पूर्तिके लिए जनता की मनोभूमिका तैयार करनी पडेगी, शिक्षित तथा बुद्धिप्रधान वर्गोंको करोडों देशबांधवोंके मध्य जाकर मिलजुलकर रहना होगा। इस कार्यके लिए लाखोंकी संख्या में सेवापरायण तथा बुद्धिमान कार्यकर्ता मिलने चाहिए, जिन्हें तैयार करनेके लिए हमें स्वतंत्र शैक्षणिक संस्थाओंकी आवश्यकता है। ब्रिटिशोंके आज्ञाकारी कुली बनानेवाली नादान शिक्षा-प्रणालीसे अकर्मण्य बने हुए और बननेवाले भारतीय नवयुवकोंको ऐसी स्वतंत्र शिक्षा संस्थाओंमें स्वाभिमानी, स्वाश्रयी तथा स्वराज्य पाने की अदम्य लालसासे प्रभावित सेवक बनानेकी कोशिश होनी चाहिए।

इस कार्यक्रममें पूर्णतया सफलता पाना मानों स्वराज्य के निचोडको पा लेना है। अगर उसमें पूरी सफलता न भी मिले तो भी उसकी साधनामें स्वराज्य-संपादन करनेकी हमारी शक्ति अवश्य बढेगी। गांधीजीने ठीक यही कार्यक्रम सन् १९२० ई० में काँग्रेसके सम्मुख रखा और कहा कि 'यद्यपि यह कार्यक्रम सुदीर्घ तथा कष्टसाध्य मालूम पडे तथापि अगर हम परिणामपर निगाह डाल लें तो यही एकमेव सफलता ला देनेवाला है।" सभी तरहकी कोशिशोंके कर चुकनेपर हताश बने हुए राष्ट्रको इस स्वावलंबी कार्यप्रणालीका महत्त्व भली भांति पहचान हुआ और राष्ट्रीय सभामें इसे स्वीकृति मिली।

इस कार्यक्रमके केन्द्रमें हमही खुद खडे हैं और उसका उद्देश्य यही है, स्वयंही सामर्थ्यका उपार्जन कर उसे

वृद्धिगत करते जाना। अपनी निजी शक्तिको बढानेसे प्रतिस्पर्धीका बल कम होता जायगा। हमारी दुर्बलता यही हमारे प्रतिद्वन्द्वीका बल है. उस दुर्बलताको हटानेसे ही हमारा सामर्थ्य बढ जायगा। हमारे शत्रुके प्राणको खतरेमे डालनेकी कोशिशमें हम अप्रत्यक्ष ढंगसे दुश्मनकेही सामर्थ्य को अधिक दृढमूल करनेमें मदद पहुँचाते हैं, याने खुदकी शक्ति न्यून कर देते हैं। दुश्मनके सामने अर्जियाँ-प्रार्थना करने या गिडगिडानेमें भी, स्व-सामर्थ्यके अभावके कारण अपनी दुर्बलताकाही बारबार प्रदर्शन हुआ करता है। और दूसरे, प्रतिपक्षके बलके प्रति निराधार ही आतंक तथा अपने बारेमें पराभूत मनोवृत्ति उत्पन्न होती है। प्रतिपक्ष को मध्यबिन्दु मान लें तो ये दो बातें पैदा होती हैं जिन्हें टालनेके लिए हमें अपने आपको मध्यबिन्दु मानना ठीक है। राष्ट्रसभामें जो सयाने तथा धुवाँधार नेता थे, वे इस बातको समझ गये, अतएव उन्होंने गांधीजीके निर्दिष्ट पथका अनुसरण करना ठान लिया! पहले जो वैधानिक प्रणाली प्रचलित थी, उसका त्याग किया गया और ब्रिटिशों-के बारेमे जो द्वेषपूर्ण भाव बीचबीचमें उछलते थे और आतंकवादका सृजन करते थे, उनका स्पष्ट प्रतिवाद एवं निषेध किया गया।

वैधानिक प्रणालीका त्याग करके अपने जन्मसिद्ध अधिकारोंको अक्षुण्ण रखनेके लिए आग्रह रखना ही 'सत्याग्रह' और आतंकवाद का निषेध 'अहिंसा' है।

हाँ, यह सच है कि गांधीजी कट्टर वैष्णव परिवारमें उत्पन्न हुए थे और उन्हीं संस्कारोंमें पलने के कारण उनकी मनोवृत्ति धार्मिक बनचुकी है। बचपनसे ही उन्हें अध्यात्मका आकर्षण था। परमात्मामें वे असीम श्रद्धा रखते हैं और अपनेको ईश्वर के हाथका एक साधन समझते हैं। प्राचीन ऋषियोंका अध्यात्म भारतके लिए एक महान् देन एवं बपौतीके रूपमें मिला है और भारतीय लोग ऋषियोंकी शिक्षाको अपने दैनंदिन आचार-विचारमें ढालते चले आ रहे हैं। इसी कारण भारतभू धर्म-भूमि बन गयी है, ऐसा गांधीजीका दृढ विश्वास है। इसका परिणाम यही हुआ कि गांधीजीकी समूची भाषा एवं परिभाषा धार्मिकताके रँगमें डूबी हुई है। इसमें कुछभी भूल या अनुचित बात नहीं है। लेकिन जो लोग पाश्चिमात्य विचार-धारा से अत्यधिक मात्रामें प्रभावित हो चुके हैं, उन्हें यह अतीव अरुचिकर प्रतीत होता है और वे कहने लगते कि 'राजनीतिके संघर्षमय क्षेत्रमें भला यह धार्मिकता किस लिए ?'

भारतवर्षमें जैन एवं बौद्ध धर्मोंने अहिंसा को बड़ा उच्च पद दे रखा और जैनियोंने तो बडा भारी प्रयत्न किया कि मानवस्वभाव-निरपेक्ष एवं पूर्ण अहिंसाको कार्यान्वित किया जाय। जिसका नतीजा यूं हुआ कि उस धर्मकी समाज पर परिणाम करनेकी शक्ति क्षीण होती चली। इस वास्तविकताका प्रत्यक्ष निरीक्षण होनेके कारण, ज्यों ही महात्माजीने 'अहिंसा' शब्दका उच्चारण किया, प्रगति-पर विचारवाले लोगोंको अगर ठेस पहुंची हो तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं। अब दूसरी ओर जो लोग अपनेको धार्मिक कहलाते थे पर जो सचमुच जीर्णमतवादी थे वे कुछ समय तक गांधीजीकी परिभाषा से फूले नहीं समाये और सोचने लगे कि लो भाई, इधर यह नया जिनावतार या बुद्धावतार कहो, भारतमें उत्पन्न हुआ, इसमें शक नहीं। पर जल्दही ऐसा अनुभव आने लगा कि यह धार्मिक तथा अहिंसक गांधी कपडे से नथुने बंद करनेको नहीं कहता, नाहि गोमूत्रसेवन करनेका उपदेश करता या खटमल मच्छरोंको न मारो, ऐसा भी प्रचार नहीं करता और संन्यास ले गिरिकंदराओंमें संचार करने एवं भिक्षा माँग गुजारा करने की बात नहीं कहता। इन बातोंका नामोनिशानभी नहीं, उल्टे सडने गलनेवाले बछडेको तथा पागल कुत्तोंको गोली दाग वह यमसदन भिजवाता, गन्दे कार्य करनेवाले अछूतोंको दूर न करो ऐसी बात करता, गोवध करनेवाले मुस्लिमको मानव समझकर उसके घर अन्नजलका ग्रहण करता है और वेदवचनों को सिर्फ आँखें मूँदकर प्रमाण न मान कर अनुभव की कसौटीपर उनकी जाँच पडताल करता है!

अच्छा, इन सभी कारणों से तथाकथित 'धार्मिक' जनताका सुशीप्रही इस अवतारपर बैठा हुआ विश्वास काफूर हो गया। पुरोगामी लोगोंके लिए गांधीजी न बूझने-वाली पहेली हो बैठे। पं० जवाहरलाल नेहरू सदृश बरसोंतक गांधीजीके कंधेसे कंधा भिडाकर लडनेवाले बुद्धिमान् राजनीतिचतुर व्यक्ति के लिए भी गांधीजी

' उलझन, ' रूपमें दिखाई देने लगे।

इसका कारण यही है कि हम अपनी बुद्धि तथा विचारों को हमेशा ताजा, मूलग्राही एवं लचीला बनानेकी कोशिशही नहीं करते, बल्कि सदैव के लिए उन्हें किसी चौखूंटेमें ठोंकपीटकर रखनेके लिए उद्यत होते हैं, पर भाई! सचमुच मानव कोई लकडीका टुकडा तो नहीं कि वह एकाध चौखटमें ठीक तरह बैठ जाय। वह तो एक ऐसा चैतन्ययुक्त प्राणी है, जो अनुभवसे बढता है तथा परिवर्तन करनेकी शक्ति रखता है। गांधीजीका तो एक ' सत्य ' के बारेमेंही आग्रह होनेके कारण और वह सत्य ' अहिंसा ' के पालनके विना अनुभवगोचर नहीं हो सकता ऐसा मानते हैं इसीलिए वे सत्य अहिंसाके अनुसारही अपने मार्गकी रूपरेखा निर्धारित कर लेते हैं।

पर गांधीजीकी वैयक्तिक सत्य अहिंसाकी साधनासे हमें कुछ मतलब नहीं। हम ऊपर उनकी राजनैतिक सत्य अहिंसाका स्वरूप विशद कर चुके हैं। अपनी परिभाषामें गांधीजीने जिसे 'आत्मशुद्धि' नाम देखा है वह अर्थात् ही राष्ट्रीय एकताकी राहमें पाये जानेवाले मानसिक विघ्न दूर करना नहीं, तो दूसरी क्या वस्तु है? साम्प्रदायिक एकता, न्याय पर आधारित वर्गीय मित्रता, प्रांतिक दुरभिमानका त्याग, शोषण–नीतिका अन्त हो जाय इस हेतु विकेन्द्रीकरणकी बुनियादपर प्रस्थापित तथा स्वावलंबनको बनाए रखनेवाले ग्रामीण व्यवसायों को प्रोत्साहन, इसीमें से श्रमजीवी तथा बुद्धिजीवियोंके बीच परस्पर सहयोगिता, कर्मण्यताको महत्त्व देना, शिक्षाके द्वारा जडताको उखाड फेंकना, इनका उदय होगा।

क्याही भव्य एवं पुरुषार्थसे लबालब भरा हुआ कार्यक्रम! भला कहिए तो सही, क्या इसमें ऐसी एकभी बात पाई जाती है जो राजनीतिके लिए प्रत्यक्ष रूपसे पोषक न हो और सिर्फ धर्मके लिएही (सीमित अर्थमें) जिसका उपयोग हो? इस कार्यक्रमके परिणाम स्वरूप भारतीय जनता स्वयंही अपने पैरोंपर खडी रहनेके लिए–कम से कम अपने जन्मसिद्ध अधिकार छीनने न देनेको–तैयार न हो तो बडे अचम्भेकी बात होगी। इस दृष्टिकोणसे अहिंसक कार्यप्रणालीसे प्रकट होनेवाले गांधीप्रतिपादित त्रयोदशविध रचनात्मक कार्यक्रमको ओर देख लीजिए, छानबीन कीजिए और पश्चात् निर्धारित कीजिए कि राष्ट्रोत्थानके–स्वराज्यसंपादनके कार्यको, भारतीयोंमें ' राष्ट्रीय क्रान्ति ' प्रवर्तित करनेके लिए इस कार्यक्रमकी कौनसी बात प्रतिगामी प्रतीत होती है।

यह बिलकुल ठीक है कि गांधीजी निरे राजनीतिज्ञ व्यक्ति नहीं है, क्योंकि आजतक राजनीति अत्यन्तही विभिन्न संकीर्णतामें जकडी हुई तथा तीव्र कालिमासे सराबोर थी। ऐसी दशामें गांधीजीने अपनी प्रणालीके बलबूतेपर इस संकीर्णता एवं कालिमाको दूर हटाया और व्यापक मानवता के संगठनकी साधनाका रूप राजनीतिको दे दिया। इस भाँति ' धर्म ' को भी अंधकारमय देवगृह से बाहर निकाल नीलिमामय गगनकी नाईं स्वच्छ एवं व्यापक बनाया। हमें पूर्ण विश्वास है कि भारतके स्वराज्य आन्दोलनने जो यह विशुद्ध राजनीति तथा विशुद्ध धर्मका गठबंधन कर दिखलाया है, वह आगे चलकर समूचे संसारके लिए पथप्रदर्शक बने विना न रहेगा।

# सोमाहरण-घटना-स्थलप्रदेश और वेदकालीन गन्धर्वोंके वासस्थान।

( लेखक व अन्वेषक- पं० प्रभूदयाल रीसर्च स्कालर, त्वषाम, जि० हिसार )

सोमाहरणकी घटना का वर्णन ऋग्वेद तथा ऐ०ब्राह्मणादि अनेक स्थानों में लिखा है। परन्तु यह घटना किस प्रदेश में घटी थी, इसका पता आजसे प्रथम नहीं दिया गया था। यह भारतीय इतिहास में आज प्रथम बार दिया जा रहा है। और वे स्थान भी वेदके नामों सहित वर्तमान देखे जा सकते हैं।

जिस देश में सोमाहरण की घटना बीती थी, वह अब हरयाणा (हिरण्यमयाना) हिरण्यगर्भ का बसाया देश है। जिसके मध्यमें त्वष्टा सविता-पुरुष-एकदेवका-परमे व्योमन-स्कम्भ-इन्द्र-ज्येष्ठ-ब्रह्म-प्रत्यक्ष इन्द्र-वरुणकी नाभि-इन्द्रपर्वत-त्वष्टाका त्वषाम चौपिता है। जहां सारे देव तथा विश्व जगत्का जन्म हुवा था। यही ध्रुवपर्वत है। जो वेदकालमें समुद्रके मध्य सप्तसिन्धुस्थान 'अन्तरिक्ष' स्वर्ग कहाता था सुव तीर्थ सुवास्तु नदी भी यहां थी। सु=इन्द्र व आदित्य का वाचक है, त्वष्टाही इन्द्र है। इसकी यहां 'मन्युपा' नामसे पूजा है। मैंने १५ वर्षकी खोजसे यह जाना है।

यही द्यावापृथिवी= अदिति द्यौ है, जहांसे सर्वप्रथम दिशायें स्थिर की गई। यहां दिशा छन्द साक्षात् देखे जा सकते हैं। यही द्यौलोक है, जहांपर त्रिविष्टप= ३ स्वर्ग= ( उदन्वती-पीलुमती मध्यमा-प्रद्यौ-) इस समय साक्षात् देखी जा सकती हैं। यहां पर इन्द्रका ' सोमा अक्षा ' स्थान भी मिल गया है। सोम इस ' इन्द्र पर्वत ' पर रहता था। जहां दिनमें ३ बार सोमपान किया जाता था। इस पर्वत का आकार ' मुंज ' के झुन्ड समान है। और यहां ' मुंज ' बहुतायतसे होती है। 'मूजवत्-शर्यणावति-सुषोमा ' सबै नाम यहां के ही हैं, जहांका सोम इन्द्र पीता था। इसी ध्रुवपर्वत के ' पत्थरों ' से ग्रावा सोमपीसने के पत्थर थे। वेदमें ये सब प्रमाण मिल रहे हैं।

सोमाहरण यहांसे ही गायत्री ' श्येन रूपी छन्द× ' ने लेकर गन्धर्वों तथा देवोंके यज्ञमें पहुँचाया था। इसे ऐ० ब्रा० ११२७ में इस प्रकार लिखा है- एक बार सब देव-ऋषि इस विचार में बैठे कि हमारे यज्ञ में सोम कैसे आवे। सोम स्वर्गमें गन्धर्वोंके आधीन सुरक्षित रहता था। गन्धर्व स्त्रियोंके लोभी थे। ऋषियोंने वाणी ( वाग् ) को उनके पास भेजा। गायत्री (वाणी) छन्दोंके रूपमें 'श्येन' रूपमें देव गन्धर्वोंके निकट गई। उस समय उसने 'श्येन' पक्षी का रूप धारण किया था। पैरों के पञ्जोंमें सोमकलश पकड़कर ' श्येन ' सोम ले आया। सोमरक्षक ' कृशानु ' गन्धर्व धनुर्धारी था, जो सोमकी रक्षा कर रहा था। तब उसने ' श्येन ' रूप गायत्रीको बाण मारा। जिससे उसका एक ' पक्ष टूट गया।' जहां यह पक्ष गिरा वहां ' पर्ण ' वृक्ष उत्पन्न हुआ। अतः सोमाहरण सूक्तों को इसी कारण ' सौपर्ण ' कहते हैं। सोमाहरण गाथा अनेक प्रकार से ब्राह्मणोंमें पाई जाती है। दूसरी गाथा यह है कि एक बार देवों में सोमपान विषयपर यह झगडा हो गया। बाजी की यह शर्त रही कि जो प्रथम आवे वही सोमपान करे। अन्ततः वायु व इन्द्र प्रथम आये। मित्रा-वरुण पश्चात् पहूँचे। सोमाहरण के लिये ईशान्य दिशा उत्तम है। कारण इसी दिशामें देवोंने असुरोंको जीता था। ऋग्वेद ४।२७।३ व ४।२६।२७में भी सोमाहरण घटना व श्येन द्वारा सोम लाने तथा " वम्मारी " गन्धर्वने स्थानपर श्येन पर बाण मारना है।

× श्येनोऽसि गायत्रच्छन्दा अनु त्वा रभे॥ ( अथर्व० ६।४८।१ )
'गायत्री छन्द श्येन रूप युक्त है। तेरे द्वारा हम यह यज्ञ आरम्भ करते हैं।'

अव यच्छ्येनो अस्वनीदध द्योर्वि यद्यदि वात
ऊहुः पुरन्धिम् । सृजद्यदस्मा अव ह क्षिपज्ज्यां
कृशानुरस्ता मनसा भुरण्यन् ॥ ३ ॥ भुज्युं
श्येनो जभार बृहतो अधि ष्णोः ॥ (४।२७।३-४)
अन्तः पतत् पतत्र्यस्य पर्णमध० ।
अध श्वेतं कलशं गोभिरक्तमापिप्यानं० ॥ ५ ॥

यह मन्त्र भी श्येन द्वारा स्वर्ग-लोक से सोमहरण करने तथा " कृशानु " द्वारा शर मारने व श्येनका पक्ष टूटनेका स्पष्ट पता देते हैं ।

[1]स्वान, [2]भ्राजा, [3]अंघारे, [4]बम्भारे, [5]हस्त, [6]सुहस्त, [7]कृशानवेते वः "सोमक्रयणा" स्तान्रक्षध्वं मा वो दभन् ॥ यजु० ४।२७ में इस ऋचा का देवता "सोम व सोमरक्षक धिष्ण्याः विद्वान् देवता" लिखा है । और ये ७ गन्धर्वोंके नाम स्पष्ट आये हैं । जो सोमाक्ष के ' अध्यक्ष ' व रक्षक थे । तथा सोमक्रयण= सोम बनाने व रक्षा करनेवाले कहे हैं। यह सातों नाम कुछ विकृत रूप में यहां बसे हुवे ग्राम वर्तमान हैं । जहां पर धिष्ण्यः= धाडान और सोमक्रयणाः= सोकन्दे गोत्रोंके जाटवंशी लोगोंके स्थानों का २५ ग्रामों का समूह बसता है । ७ ग्रामोंके नाम विकृत रूप इस प्रकार हैं- [1]छान ( स्वान ) स= छ से बदला है । [2]भ्राजा (भांडा) कहाता है। [3]अंघारी (पनहारी ) कहाती है । [4]बम्भारी ( बन्भोरी ) है । [5]हस्त (सोथा) । [6]सुहस्त ( सुन्दलाना ) ; कृशानु ( [7]कापुडो ) कहाता है ।

बम्भारी ग्राम बडा है और एक प्राचीन दुर्गपर बसा है । जिसके बुर्ज तथा खंडहर स्पष्ट वर्तमान है । जान पडता है कि इसी स्थानपर देव यज्ञ करते थे । जहां श्येन गायत्री का वाण परिहार द्वारा पक्ष टूट गिरा था, इसी कारण यहां देवी की पूजा की जाती है । यहां पर देवी का भुवन बना है । पत्थर की मूर्ति स्थापित है। आश्विन शु० अष्टमी और चैत्र शु० अष्टमीको वर्ष में दो बार सप्तमी को मेला लगता है, अष्टमीको बिछडता है। देवी-पूजाके बडी संख्या में पूजा करनेवाले यात्रियोंके मैल यहां होते हैं। सारे प्रदेश हरयाणभर के तथा दूर दूर से लोग यहां आते हैं ।

यह गायत्री ( वाग् ) देवीकी पूजाका स्थान है । जो श्येन रूपसे स्वर्गसे सोम लाई थी । यहांपर लोग पति-पत्नी गठजोडा बांधकर पूजा करते हैं । घी का दीपक जलाकर, फूल बताशे, मिठाई, नाकेपीले, नारयल, तथा चांदीके छत्र देवी की भेंट चढाते हैं । और मोहनभोग पूरी की कडाही बनाकर ब्राह्मण तथा मित्रोंको भोजन कराते हैं । यह कडाही यहांपर तथा घरपर लोटकर भी की जाती हैं । बालकों का मुण्डन-संस्कार यहां कराया जाता है, जिसकी प्रथमसे मानता मानी होती है। अनेक प्रकार की मानतायें यहां से पूरी की जाती हैं ।

यहां के प्रदेशभर में लोगों को इस वेदकालीन घटना का कुछ भी ज्ञान नहीं है और नाही इस देवी का उनको पता है कि यह कौन देवी है । ग्रामके नामपर ' वनभोरी की देवी ' के नाम से विख्यात है । यहां के पुजारियों की बताई कहानी जिसका उनके पास कुछ भी प्रमाण नहीं है। मुन्शी अमीचन्द एकस्ट्रा असिस्टेन्ट जिला हिसारने बन्दोबस्त के अफसर रूपमें सन १८६०से सन १८६४ तक कार्य करते समय 'इतिहास जिला हिसारमें' जो रिपोर्ट बन्दोबस्त के एक भाग रूपमें लिखी है। उसमें पुजारियों की जबानी बात यह लिखी है—

"मेला देवी वनभोरीका हाल ।" यह स्थान प्रथम राजा जीन्दके आधीन था । सन १८६७ में ( पंचग्रामी ) संख्या में जिले हिसार में मिलाया गया । कस्बा ' बरवाला ' से ( नार्थ वेस्टर्नरेलवे स्टेशन ) ४ कोश उत्तर दिशामें है । पुजारी कहते हैं कि राजा ' मान्धाता चक्रवर्ती ' के समय इस देवी ने यहां अवतार लेकर 'वल' नामक राक्षसको युद्धमें मारा था । लिखित प्रमाण नहीं है।

फतहचन्द वैश्य ' फतावाद निवासी ' ने कुछ समयसे यहां पक्काभवन देवीका और एक कूप पक्का बनाया है । पहिले साधारण भवन था । उनका कथन है कि देवी के नामपर ग्राम ' वनभोरी ' है । देवी का नाम असली ' वनभैरवी ' है । जिसने वनमें राक्षस मारा था ।

प्रथम कहा जा चुका है कि यह सारे देशमें इस वैदिक घटना विषयक कोई ज्ञान नहीं । यहां इस ताजी खोजसे पता मिला है और यह महत्वपूर्ण खोज स्पष्ट सिद्ध करती है । जहां वेदमें आये ७ गन्धर्वोंके नामोंपर ७ ग्राम

यहांके निवासी धाहडान व सोकन्द (धिष्ण्या व सोमक्रयणा) सोमरक्षक गन्धर्वगणके २५ ग्राम वर्तमान हैं। तथा जहां वम्भारी स्थानपर गायत्री ( वाणी ) की देवी रूपमें प्राचीन समयसे पूजा प्रचलित है। जो सभी ग्राम परस्पर दो तीन कोसके अन्तरमें समूहरूप एकत्र बसते हैं, यह सत्य और अटल ' सोमाहरण--घटना--स्थल ' होनेका प्रमाण है। यह धाडाधण सोकन्दे प्रान्त ध्रुवपर्वतसे ३० कोस उत्तरमें है।

यह अटकल पच्चू कहानी नहीं? जिन सज्जनोंको सन्देह होवे वह प्रत्यक्ष में यहां आकर देख लें। इधर अन्यभी ऐतिहासिक स्थान हैं। हजारों वर्षोंके बीत जानेपर भी आज सारे वैदिक नाम एकत्र रूप में गायत्री देवीकी पूजा सहित सोमहरण इतिहास की सत्यताका प्रमाण है।

## गन्धर्व-लोक ।

प्रथम गन्धर्व व अप्सरा देवगण ध्रुवपद अन्तारिक्ष स्वर्ग में रहते थे। जहां पञ्च चूडा अप्सराएँ साथ रहती थीं। यजु० १५।१५-१९ में यह स्पष्ट है। विश्वकर्मा आदि गन्धर्व हैं। तथा यजु० १९।३८–४३ में ऋताषाड् अग्नि गन्धर्व ' मुदा ' अप्सरा, विश्वसामा सूर्य गन्धर्व ' मरीची आयु ' अप्सरा, सुषम्णः चन्द्र गन्धर्व ' नक्षत्र भेकुरी ' अप्सरा, विश्वव्यचा ' वात ' गन्धर्व ' अपो ऊर्जो ' अप्सरा। भुज्यः सुपर्ण गन्धर्व ' दक्षिणा स्तावा ' अप्सरा, विश्वकर्मा प्रजापति मनु गन्धर्व ' ऋक् साम ' अप्सरा पृष्टयो नाम, स्पष्ट प्रमाण हैं! ये नाम सांकेतिक हैं। यह सभी आदि देव गन्धर्व हैं।

जब यहां द्यावापृथिवी में अधिक संख्या बढनेसे भीड हो गई, तब इसके दो भाग दो पार्श्व दक्षिण उत्तर हो गये।

> द्यावापृथिव्यो दक्षिणं पार्श्वं। विश्वेषां देवानां उत्तरम् ॥ (यजु० २५।५)

दक्षिण पितृ मनुष्य यमादि द्यावापृथिवी और उत्तर विश्वे देव ( सारे देव ) बसे। अर्द्धं देवा अर्द्धं असुरा। (निरु० ३।२१) यहांसे आधे देव-आधे असुर दो भाग हुवे। देवोंका अर्धभाग 'इष' इन्द्र हुआ। देवानामर्धभागासि। (अथ० ६।८६।३) इसीसे (पारसी ' आर्तभाग') नाम लिये हुवे हैं। और भृगु गोत्र भी ( अर्धभाग ) नामक है (गोत्र-



प्रवर)। दिव इन्द्रः पृथिव्या अर्धमिदस्य प्रति रोदसी उभे। (ऋ०६।३०।१) इन्द्र का आधा भाग 'द्यावापृथिवी' दोनोंके बराबर है। यहां से अरवली पर्वत आरम्भ हुआ है, जिसने भारतको दो भागों में बांट दिया है। इसी से यह मध्यस्वर्ग ( त्वष्टास्थान ) अर्धवलि = अरवली-आडीवर्ला नामसे विख्यात है। इसका आरम्भ त्वषामसे है।

इस ध्रुवपर्वत से उत्तर में विश्वदेव फैले। जिनमें देव-अप्सरस-गन्धर्व-यक्ष-भी देवगणमें हैं। उत्तर दिशा का अध्यक्ष कुबेर ( नरवाहन ) माना गया है, जिसकी प्रजायें यक्ष-गन्धर्व-अप्सराएं आदि हैं। यहां त्वष्टासे ७ कोस उत्तर कोन में प्राचीन दुर्ग ध्येहपर कुमारी (कुबेरी) ग्राम है। जिस का पुराना नाम (नरवाहनगढ) कहते हैं। वहां एक यक्ष की मूर्ति पूजी जाती है। जिसके पात्रोंके नीचे मनुष्य है। दक्षिण हाथके नीचे ( मेष ) है। वह स्पष्ट ' यक्ष ' मूर्ति है। पास ( वालावास ) नामक ग्राम आध मीलपर है। जो सम्भवतः (वैश्रवन) हो। पास दो मीलपर ( हरिता खेडी ) ग्राम। कुबेर पत्नी ' हारित्ती ' को बना रही है। ( नलवा ) ग्राम १ मीलपर है। जो कुबेर पुत्र ( नल कुबर ) की याद कराता है। कुबेरी में बहुतसी मूर्ति तथा स्वर्ण मुद्रा व लम्बे पत्थरोंके लट्ठसे मिले हैं। इसके अति-रिक्त हमें दाहडान सोकन्दे गणके पास उत्तर पश्चिम व पूर्व में यक्ष- गन्धर्वों के स्थान व वंश मिलते हैं, इस कारण हमें इधर " गन्धर्व लोक ' ही बसा हुवा मानना पडता है। जो द्यौलोकसे निकलकर उत्तरमें फैले थे।

## पंचग्रायीं ।

धाडान सोकन्दे गण ग्रामोंको पूर्व में ( पंचग्रायीं ) पंचग्रामी नाम से कहा जाता है। इसपर भी ध्यान देना पडा है। यह पांच ग्राम तो है नहीं। असली तो मुख्य ७ ग्राम हैं। जो वेद कालसे बसे हैं। अत. यह या तो 'पंचजनाः ' हो अथवा यह ' पंचग्राह ' अप्सरा नाम से प्रसिद्ध हों। कारण इस ' दाहडान ' समूह के बहुतसे ग्राम जीन्द-पटयाला-राज्यमें फैले हुवे हैं। जो यहां मिला हुवा है। निकट का प्रान्त नरदक ( नारदक ) नारद मुनीका देश विख्यात है। जो देव-गन्धर्व कहाता है। जिसकी नारद संहिता ( सामगान ) प्रसिद्ध है।

विश्वावसुर्नारदपर्वतौ च गन्धर्वमुख्याः
सहचाऽप्सरोभिः । ( म० भा० १८९।७ )

महाभारत सभापर्व अ० १० में इन्द्रकी स्वर्ग अप्सराओंमें से, ५ पांच अप्सराओंको एक स्थानमें रख दिया था, जो जलसे भरा था । इनको लोग ' ग्राह ' कहते थे, जो लोगों को पकड लेती थी । अथवा देखतेही उनपर आसक्त हो जाते थे । यह पांच अप्सरा ग्राह कही जाती थीं । सम्भव है यह पंचग्रामी= 'पंचग्राह' नामक अप्सरा हों । क्योंकि इनके कुछ नामोंके स्थान यहां मिल गये है । इनको देव वन में रहनेवाली कुबेर की सभा में रहनेवाली भी कहा है । इनके नाम हैं वर्गा-सौरभेयी-समीची-बुद्बुदा ।

वर्गा च सौरभेयी च समीची बुद्बुदा लता ।
एता सहस्रशश्चान्या नृत्यगीतविशारदा. ।
( सभा० पर्व १०।११-१२ )

लता-हजारों गन्धर्वों सहित नृत्यगीत में प्रवीण कुबेर की सेवा करती थी ।

" बुद्बुदा लता ।" ' बोबुवा ' और ' लतानी' नामक दो ग्राम बम्भोरी से ३ या ४ कोस पर हैं । जहां-पर ५२ ग्रामों का गण श्येण= नेत्र ( चक्षु ) गोत्रके जाटोंके बसे हैं । तार्क्ष्यो वै पश्यतो राजेत्याह तस्य वयांसि विशः वायोविद्य... समति. उपदिश पुराणं वेद. । ( शत० १३।४।१३ ) इनको हमने तार्क्ष्य= वयां पक्षी ( श्येन ) जाना है गात्री जाटो के सर्वत्र ही (नागवान) गोत्र के ब्राह्मण बसते हैं । गरुड, मोर, सुपर्ण, बाज, चील, नाग सर्प, सब एक हैं । (सुपर्ण) वायुविद्य वै पश्यतो देखनेसे श्येन=( नेत्र ) नाम हुवा है । इनका मुख्य ग्राम ढिंगोदा । बोबुवा- लतानीके २ कोसपर है । ढिंगोदा= (धिष्णोदा) ही सम्भव है । क्योंकि तार्क्ष्य व सुपर्ण, मोर व वायु सब गन्धर्व हैं । यहां इन दोनों ग्रामों की कन्याएं सुन्दरी हैं ।

यहां इस प्रान्तमें सुपर्ण + गोत्री ब्राह्मणों की बडी संख्या बहुतसे ग्रामोंमें पाई जाती है । कई जगह एकत्र सैंकडों घर हैं । मोर=( म्युर ) गोत्रके जाटोंके भी बहुतसे ग्राम हैं । " मोर " गोत्रके नामपर ( म्युरवाना ) ग्राम अब ( निरवाना ) बदल दिया है । गरिब= " गरुड " गोत्रके भी बहुतसे जाटोंके ग्राम हैं । और " वायुल"= वायु गोत्र जाटों के भी है । ' झिवानी वायुला ' मुख्य ग्राम है ।

धाडायन और दाडान दोनों प्रकार यह नाम बोलते हैं । विवाह समय गोत्रके स्थानमें " धाडायन " का उपयोग होता है । पंजाब में लुधयाना व गुजरांवाला जिलों में ' धाडीवाल ' गोत्रके जाटोंके ३०० ग्रामों का गण है, जो धाडायण सम्भव है । इस समय धाडायण के मुख्य सात ग्रामों में इनकी संख्या कम रह गई है । अधिक उत्तर पंजाब व करनाल-पटयालामें फैल गये हैं । "सप्त धिष्णया ' ग्रामों में कुछ अन्य वंश बस गये हैं, जो धिष्णया वंशसे ही सम्बध रखनेवाले हैं ।

वहां कुछ ग्रामोंमें पूनया-चाहिल व चाहर व 'वाचाड ' गोत्रों के जाट भी हैं । जो सम्भवतः श्येन = बाज तो स्पष्ट ही हैं । किन्तु चील पक्षी भी बाजके समान ही कहाता है । जिस से " श्येन " का स्थान बाजरूप "चील"ने लिया है । चीलही ( चाहिला ) है और वही चाहर है । केवल बोलचाल का भेद है । वाचड =वाच ( वाणी-गायत्री गन्धर्वी ) वाच है । पूनया = सुपर्णा का विकृत रूप सम्भव है । ध्रुवपर्वत के पश्चिम बीकानेर राज्यमें ३०० ग्राम पूनया जाट हैं । यह सुपर्ण लोक है ।

---

+ तार्क्ष्यपुत्रः सुपर्णो वा मुनिर्यामायनोऽथवा ॥ बृहद्दे० आर्षानु० मं० १०। सुपर्णा इति रश्मिः । ( निरु० दा० ३ । ) सुपर्णास्त गन्धर्वा. ( यजु० २४।३७ ) ' सुपर्णो ' वैश्वदेवः । ( बृहद्देवता० अ० ८।१२१ ) ' आग्नर' = जाटभी है । जो तार्क्ष्य हैं । वाग वै धिषणाः । (शत. ६।५।४।५) धिष्णो वै द्यावापृथिवी । ( निरु० ३।४।३) धिषणा इति वाद् नाम । ( निरु० २।१८।२३ ) धिष्णास्त्वा देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्याः । ( यजु० ११।६१ ) धिष्णया नाम ( सुपर्गाङ्ग ) ( यजु० १२।१४ ) ' सोमक्रयणा- धिष्ण्यानां नामानि ( शत० ७,३,११ ) में यजु० समान ७ गन्धर्व नाम सोमरक्षक हैं । इस समय एक गानेवाली जाति गन्धर्व हैं । और कुछ लोग जो अपने को ढाढी ( टाढी ) कहते हैं, मिरासी हैं । जो भक्तनों संग गाते बजाते हैं ।

यहांसे निकट ही (जीन्द) जगती विश्वदेवोंका छन्द है। जहां एक बडा मुहल्ला ( वाजडे ) ब्राह्मणों का है। उनसे मुसलमान हुवे भी वाजडे गोतके एक मुहल्ला मुसलमान हैं, जो परस्पर भाईचारा रखते हैं। पटयाला राज्यमें ( वालूवाता ) नामके दो ग्राम हैं जो या तो वायुविश्व वयां हैं। अन्यथा ( वायुकेश गन्धर्व ) नामपर हैं। जहां सारे ही ( चाहिल ) वंशी जाट बसते हैं। अतः उपर्युक्त प्रमाणों द्वारा यह ( गन्धर्व लोक ) सिद्ध होता हैं। धिष्णा= वाणीका कार्य करनेवाले गन्धर्व व अप्सरा ही थे।

## धाडायनके अन्य ग्राम।

जो सात वैदिक ग्रामों से भिन्न हैं। जीन्द व पटयाला राज्य, तथा, नारदक देशमें हैं। खरक, खेडी, मटी जती खेडी, सफाली खेडी ( शफाली ) कावरछा ( कामवृद्धा व वृक्षा ), डुंमवरखा (तुम्बरुका), द्वातीय डूंमरखा (तुम्बरुक या औदम्बरका ), दुवाना (धिष्णवाना), बडा उचाना ( परमलोचा अप्सरा), छोटा उचाना ( उमलोचा ) झील। मतलोडा (मित्रावरुणा),वीरोलीखेडी(वीरुलखेडी), काकडोद, सूर वराह×, इत्यादि स्थानोंमें धिष्ण सोमक्रयण है।

## देवगन्धर्व।

ज्ञात हो रहा है कि वेदकालमें गन्धर्व देव बहुत फैले थे। जिनकी रचना ' छन्दस् ' वाणी व सामगान महान् कविता का प्रमाण दे रही हैं। गधर्व देवजाति है। इनके जत्थे हरयाण स्वर्गसे उत्तरमें पंजाब व गन्धारतक फैले गन्धार गन्धर्वगणने बसाया, है। भरत नाम भी नट ( गन्धर्व ) के अर्थ में है। विश्वकर्मा मनु वंश तथा ' भारती देवी ' सरस्वती ( वाग् ) गायत्री है। जो छन्दोंसे गाईं गईं।

जो लोग स्वरों व छन्दों के निर्माता हैं, जिन्हों ने यज्ञों में स्वरोंयुक्त वेदमन्त्रों को गाया, संसारने सर्व प्रथम गान विद्याके आविष्कार कर्ता हैं। यह कहना सर्वथा ी अप्रमाण हैं कि युवनानयों ने गानविद्या निर्माण की। भला जिन के वेद ही ' साम ' नाम तथा ऋचा छन्दयुक्त हों और जिनके 'नाट्यशास्त्र' भरतमुनिकृत साहित्य हो, वही तो सामविद्या के प्रचारक हैं।

देवश्रवो देववातावृषी पतो हि 'भारतो'। (ऋग्वेद० आर्य० मं ३।४) देवश्रवा देववात ( अग्नि-वायु ) त्वष्टा विश्वकर्मा के नाम है। जिन्हों ने सर्व प्रथम 'सरस्वती' पर अग्निद्वारा यज्ञ किया। वह भारत नाम श्व गये। यहीं ' भरत ' थे।

## हरयाणादेशकी नाट्यशालाएं।

यह इस स्वर्गीय देशकी वैदिक छाप है. जो अन्यत्र देशोंमें नहीं मिलती है। प्रत्येक ग्राम में परस (पार्शव ग्रह) का होना और ग्रामोंके स्तोमसमूहरूपमें बसना। तथा नक्षत्रोंके नामोंपर उनके नीचे ग्राम बसाना। जो नमूने नाट्यशास्त्र में त्रिस्र व चतरस्र पार्शव ग्रहों के लिये हैं। उसी नमूनेपर सर्वत्र नाट्यशाला बनी हैं, जिनमें नाच हुआ करते थे। अबभी होते हैं। परन्तु अब कम हो गये है। लास्य=स्त्री नर्तकी नाच कहते हैं। ताण्डव पुरुष नाचको ( लौंडा ) कहा जाता है। हरयाणासे बाहर यह नाट्यशालायें जिन्हें यहां अधिक "परस" व चौपाड" भी कहते हैं, नही मिलती है यह बहुत बडी २ व ३ मंजिल तककी बडी बिल्डिंग होती है, जो नाच-गान-सभा-बरात- व्याख्यान व पंचायत के काम आती है।

अत. यह सर्व प्रमाण समर्थन करते है इस विषय का कि गान विद्या यहां कहीं बाहरसे नहीं आई थी। [illegible]

---

× यह ग्राम जीन्द राज्यमें है, जहांपर ' वराह ' रूप भगवान् का मन्दिर है। वराह की ' मूर्ति ' पूजी जाती है। यहां वराह औतार होना माना जाता है। हमारी सम्मति में यह इन्द्र का स्थान है। जीन्दके पास " बाराह बन " अभीतक है। यह १२ कोस के विस्तार में कहा जाता है। निरुक्त से भी इन्द्र ' वराह ' ( सूकर ) सिद्ध है। ' वराहमिन्द्र ' एमुषम्। ( ऋ० सं० १।६१।७ ) ब्रह्मणस्पतिर्वृषभि– ' वराहैः।' ( ऋ० सं० ८।२।३६।१; ५।१।५ ); [illegible] मिहरण्यचक्रानयोदंष्ट्रान्विधावतो ' वराहून्।' ( ऋ० सं० १।६।१४।५ ) मरुत् देवगण ' वराहू ' कहाते हैं। उनमें ही इन्द्र व आङ्गिरस ब्रहस्पति= इन्द्र है। उरुक्रम विष्णु= इन्द्र ' वराह ' रूप हैं। जो उरु पुरुष इन्द्रियसे अधिक प्रजाओं को उपजाता है। इन्द्राय सूकरः। (यजु० २६।४०) तै० स० ब्रा० ३ ज्येष्ठा नक्षत्र का देवता इन्द्र है। जिसकी आकृति सूकर दन्त है।

यहां से ही सब देश देशान्तर के लोग बाहर के देशोंमें जाकर बसे और यहां की ( गन्धर्व विद्या) साथ ले गये । जहां उपवेद " गन्धर्ववेद " बना था । यह लोग किसी अन्य बाहर के देश तिब्बत तथा मध्य एशिया आदिसे नहीं आये थे । यह सर्वथा अप्रमाण है और बेतुकी कथा है ।

संसार की प्रथम पुस्तक वेद माने जा चुके हैं । उनको माननेवाले लोगभी संसारके प्रथम पुरुष हैं । जिन्होंने- विद्या व सभ्यता सर्व संसार में फैलायी । सभी भाषाएँ भी वैदिक छन्दसे निकली हैं । जो छन्दों में गूथ कर रचे गये थे । आज वही छन्द ( जन्द ) पारसी धर्म पुस्तक है, जो वेद समान अग्नि पूजाका धर्म है । पृश्नन्त या पृषन्त = मित्रावरुण का नामपर बसाया देश 'परशया ' है जहां की भाषा ( मेडि ) वेद वाणी ही हो ' परशी ' कहाई । जन्द की भाषा ' मेडि ' कहाती है । अर्थात् सर्व संसार यहा के लोगोंका बसाया हुवा है । मित्रावरुण मरुत् विश्वदेव उत्तर दिशाके नेता वेद में कहे हैं । वही वंश उत्तरमें फैला था ।

## वेदकालका इतिहास ।

सम्पूर्ण रूपसे खोज लिया गया है। ध्रुव स्वर्ग 'स्वधाम' ४ दिशायें स्थिर की गई थी। जिसकी दिशाओंके भी छन्द बसाये गये थे । पूर्वमें गायत्री ( चौबीश ) का समूह है । दक्षिणमें त्रिष्टुप ३ का २४ से अधिक ( सप्तविंश ) है । द्यावापृथिवी पश्चिम का जगती ( अष्टचत्वारिंश ) ४८ का समूह है । उत्तर अनुष्टप ३२ का (२४+८=३२) द्वात्रिंश । मध्यका बृहती (३६) का अधिपती छन्द है । यह सब स्थान यहां वर्तमान हैं । यही अब गानमें गीत–ठुमरी– जकडी-टप्पा-भैरवी व ध्रुपद कहाते हैं । अतः यह देव गन्धर्वोंके छन्दों का प्रकाश है । जिनसे सोमाहरण की घटना का इतिहास पाया । यह विशेष ज्ञान मिला कि जाटोंमें वेदकालीन देव-ऋषि पितर-वंश हैं । जिन के आज भी गण बसे मिलते हैं । जाट शब्द ज्येष्ठराट् इन्द्रसे हुआ सिद्ध होता है । जाट बाहरसे आये नहीं यह भी यौरोपियन की थेयरी अप्रमाण है । इति ।

# कुर्-आन और गोरक्षण।

## गो-ज्ञान कोश-सम्पादनार्थ लेखमालाकी भूमिका।

( लेखक- श्री० गणपतराव गोरे, औन्ध )

### १. कोश-परिचय।

पूना नगर के श्री चौंडेजी महाराजके सदुद्योग तथा धनी मानी पुरुषों की सहायता से एक बृहद् **गो-ज्ञानकोश** [ Cow Encyclopaedia ] का निर्माण हो रहा है। यह कोश मानव जातियों के गोसम्बन्धी ज्ञान विज्ञान का- फिर चाहे वह किसी भी धर्म, देश तथा काल से क्यों न सम्बधित हो- एक अपूर्व भण्डार होगा। श्री पं० श्री० दा० सातवलेकरजीने लेखक [ गणपत गोरे ] को भी अपनी लेखनी की कुछ आहुतियाँ इस महान् यज्ञ में डालने की आज्ञा दी है- जो लेखक का सौभाग्य ही है। उन की आज्ञा है कि दीन इस्लाम के धार्मिक, वैद्यक, राजनैतिक आदि साहित्यों से गो-सम्बन्धी सम्पूर्ण ग्रहण करने योग्य रहस्यों को छान बीन करके प्रकाश में लाया जाय। इस से हिन्दू-मुस्लिम एकता के लाने में भी सहायता मिलेगी।

### २. सूचनाएं।

१. हमने इस लेखमाला में कुर्-आनके आयतों (वाक्यों) का जो हिंदी भाष्य किया है, वह मुख्यतः **( सिंधी )** भाषान्तर के आधार पर है, जिस का नाम है **इलहामुर्-हमानुलतर्जमतुल कुर आन**। इसके प्रथम संस्करण के प्रथम और द्वितीय भाग हैद्राबाद सिन्ध के अल् हक प्रेसमें क्रमश सन १३२९ और १३३० हिजरी में छपे और तृतीय भाग विक्टोरिया प्रेसे सकुव्वर में १३३२ हि० में छपा। तीसरे भाग के अन्त में सिंधी भाष्यकार का नाम **आजिज अबुल् हसन** छपा है, जिस का अर्थ है 'आज्ञाकारी हसन का पिता'। गुप्त दान के महत्त्व को लक्षित करके आपने अपना निजी नाम ही नहीं लिखा! और नम्रता के कारण **आज्ञाकारी** कहलाया! परन्तु लेखक उन्हें जानता है। आप सिन्धु देश के एक महान् अरबी के विद्वान् मौलाना, दीन इस्लाम के अत्यंत कट्टर पक्षपाती, प्रचारक और हजरत और सहस्रों हिंदुओं को अपने हाथ से मुसलमान बनानेवाले थे!!!

ऐसे पुरुष का भाष्य भी यदि हिंदु-मुस्लिम एकता लाने में सहायक हो सके, तो इस से बढकर प्रसन्नता की बात और क्या हो सकती है? इनके अतिरिक्त, हमने कुर-आन के निम्न भाष्यों को भी यथा आवश्यकता देखा है, और इन से भी पर्याप्त सहायता ली है-

( १ ) 'पवित्र कुराणाचें सुरस व सटीक मराठी भाषान्तर' डॉ० मौलवी हकीम सूफी मीर मोहंमद याकूब खान कृत सन १९१६ ई० का प्रथम संस्करण।

( २ ) उर्दू भाषान्तर मौलाना ह० शाह अब्दुल्कादर साहेब देहलवी, सन १३१७ हिजरीका संस्करण।

( ३ ) आंग्ल भाषान्तर-- The Holy Qur-an, by Maulvi Muhammad Ali M.A. LL.B. 2nd. edition 1920 Lahore.

( ४ ) मि० सेल का कुर्-आन का आंग्ल भाषान्तर-

( ५ ) हिंदी भाषा का बाइबल अथवा '**पुराना और नया धर्मनियम**' जो ब्रिटिश् ॲंड फारेन बाइबल सोसायटी अल्लाहाबादने सन १९१९ में अल्लाहाबादसे प्रकाशित किया।

( ६ ) आंग्ल भाषाका बाइबल—

'The Holy Bible,' printed at the Oxford University Press for the British and Foreign Bible Society, London.

(७) The Analytical Concordance to the Bible, by Robert Young, LL. D.

(८) इन के सिवा अन्य अनेकों उर्दू, हिंदी, और आंग्ल भाषाओं की पुस्तकों से हमने लेखों की सामग्री एकत्र की है, और इन सब को हार्दिक धन्यवाद दिया जाता है। 'मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर। तेरा तुझ के को सौंपता क्या लागत है मोर!' ( सन्त कबीर )

२. चिन्ह-सूची– मूल अरबी अक्षरोंके अर्थों को खोलने के लिए जहां जहां कुरआन के उपर्युक्त भाष्यकारोंने अपनी ओर से कुल शब्द मिलाए हुए हमें प्रतीत हुए, वे शब्द हमने ( ) इस प्रकार के कैंसों में रखे है। और जहां हमने ऐसा किया है वहां [ ] इस प्रकार के कैंसों का उपयोग किया है।

## निराशावादियों के आक्षेपों के उत्तर।

**प्रश्न १.** हिंदू मुसलमानों में आहार व्यवहार का ही बडा अन्तर है। एक गो-रक्षक तो दुसरा गो-भक्षक है। इन में एकता कैसे हो सकती है?

**उत्तर–** उसी प्रकार जैसे एक घर में रहनेवाले दो मांसाहारी और शाकाहारी भाइयों में हो सकती है। मित्रता और शत्रुता मन के विचारों पर निर्भर है। गो-ज्ञान-कोश से विचारो में समानता आयेगी, और जहां समानता है वहां एकता है।

**प्रश्न २.** महात्मा गांधीजी ने हिंदु-मुस्लिम एकता लाने के निमित्त खिलाफत के प्रश्न पर मुसलमानों का साथ दिया, लाखों रुपये व्यय कराये, हजारों हिंदुओं को जेल भिजवाया। परन्तु फल-स्वरूप मालाबार के अत्याचार, मुम्बई, अमृतसर, सहारनपूर, पाटना कलकत्ता आदि स्थानों के दंगे हमको मिले!! परन्तु एकता न हुई!

**उत्तर–** राजनैतिक सारा खेल धोखे से भरा रहता है! Policy शब्द का अर्थ ही दांव-घात है। युरोपी राजनीति का अवलोकन करने से ज्ञात होगा कि इन राष्ट्रों की राजनैतिक संधियां काम-चलाऊ ही होती हैं और स्वार्थ सिद्ध होनेपर क्षण में टूट जाती है! हृदय परिवर्तन ही सच्चा परिवर्तन है! महात्मा गांधी हिन्दु मुसलमानों में राजनैतिक एकता लाना चाहते थे। गो-ज्ञान-कोश इन में धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक आदि कारणों के आधार पर एकता लाने का प्रयत्न करेगा! यही कारण अधिक हृदय-स्पर्शी है।

**प्रश्न ३.** मुसलमानों के धर्म की नींव ही गो-बलिदान पर है। यही कारण है कि भारत में आजतक जितनी हिंदू मुस्लिम मारपीट बकर-ईदके अवसर पर गो-हत्या करने से हुई है, जितना रक्तपात इस एक प्रश्न पर हुआ है, उतनी हानि वैमनस्य के अन्य सब कारणो के एकत्र होने पर भी नहीं हुई। इस अवस्था में ऐसा विचार रखना कि मुसलमानों का धार्मिक साहित्य गो-ज्ञानकोश के बनाने में सहायक होगा, साहसमात्र ही है।

**उत्तर–** क्या अहिंसा हिंदुओंके धर्म की नींव नहीं? फिर बताइये कि–

हिंदू मांस भक्षण क्यों करते हैं? वेद से विमुख होने के कारण ही क्या हिंदुओंने **गोमेध यज्ञ** में गो-बलिदान नहीं दिया? अश्वमेध में क्या हमने घोडों को नहीं मारा? अजामेध में बकरियों और **नरमेध-यज्ञ** में स्वयं मनुष्यों का भी क्या बलिदान नहीं किया? काली देवी के ऊपर क्या आज भी सहस्रों बकरे नहीं चढाये जाते? दसहरे के अवसरपर क्या आज भी सहस्रों प्राणियों के प्राण हरण नहीं किये जाते? गुरखा आदि क्षत्रिय जातियां जिस निर्दयता से दसहरे के अवसर पर भैंसे को तलवारों से मार मार कर गिराती हैं, उस निर्दयता का उदाहरण संसार के किसी अन्य असभ्य जाति में भी नहीं मिलता! इसी में वे अपनी शूरवीरता समझते हैं!! वे कहते हैं कि दसहरे के अवसर पर चण्डी देवीने महिषासुर नामक दैत्य को मारा था, अतः हम भी उसी दिन महिष [ भैंसे ] को इस प्रकार बेरहमीसे तडपा तडपा कर मार कर अपनी देवीको प्रसन्न करते हैं!!! यात्रा के दिनों में सहस्रों प्राणियों की जान जाती है! गुजरात के कोली, सिन्ध के हिंदू, महाराष्ट्र के मराठा और मध्य प्रान्तके रध्याकवर आदि अनेक जातियों में तो विवाह के अवसर पर भी बकरे भेडे आदि मार कर कुल-देवताओं को प्रसन्न किया जाता है! दक्षिण भारत में जब रथ-यात्रा निकलती है, तो जिन रथों पर देवताओं की मूर्तियां विराजती हैं उनके पहियों के नीचे अनेकों भेड बकरियां जिवन्त लताडी जाती हैं!!! यह क्रूरता और निर्दयता की पराकाष्ठा है वा नहीं? अब बताइये कि जो हिंदू जाति अपने देवी देवताओं को उपर्युक्त निर्दयी और असभ्य उपायों से प्रसन्न करने में कोई अधर्म, शंका, लज्जा वा पाप नहीं मानती, वह किस मुख से मुसलमानों के गो-बलिदानपर आक्षेप कर सकती है? वैद्यजी! अपनी चिकित्सा करो! Doctor, heal thyself! भगवान् ईसा [Christ] ने ऐसों के लिए ही कहा है कि–

'तेरे भाई के नेत्र में का तिनका तू क्यों देखता है, जब कि तेरे अपने ही नेत्र का लट्ठा [ Beam=शहतीर ] तुझे नहीं सूझता ? ॥ ३ ॥ हे कपटी ! पहिले अपने नेत्र से लट्ठा निकाल दे, तब तुझे भली प्रकार दीखेगा कि अपने भाई के नेत्र से तिनका किस प्रकार निकाला जाय ॥ ५ ॥
( मत्ति अ० ७ )

सुविज्ञ पाठको ! जैसे अहिंसा-वादी हिंदू वेद से विमुख होकर पशु-हिंसा करने लगे, बस उसी प्रकार मुसलमानों का भी पतन हुआ।

। झटका उन बिस्मिल कीह्वां दया दुहां से भागी।
कहे **कबीर** सुनो भाई साधो ! आग दुहां घर लागी॥

**दीन इसलाम की नींव गो बलिदान पर नहीं है** ! उन का वैद्यक शास्त्र गो-मांस भक्षण की मुसलमानों को आज्ञा नहीं देता ! ! स्वयं ह० मुहम्मद गो-मांस नहीं खाते थे ! ! ! ये सब बातें जब पाठकों के सामने अगले लेखों में आयेंगी तो वे आश्चर्य-चकित हो जायेंगे।

**प्रश्न ४.** मुसलमानों की मनोवृत्तियों का गत १२०० वर्षों से हमें अति कटु अनुभव आ चुका है। अपने दीर्घकालीन राज्य में उन्होंने सब प्रकार के अत्याचार हम पर किये। अब अंगरेजी राज्य में भी उनके मन वैसे ही मलिन है। फिर क्या आपके लेखों से उनके हृदय शुद्ध हो जायेंगे ?

**उत्तर** – यह सत्य है कि मुस्लिम-राज्य काल में ही नहीं अपितु आज भी हिंदुओं पर मुसलमानों के अत्याचार हो रहे हैं। ईसाई, यहूदी, जैनी, पारसी, सिख आदि अपने को हिंदुओं से विभिन्न माननेवाली अनेक जातियां भारत में हिंदुओंसे मिल जुलकर रह सकती है। परन्तु केवल मुसलमान ही एक ऐसी विचित्र जाति है, जिससे हिंदुओं का जीवन, उनकी सम्पत्ति, उनकी बहू बेटियोंकी मान मर्यादा सदा आपत्तियों से घिरी रहती है ! बकर ईद का त्योहार तो एक रक्तपात का त्योहार ही समझा जाता है ! बकर ईद आनेसे कई दिन पहले ही हिंदुओंमें बेचैनी फैल जाती है कि अब की ईद पता नहीं कैसे होगी ! ईद सुखरूप समाप्त होते ही वर्तमान-पत्रों में तारें छपती हैं कि '**ईद सुखरूप समाप्त हुई** !'

परन्तु इतना होते हुए भी हिंदु मुसलमानों की-उनके खिलाफत आदि निजी बातों में भी-तनमनधन से सहायता करते रहे हैं !! परन्तु- **मर्ज बढता गया जूं जूं दवा की।** मुसलमानों में यह वहम फैला कि हिंदु कमजोर हैं इस लिये झुकते जाते हैं ! कांग्रेस और म० गांधीजीने मुसलमानों के सामने झुकने में, और मुस्लिम लीगने पैतरे बदल बदल कर उन्हे हर प्रकार से झुकाने में कमाल कर दिखाया ! ! ! सहयोग का तो नाम नहीं, केवल सहायता मांगना मुसलमानोंने आरंभ कर दिया। जैसा कोई किसे कहे कि 'जब तुम हमारे घर आओगे तो हमारे लिये क्या लाओगे ? और जब हम तुम्हारे घर आवेंगे तो हमें क्या खिलाओगे ?' एक मुसलमान संपादकने तो यहांतक छाप डाला कि-

**हिंदू हजार शौक से मुस्लिम् पे जान दे।**
**मुस्लिम् भी उसको हाथ से फिर अपने पान दे ॥**

अर्थात् हिंदू तो प्रेमपूर्वक मुसलमान पर अपना जी न्योछावर कर दे, और इतना कर चुकने के पश्चात् मुसलमान को भी चाहिए कि उसे अपने हाथ से एक पान खिला दिया करे ! ! कितनी कृतघ्नता ! कितना स्वार्थ ! ! परन्तु जो मौलाना मिस्टर मुहम्मद अली खिलाफत में सहायता लेने के समय म० गांधी की रात दिन प्रदक्षिणा डालते रहे और हिंदुओं को अपने व्याख्यानों में मुसलमानों का बडा भाई घोषित करते रहे, उन्होंने स्वार्थ सिद्धि के पश्चात् इतना भी तो न किया ! मुम्बई में जब आपने स्व० लो० टिळक के अर्थीको कन्धा दिया, तो मुसलमानोंने आक्षेप किया कि एक **काफिर** के अर्थी को कंधा क्यों लगाया ? दूसरोंने कहा कि यह तो मुसलमान ही नहीं- कारण यह तो एक हिंदू- म० गांधी का चेला बन चुका है, और हिंदुओं को- जो काफिर है- मुसलमानों का बडा भाई बताता है- इत्यादि ! इस पर झट आप अपने असली रूप में प्रकट होकर कहने लगे कि "यह तो मेरी राजनीतियां है। वस्तुतः मैं न टिळक का प्रेमी था और न गांधी को ही अच्छा समझता हूं। मैं तो **एक फासिक*** **व फजिर मुसलमान को म० गांधीसे**

* फासिक=अपराधी; पापी। फाजिर=स्त्रैण; जिनाकार; Whoremonger. बदर्जहा=कई अंशोंसे; by several degrees.

बदर्जहा अच्छा समझता हूं।"

परन्तु इतना अपमान भी महात्मा गांधी और हिन्दुओंने न केवल चुपचाप सहन ही कर लिया, परन्तु देश की भलाई का विचार करते हुए फिर भी मुसलमानों के लिये हर प्रकार का त्याग करते रहे। जैसे खिलाफत मुसलमानों का निजी कार्य था, उसी प्रकार अछूत उद्धार हिंदुओं का अपना सामाजिक प्रश्न है। इस पर व्याख्यान देते हुए मौ० मुहम्मद अली मरहूमने कहा कि हिंदुओं को चाहिए कि **वे अपने अछूतों की आधी संख्या** [ लगभग ३½ कोटी ! ] **मुसलमानों के स्वाधीन कर दें कि वे उन्हें मुसलमान बना कर उनका सुधार करें ! ! !** कांग्रेसी हिंदू नेताओंने इस कथनपर भी कोई आक्षेप न किया, और पूर्ववत् मुसलमानों की खुशामदें ही करते रहे ! आज दूसरे मिस्टर मुहम्मद अली जिन्हा कांग्रेसी हिंदुओं को अपनी चुटकियों पर नचा रहे हैं !

परन्तु जहां एक ओर तो इतना विद्वेष, स्वार्थ, कृतघ्नता, जुदा भाव, और अपने दीन की श्रेष्ठता और हिंदुओं के सनातन धर्म की निकृष्टता का भाव मुसलमानों के मन में भरा हो, ओर जहां दूसरी ओर कांग्रेसी हिंदू अपने मान, अपमान, जाति, धर्म, समाज आदि के हिताहित को हिंदू-मुस्लिम एकतारूपी मृगजल के पीछे दौडते हुए सर्वथैव भूल चुके हों, वहां यदि संगठन हो भी जाय तो हिंदूओं को क्या लाभ ?

मुसलमानों की इन्हीं मनोवृत्तियोंने **हिंदू महा-सभा और राष्ट्रीय-स्वयंसेवक-संघ** को जन्म दिया।

परन्तु हमारा विचार है कि **मत-भेदों का मूल कारण सदैव अज्ञान** ही रहता है। और अज्ञान को हटाना ही इस लेखमाला का मुख्य उद्देश्य है। अज्ञान हटा, और एकता आई !

**प्रश्न५.** यह हम जानते हैं कि अज्ञानके नाशसे झूठी कल्पनाएं नष्ट होती हैं और मनुष्य सन्मार्ग पर आ जाता है। परन्तु हमारी धारणा है कि जब कोई जाति अपनी धर्म-पुस्तकों के आधार पर किन्हीं असत्य सिद्धांतों को भी सत्य समझ बैठती है, तो फिर उन्हें अन्य धर्मग्रन्थों के प्रमाण, निः-पक्ष महापुरुषों के वचन, पदार्थ-विज्ञान की सिद्धियां और बौद्धिक युक्तियां अपने माने हुए मार्ग से हटा नहीं सकतीं !! मुसलमानोंने कुरआन और हदीसों के आधार पर जो अपने मन्तव्य बना डाले हैं, वे उपरोक्त साधनों से काटे नहीं जा सकते ! अतः आप व्यर्थ की माथा पच्ची न करें।

**उत्तर–** भ्राताजी ! माथा पच्ची के बिना संसार का कोई कार्य नहीं होता।

१. वेदादि शास्त्रोंके प्रमाण देकर हम कुर्-आन का खण्डन करना नहीं चाहते, और यदि करें भी तो मुसलमान इसे क्यों मानेंगे ? हम तो स्वयं मुसलमानों के अपने किये हुए भाषान्तरोंके आधार पर यह सिद्ध करना चाहते हैं कि कुरआन अमुक अमुक वैदिक सिद्धान्त का पोषक है ! हम कुरआन का खण्डन करना नहीं चाहते, अपितु उसके सत्य सिद्धांतों का मूल सनातन धर्म में मिलता है, यह दर्शाना चाहते हैं। हम तो कुरआन में छुपे हुए रहस्यों और **केवल सत्य सिद्धांतों** को ही खोज खोज कर निकालना चाहते हैं ! क्यों ? इस लिये कि इन से भारत की दो बडी जातियों का वैमनस्य दूर हो।

२. जिस प्रकार वेद के विद्वान् एक ही वेद-मन्त्र के किन्हीं अक्षरों का भिन्न अर्थ करके उस मन्त्र से किसी भिन्न ही सिद्धांत का बोध लेते हैं, और उसी मन्त्र को अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार भिन्न भिन्न सिद्धान्त का सहेतु और सप्रमाण पोषक बनाते हैं, उसी प्रकार क्या कुरआनके अक्षरों के स्वयं मुसलमानोंने भिन्न भिन्न अर्थ नहीं किये हैं ? क्या सर्वथा नये अर्थ होना भी सम्भव नहीं हैं ? यदि हैं, तो उन्हीं आयतों से नई बातों पर प्रकाश पडना और सनातन धर्म के मन्तव्यों का मण्डन होना भी सम्भव है !

३. आज संसार के निःपक्ष युरोपियन विद्वान् भी संस्कृत भाषा को सृष्टि के भाषाओं की माता अर्थात् जन्मदात्री मुक्त-कंठ से मान रहे हैं। इस अवस्था में क्या यह संभव नहीं कि कुरआन के जिन शब्दों को आजतक शुद्ध अरबी भाषा का माना जाता रहा हो, वे अपना धातु [ मस्दर; Root ] संस्कृत भाषा में रखते हों-अर्थात् वे वास्तव में संस्कृत से ही निकले हुए हों ? और ऐसी अवस्था में क्या यह भी संभव नहीं कि वे अरबी भाषा में माने हुए अर्थों से भिन्न ही अर्थ भी रखते हों ?

उदाहरणार्थ, संस्कृत में राम शब्द का अर्थ है **सुन्दर, मन-मोहक** आदि। यही शब्द फारसी भाषा में जाकर **आधीन** और **आज्ञापालक** अर्थ रखने लगा।

इसी प्रकार अरबी के ऐसे शब्दों के अर्थ भी बदल सकते हैं, जो कि संस्कृत से आये हुए हों। कम से कम विद्वानों के लिये तो ऐसी बातें अवश्य विचारणीय हो जाती हैं, और इन पर विचार किया जायगा।

५. जो मनुष्य वा जो जातियां अपनी पुस्तकों की असत्य बातों को भी सत्य समझती हैं और दूसरों के सत्य को भी असत्य मानती है, उनको कुरआनने **अन्धा और बहिरा** कहा है! कुर्‌आन की सर्वत्र यही मुसलमानों को आज्ञा है कि **असत्य को छोडो और सत्य को ग्रहण करो**, यह बात हम कुर्‌आन के प्रमाणों से आगे चल कर सिद्ध करेंगे। मुसलमान मानें वा नहीं, यह उनकी इच्छा!!

**प्रश्न** ६– मुसलमानों के दीनी साहित्य से यदि सनातन धर्म की पुष्टि हो सके तो अत्युत्तम है। परन्तु शताब्दियोंसे मुसलमान हिंदुओं को **काफिर** ही कहते रहे हैं! यही नहीं वे तो अपनेसे भिन्न विचार आचार सभ्यता और धर्म रखने के कारण हिन्दूओंको अपना **विरोधी** भी समझते रहे हैं!! ये भावनाएं भला किस प्रकार उनके हृदयोंसे मिट सकती हैं?

**उत्तर**– १. सब व्याधियों की एक ही महोषधि है **अज्ञान का नाश**!

२. हम स्वयं कुरआन से सिद्ध करेंगे कि हिंदू काफिर नहीं! और यह सिद्ध करेंगे कि **काफिर** और **मूमिन** दोनों ही गुणकर्मानुसार बना करते हैं !!

३. हिन्दू मुसलमानों के विरोधी भी नहीं! कारण 'विरोध' शब्द के जो अर्थ कोशकारोंने माने हैं, वे हिन्दुओं पर नहीं घटते। देखिये–

विरोध= मुकाबला [सामना] Opposition; रुकावट, Hindrance; रोक, Check; दुश्मनी [वैर] Hostility; झगडा, Quarrel; लडाई, War. दी न्यू रायल डिक्शनरी।

अब बताइये कि क्या हिंदुओंने मुसलमानों की दीनी बातों में कभी रुकावटें डालीं? क्या हिंदू उन से वैर रखते हैं? कोई कहेगा कि गो-बलिदान पर हिन्दू विरोध करते हैं, सो उस का कारण यह है कि मुसलमान बकर-ईद के अवसरों पर जान बूझ कर हिंदुओं को भडकाने और चिडाने के लिये कुछ वर्षों से कुरबानी की गौओंको सजाते हैं और बाजा बजाते हुए उन का जुलूस [बरात = Procession] निकालते हैं! मुसलमान शताब्दियों से गो-बलिदान करते आये हैं, परन्तु जब से उन्होंने जुलूस निकालना अथवा हिंदुओं के मुहल्लों अथवा मंदिरों के आसपास कुरबानी करना आरंभ किया है, और जब से उन्होंने कसाबखानों [Slaughter houses] में गौओंको न काटते हुए आने जाने के मार्गों के समीप वा खुले मैदानों में गौएं काटना आरंभ किया है, तब से ही झगडे आरंभ हुए हैं! बडे बडे नगरों में तो बकरों का मांस भी बंद गाडों में डाल कर कसाइयों के दुकानों तक पहुंचाया जाता है कि किसी का दिल न दुखे! फिर भला गौ जैसे परोपकारी प्राणी की अपने आंखों के सामने हत्या होना हिंदू कैसे सहन कर सकते हैं?

४. सुअर को मुसलमान इतना अपवित्र मानते हैं कि उस का नाम लेना भी बुरा समझते हैं! कभी भूल कर बिचारा प्रातः नींद से उठते ही सामने दीख जाये, तो उन्हें बडा क्रोध चढ जाता है!! परन्तु कुरआन के पढनेवाले कुरआन में कई बार आये हुए इसी सुअर [वराह; Boar] शब्द का दौर [रटन] करने में कोई पाप नहीं समझते!! हिंदू इसी वराह को परमेश्वर का अवतार समझते हैं!! ईसाई, सिख, गुरखा आदि हिंदुओं की कई जातियाँ वराह भगवान् को मार कर खा भी जाती हैं। मुसलमान इस का मांस खाना दीन इस्लाम से पतित होना मानते हैं!!!

सारांश यह निकला कि प्रत्येक जाति के अपने अपने विचार हैं। और सब को इतनी सावधानी अवश्य रखनी चाहिये कि हमारे किसी कृत्य से पडोसी का दिल न दुखे। जापान में बौद्ध धर्म को माननेवाले बूढे माता पिता अपने ईसाई, मुसलमान और नास्तिक बने हुए पुत्रोंके साथ **एक ही** घरमें रह सकते हैं, तो क्या हम विपरीत मतों को मानते हुए एक देश में भी नहीं रह सकते?

५. यह बात सर्वथा मिथ्या है कि जातियोंमें आचार और व्यवहार की भिन्नता एकता होनेमें बाधा डालती है। हिंदुओं

की वैदिक वर्ण व्यवस्था में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र एक दूसरे से भिन्न भिन्न गुण कर्म स्वभाववाले होते हुए भी एक दूसरे के सहायक बने रहते हैं! कोई आक्षेप करेगा कि यदि वर्णव्यवस्था की कल्पना सत्य होती तो आज हिन्दू आपस में संगठित होते– परन्तु जितनी फूट इनमें है, कदाचित् ही संसार की किसी अन्य जाति में हो! उत्तर यह है कि वेद की वर्ण व्यवस्था में कोई त्रुटी नहीं। सारा दोष अपने व्यवहार का है। सिद्धान्त सौ सच्चा हो, यदि उस पर कोई चले ही नहीं, तो फल कैसे मिले ?

उपर्युक्त वैदिक सिद्धान्त की सचाई इतनी प्रबल है कि एक आंग्ल विद्वान्‌ने भी मान लिया है! यथा–

Four Ms make the Monarchy, i.e. Missionary, Military, Merchants & Menials.

अर्थ– आंग्ल भाषा के चार M = म मिलकर एक राजसत्ता निर्माण करते हैं। मिशनरी [ ब्राह्मणत्व वा विद्यासमिति ], मिलिटरी [ क्षत्रियत्व वा राज समिति ], मर्चंट्स [वैश्यत्व वा अर्थ-समिति] और मीनियल्स [शूद्रत्व वा सेवा-समिति] जब ये **चारों अपने भिन्न भिन्न धर्मों और व्यवहारों का अपने पृथक् पृथक् गुण-कर्म-स्वभावानुसार पालन करते हुए एक दूसरेकी सहायता करेंगे तभी वर्ण-व्यवस्था अथवा राजसत्ता भली प्रकार चल सकेगी इसी नींव पर जातियोंमें भी एकता आ सकती है।**

६. भिन्न भिन्न जातियों के चार मनुष्यों में से एक वैद्य, दूसरा वकील तीसरा व्यापारी और चौथा चित्रकार है। सबों के विचार व्यवहार भी भिन्न भिन्न हैं। परन्तु क्या वे एक दूसरे के वैरी हैं ? कदापि नहीं!

७. हमारे शरीर की पांचों ज्ञानेंद्रियां भिन्न भिन्न प्रकार और आकार की हैं और एक दूसरे से भिन्न ही व्यवहार करती हैं! परन्तु एक ही ज्ञानेन्द्र [ जीवात्मा ] के आधीन होने से शरीर रूपी राष्ट्र का राज्य सुखरूप चलता रहता है। इस आश्चर्यजनक ईश्वरीय योजना पर विचार करते हुए भीका भक्तने कहा है–

**भीका बात अगम की कहन सुनन की नांह।**
**देखे सो बोले नहीं, सुने सो देखे नांह॥**

**अर्थ– भीका** भक्त कहने सुनने मात्र की नहीं परन्तु एक समझ में न आनेवाली ऐसी रहस्य की बात बताते हैं कि जो देखती है [ आंख ] वह बोलती नहीं [ मुख का कार्य नहीं करती अर्थात् गुंगी है ] और जो सुनता है [ कान ] वह देखता नहीं [ आंख का काम नहीं करता अर्थात् अन्धा है ]।

इस दृष्टान्त से हिंदुओं को यह बोध मिलता है कि भिन्न वर्णों के मनुष्य यदि एक ही शासन में रहें तो उन में संगठन आ सकता है। परन्तु हिंदुओं में जाति पाती और देवी देवताओं की पूजा संबंधी इतने भेद दृढमूल हो चुके हैं कि उन का संमिलित रूपसे किसी एक पथपर चलना अर्थात् एक प्रकारके अथवा बहु सम्मत सिद्धांतोंको मानना दुष्कर हो चुका है!

८. बकरी घास खाती है, सिंह मांसाहारी है। तो इस से क्या यह सिद्ध हुवा कि बकरीने सिंह का विरोध किया?

९. इसी प्रकार जिन हिंदुओं का **गीता** और कुर्आन के भी सम्मत आज्ञानुसार ऐसा मत हो कि **तेरे लिये तेरा दीन और मेरे लिये मेरा धर्म**, क्या वे कभी मुसलमानों के विरोधी हो सकते हैं? कदापि नहीं! अतः मुसलमानों को अपना मत बदलना चाहिए। [क्रमशः]

# भक्त के भगवान्।

(लेखक– श्री० हलियाराम कश्यप, एम्. एस्सी., लाहौर)

पिछले खण्डों में दर्शाया गया था कि मंझले भाई साहिब की बीमारी पर जो परमात्मा-शक्ति अनुभूत हुई उस के विषय में पहिले इस कारण नहीं लिखा गया था, कि परिणाम उस का शोकजनक हुआ था।

इस खण्ड में एक ऐसी घटना लिखी जाती है जिस का परिणाम हर्षजनक हुआ। यह घटना भी भगवत् शक्ति की विचित्र द्योतक है। घटना इस प्रकार है—

मैं मई सन ४० से १४ जुलाई सन ४१ तक अपने बडे भाई साहिब के दफ्तर में काम करता रहा, इस काल में पता नहीं क्यों भाई साहिब ने कई बार मुझे कहा कि "आगे तुम कहते थे, अब मैं कहता हूं।" "मैं अनुभव करता हूं कि तुम्हे अपने कामसे हटा कर इस काम में लगा कर स्यात् मैंने पाप किया है।" परन्तु मैं अब की बार काम करने पर तुला हुआ था कि जो मुझ पर काम न करने का आक्षेप सदा से है वह एक बार तो हटा दिया जाय, इस कालमें एक लगभग बारह सहस्रके ठेकेका दिवाला भी निकल गया, परन्तु क्योंकि काम चलता जाता था और मुझे निश्चय था कि काम छोडने पर मुझे फिर पहिले की न्याई तंगी में रखा जावेगा, इस लिये उन के बार २ हटाने पर भी मैं काम करता ही गया। हां जो ऐसे वैसे बडे२ नुकसान होते थे, उन की पूर्ति कभी कभी खाली बैठकर अपने बडे भतीजे की किसी विशेष मुलाकात पर प्रभाव डाल कर मैं कसर निकाल देता था इस प्रकार जैसे तैसे लगभग १½ साल कट गया।

परन्तु मई ४१ के अन्त में या जून के आरम्भ में एक बडी उत्तम संधि फर्म को मिलने के लिये एक कई लाख के व्यापार की पूछताछ आई अब की बार मेरे दिल ने यह न माना कि ऐसी संधि हाथ से गंवाऊं। मुझे निश्चय था कि घरवाले फिर बिगडेंगे, पर मैंने मन कडा किया कि जो होगा देखा जावेगा, ख्वाहमख्वाह क्यों अपने कार्य से इन के ऐसे सुवर्ण संधि में बिगाड करवाता जाऊं। अस्तु, मैं कार्य स्थगित कर दफ्तर जाना बन्द कर घरपर आ बैठा। पूछने पर कि क्यों घर बैठ गया हूं, मैंने घरवालों से कहा कि यदि सच पूछते हो तो इस लिये खाली बैठा हूं कि इन का (अर्थात् दफ्तर का) कुछ बन जाय और यदि वैसे पूछते हो तो मैं इसलिये बैठा हूं कि मुझे मरोड आते हैं।

इस प्रकार मैंने कई दिन बिना दफ्तर गये ही बिता दिये। उन दिनों मेरे ध्यान में यही बात चक्कर लगा रही थी कि इस बार इनका कुछ बन जाय। एक दिन मंझली भौजाई साहिबाने पूछा कि दफ्तर क्यों नहीं जाते? तो मैंने उन्हें उपर्युक्त कारण कह सुनाया, पर साथ ही मैंने कहा कि मुझे साथ ही यह भी ख्याल आता है कि यदि इनका कुछ बन भी गया तो भी मेरा तो इन्होंने क्या बनाना था? इस पर वह बोली कि तुमसे जो बनता है वह बना दो इनकी ये आप जानें। मैंने उत्तर दिया "मुझसे जो बनता है वह तो बना ही रहा हूं।" फिर मैंने अपने दिल को समझाने के लिये दिल में कहा "फिर भी जितने लाख का आर्डर होगा उतने सैंकडे माहवार तो मुझे भी कम से कम देंगे ही।"

अब तमाशे की बात यह है कि जो तीन भाव मेरे दिल में थे, उन की पूर्ति कैसे घटना में आई, यह बडी विचित्र समस्या है।

पहिली भावना कि इन का कुछ बने तो इस प्रकार फलीभूत हुई कि आर्डर चार लाख पचानवें हजार का मिला इतना बडा आर्डर इस फर्म को पहिली बार मिला, ऐसे ही अन्य फर्मों को भी लडाई के कारण मिला ही होगा।

दूसरी दुर्भावनाने हमें बहुत दुःख दिया, क्योंकि जबसे आर्डर मिला, उसी समयसे भाईसाहिब व्याधिग्रस्त हो गये और सख्त तकलीफ में लगभग १½ मास भर रहे। तकलीफ ठहरी रहने का स्यात् यह कारण भी हुआ हो कि भाई-साहिबने जहां अपनी सब की खूब तरक्कियां कर लीं, वहां मेरी बाबत सब ही निश्चल ही रहे, न मैंने पहिले जोर दिया, न

उन्होंने अपने आप किया, पीछे से मेरे कहने पर भी न किया। साथ ही मुझ से यह गलती भी हुई कि जहां मैंने आर्डर से पहिले यह भावना की थी कि यह आर्डर मिलने पर कभी काम नहीं करूंगा, वहां मैं चाहे अपनी नौकरी स्थिर रखने के लिये चाहे घरवालों के डर से फिर काम करने ही लग गया।

१४ जुलाई तक ऐसे ही चलता रहा। भाई साहिब की बीमारी का कुछ इलाज किसी को सूझ न पाया। १५ को प्रातः ही मुझे लाहौर से जाना पडा। वैसे तो दो तीन दिन में ही मैं लौट आता, पर भाई साहिब की बीमारीसे दुःखी हुए मैंने वहाँ पर १२ दिन कोई बहाना बना कर बिता दिये अर्थात् मैं २६ जुलाई को वापिस लाहौर लौटा।

इन दिनों मुझे बार बार यह विचार उठे कि ऐसे आर्डर से तो इस का न मिलना ही अच्छा होता कि भाई साहिब तो राजी रहते। अस्तु, आर्डर में गडबड पडने लगी और मेरे लाहौर लौटने से पहिले ही उन्हें कलकत्ते इस आर्डर के सम्बन्ध में ही जाना पडा।

मेरे स्पष्ट वक्तृत्व से अप्रसन्न होकर दफ्तरवालोंने मुझे वापिस आने पर काम में न लगने दिया अर्थात् १५ जुलाई से ही मेरा दफ्तर का काम छूट गया।

उधर भाई साहिब का कलकत्ते में वह आर्डर बदला ४९५ हजार के स्थान में १४४ हजार का रह गया और शेष के बदले में लगभग पौने चार लाख का भिन्न आर्डर मिला, साथ ही भाई साहिबकी वहां इलाज होनेसे वह सख्त बीमारी भी सर्वथा उड गयी।

अब वापिस आकर फिर भाई साहिब तन्दुरुस्तों की न्याईं अपने काम में लग गये, मगर मेरी बाबत कुछ न किया कराया। खैर एक दिन मैंने अपना हिसाब देखा, तो वहां जुलाई की तनख्वाह ही दरज न पाई फिर भाई साहिब से कहा तो इन्होंने पहिली जुलाई से १५०) रु० मासिक बांधा जो यदि १४ जून से समझा जाय तो लगभग १४५ रु० मासिक ही पडेगा, क्योंकि उस बार वह ३१ जून १९४२ तक जारी रहा।

अब जब कि उस आर्डर का किस्सा सर्वथा समाप्त हो चुका है, यह विचित्र घटना प्रतीत होती है कि मनुष्य के अन्दर परमात्माशक्ति, भावनाशक्ति के रूप में किसविध कार्य करती दिखाई पडती है कि लाखों के सौदेके विषय में भी वह विचित्र प्रभाव दर्शाती है, यह बडी अचम्भे की बात है कि कैसे तीन मुख्य भावनाएं चाहे अच्छी चाहे बुरी कैसे पूरी फलीभूत हुई।

"इनका कुछ बने" के उत्तर में पांच लाखके लगभग मूल्य का आर्डर मिला। 'पर मेरा यह क्या बना देंगे' के दुष्परिणाम स्वरूप भाई साहिब को १½ मास कष्ट भोगना और हम सब को विशद चिन्ताग्रस्त रहना पडा।

'कम से कम एक लाख पर एक सौ माहवार तो मुझे भी देंगे ही' उस पर आर्डर ४९५ से १४४ रहकर मुझे लगभग १४४) के हिसाब १२ मास का मिलना ही सिद्ध हुआ।

इस सारे से यह पता चलता है कि कोई सार्वभौम शक्ति है जो मानवी हृदय मस्तिष्क को अपना क्रीडास्थल बना सकती है। मैं यह नहीं कहता कि मेरे भावों के कारण ही उपर्युक्त सब कुछ घटा, क्योंकि मेरे तो यह स्वप्नमें न आया था कि भाई साहिब ऐसे कष्ट में इतनी देर रहेंगे, क्योंकि यदि यह मैं जानता होता और मेरे वश की बात होती तो मैं तो ऐसा दुःखदायी आर्डर होने ही न देता, पर इससे यह पता अवश्य चल जाता है कि मनुष्य के अन्दर परमात्म-शक्ति भविष्यत् को भांप जानेवाली अवश्य है, पर उस की मानवी शक्ति ऐसी नहीं जो उस परमात्म-शक्ति में हस्ताक्षेप कर सके। यदि कर सकती तो मंझले भाई साहिब को भी यह दास शायद बचा ही लेता, पर नहीं, ऐसे कई कुअवसर मेरी जीवनी में आए हैं जब लाख यत्न करके भी बीमारका पीछा छोडना पडा और वह चल बसा।

इस लिये प्रिय पाठकों को उपर्युक्त हर्षान्त घटनासे यह परिणाम निकालना चाहिये कि मनुष्य के हृदय मस्तिष्कको भगवान् अपना क्रीडास्थल बना सकता है और वास्तव में भक्त वही है जिसे भगवान् स्वयम् अपना क्रीडास्थल बनाये और सब से उच्च भक्ति वही है जिस में भक्त खुशी खुशी अपने आप को भगवान्का क्रीडास्थल बनाता है और भगवान् जब कोई अपना कार्य उसके द्वारा करना चाहे और करने लगे, वह उस समय उसमें कोई रुकावट

न डाले, सर्वथा भगवान् का विरोध न करे, तुरन्त अपने को भगवान् की कठपुतली बना देवे।

बस भगवान् के कार्य का माध्यम बनना ही वास्तविक मोक्षानन्द है।

(२) अब हम अपने पूज्य सिद्ध चचाके कुछ अन्य चमत्कार देते हैं जो दिसम्बर ४२ के तृतीय सप्ताह में मुझे अपनी बडी भूआजी के लडके से प्राप्त हुए। वह हमारा भ्राता भी वहां लुध्याने ही आया था, और इधर से मुझे भी उससे कुछ दिन पहिले ही वहीं लुध्याने जाना पड गया था। उस ने बतलाया—

(क) इसी मकान के निचले कोठों में जब आरम्भ में ही अनाज भरा जा रहा था, तो मजदूरोंने हमारे कई बर्तन गुम कर दिये जिससे नानाजी (लेखक के बाबाजी) को बडी चिन्ता हुई। वह सोए तो स्वप्न में मामाजी ने (उन को बाबूजी कहा करते थे) उन्हें कहा "चाचा! (अर्थात् पिताजी) तूं काहनूं फिकरां व पिया रहनां हैं, तैनूं की भांडयां थाईं छड हुन ऐहनां गल्लां नूं। जा ओस ढेर चों कड्हलै। (अर्थात् अब के अब इन चिन्ताओं को छोड देना चाहिये। घरवाले स्वयं करते फिरें। यदि बहुत चिन्ता है तो जाईये, अमुक मट्टी के ढेर के नीचेसे निकाल लीजिये)।' पूज्य बाबाजी तुरन्त उठे और घरवालों से उस ढेर को उलटपलट करने को कहा। वहीं से सब बर्तन बरआमद हो गये।

(ख) भाईये दे (लेखक के फुफड के) फोडा था पीठ पर। हर वर्ष फिर नया हो जाता था। एक साल वह बाबूजी के पास उसी हालतमें था कि आप उसे हाथ लगाने लगे, तो भाईयेने कहा कि दर्द करता है। बाबूजीने कहा आप वैसे ही कहते हैं, यह कहां दर्द करता है, यह तो दर्द नहीं करता, दर्द नहीं करता नहीं करता लो हट गया। कुछ ही दिनों में स्यात् १५ दिवस में वह ऐसा हटा कि फिर किसी वर्ष भी नहीं हुआ।

(ग) हमारे यहां गांवोंमें कुआं नहीं लगता था, बहुत कोशिश की गयी, पर व्यर्थ। यहां बाबूजीसे कहा गया तो आप बोले कि आप के हां कंगनी बहुत होती है बस इय्यूर छोम वह खाते जायंगे और कुआं निकालते जायंगे। ठीक वही हुआ। सक्कर मिला कंगनी का भात खा खा कर लग भग १५ ही दिनमें उन महरों (पानी भरनेवाले मजदूरों) ने कुआं तय्यार कर दिया।

नोटः— अपनी बडी बहिनजी को कहने लगे कि हमारे सत्कार के लिये हमारा नाम स्मरण कर लेना ही काफी है और कुछ देने दिलाने की कोई जरूरत नहीं, क्योंकि हमने जो कुछ किया है, अपने वंश के ही लिये किया है।

(३) एक बात मैंने अन्य सम्बन्धियोंसे सुनी है वह यह कि एक दिन अपने बडे लडके को बिठाकर सुला कर जगा लिया। फिर कहा कि तुम समराले अपने तायाजी के पास हो आओ, वह वहीं पहुंच गया, कहा कि यहां का सब हाल सुनाओ। उसने सब वृत्तान्त कहा और एक विचित्र बात यह कही कि उनके कमरे में जो एक सन्दूक पडा है उसमें एक मिठाई की पुतली देर की पडी है, किसी को स्मरण ही नहीं रही। जब पूज्य तायाजी आये तो उन से सब कुछ का प्रमाण करवाया गया, पर पुटली की बाबत वह बोले कि वहां लौट कर तब उसके विषयमें कह सकूंगा। अस्तु, वहां जाकर उन्होंने लिखा कि हां भई अमुक व्यक्ति दे गया था। मैं इसे रखकर सर्वथा ही भूल बैठा था।

(४) दूसरी दो बातें पूज्य तायाजी सुनाया करते थे। एक तो यह कि लाहौरके नवीन शालामारके निर्माण कर्त्ता जनार्दनजी तथा अन्य मित्र एक दिन बहुत रात गये बैठे कहने लगे कि इस समय कोई कुछ खिलाये सब की दृष्टि इन्हीं पर पडी, क्योंकि सब इनको कुछ समझते थे, सो इन्हीं को आग्रह करने लगे। बहुत असरार होने पर आप को मानना पडा तो आपने कुछ किया जिस पर कोई व्यक्ति (गान्धर्व वा जिन्न कहिये) उपस्थित हो गया। उसे कहा गया कि भई, कहीं से कुछ लाओ, वह बोला इस बेवक्त कैसे हो? तो बोले भई, यह मित्र असरार करते हैं, इन का कहा मानना ही पडेगा। वह बोला इस समय तो एक भंगियों के विवाह है वहां नौशो का थाल है, केवल वह ला सकता हूं, यदि आपके काम का हो। सब बोले, अच्छा वही सही। वह तुरन्त वही ले आया सब मित्रोंने भोग लगाया। उधर मेहतरों के हां शोर मच गया कि नौशो का थाल गुम हो गया।

दूसरी बात तायाजी बताया करते थे कि एक दिन उप-

युक्त मित्र लोग उन्हें स्टेशन लाहौर पर गाडी चढाने आये, सब चढाकर जाने लगे तो पूछने लगे ' अब तो ठीक है नां भई, अब हम जायं । ' बाबूजी बोले, ' भई देख लो, गाडी कट भी जाया करती है ।' मित्र ठहर गये । तभी शोर मच गया, ' उतरो, उतरो, यह डब्बा यहीं कटेगा ' सब मित्र विस्मित रह गये ।

(५)आज कल कुछ स्वप्न लेखक को भी फिर आने लगे हैं, कोई सच्चे कोई सुन्दर इत्यादि, जो कुछ यहां लिखना उचित समझता हूं ताकि आत्मा में दिव्य दृष्टि उत्पन्न करवाना चाहनेवालों को रास्ता दिखाई देने लगे । यथा—

( क ) मुझे तीन मास के लगभग अर्थ- संकट रहा है एक दिन स्वप्न आया कि दो व्यक्ति मेरे पास से गुजरे हैं, एक ने मेरी जेब में हाथ डाला है तो मैं अचम्भे से उन की ओर देखता हूं कि यह मुझे लूट ले चला है, इस पर दूसरा बोला कि इसने जितने निकाले हैं उस से अधिक आप की जेब में डाल दिये हैं । मै बडा प्रसन्न हुआ और जागकर प्रतीक्षा करने लगा कि, देखूं कैसे यह स्वप्न सच्चा उतरता है । सारा दिन बीत गया और मैं विस्मित था कि अचानक सायं को सैर में मेरे बडे भतीजे मिस्टर लालने बताया कि कलकत्ते से भाई साहिबने उन को लिख भेजा है कि तुम्हारे चचा को आवश्यकता होगी, उसे रुपये देना ।

( ख ) हमारे एक पूज्य सम्बन्धी राधा स्वामि हैं। उन्होंने मुझे तीसरे गुरु की पोथी पढने को दी । उस विद्वत्तापूर्ण अंग्रेजी पुस्तक के अन्त में चार पृष्ठ हिन्दी पद्य में उन की वाणी के भी थे । मुझे भक्तों में श्रद्धा है ही। मैंने वह वाणी अंग्रेजी काव्य में उलथा कर डाली । रात को मैंने यह तुच्छ सेवा राधा स्वामी मतकी की और प्रातः ही अतीव नम्र स्वभाव पञ्चम गुरु महाराज मुझे दिव्य स्वप्नमें दर्शन देकर कृतकृत्य कर गये ।

**नोट-** राधा-स्वामी लोग सभी गुरुओंको एक ही आत्मा मानते हैं, इसीलिये तृतीय की वाणी का उलथा करने से पञ्चमजी हाल में ही दयाल लोक में पधारे हैं, वही दर्शन दे गये ।

( ग ) दो भयंकर स्वप्न भी सत्य उतरे, जिनका अत्यन्त खेद हुआ । यथा- मेरे एक परमप्रिय अत्यन्त आदरणीय सम्बन्धी व्याधिग्रस्त थे । मुझे पहिली रात को स्वप्न आया कि वह चल बसे, पिछली रात मैं जाग कर बैठा हुआ था कि उनकी आत्मा मुझे मिलने आई तो मैंने कहा कि मैं आपका इस प्रकार जाना पसन्द नहीं करता, आपने इतना बडा कार्य अपने ऊपर ऊठाया हुआ है । आप वापिस अपनी देहमें लौट जाओ । तथा च आपने भी मुझे जानेसे रोका था, उसका भी प्रतिकार अब मैं आपको देता हूं । अस्तु । उन्होंने कृपा की, उस दिन वह जीवित रहे । मैं समझा कि अब वह बच गये, परन्तु शोक कि अगले दिन हमको निश्चय करवा कर कि चाहे आप को कितना समय दूं आप मुझे बचाने में सर्वथा असमर्थ हैं, वह चलते ही बने । बडा दिल दुःखी हुआ ।

( घ ) दो तीन दिन स्वप्न भयङ्करता में बढते ही गये, मैंने अपने दिल को धीर बन्धाया कि रात को बिना शौच गये सो जाता हूं, इस से यह मस्तिष्क की गडबडी है । परन्तु तीसरे दिन स्वप्न में मेरे पास से एक भयंकर व्यक्ति लहू का बडा उठाये गुजर गया, यह कहता हुआ कि मैं इसे पीऊंगा । मै बहुत घबराया । पीछे से पता लगा कि उन २९-३०, नवम्बर तथा १ दिसम्बर को हमारा एक अत्यन्त प्रिय वत्स हमारे पूज्य तायाजी का बडा पोता कलकत्ते में बीमार पडा था जो ३ को चल बसा । ४ को उसके मरने का दु:खद समाचार तार द्वारा उसके पिता को रावलपिण्डी पहुंचा और ५ को प्रातः ही वह कलकत्ता जाते हुए लाहोर हमें मिले ।

अत्यन्त शोक हुआ, ऐसी उठती जवानी में नवविवाहित इतने कमाऊ लाल को गंवाने का । हम सब को रोता धोता छोड गया ।

इसी स्वप्न की सम्पूर्ण सत्यता रूप मेरी स्त्रीके लडकी होकर मरी और उसकी खाट के नीचे खून की भरी चिलमची और पास की अलमारी में वह मृत बालिका पडी, तब स्वप्न की घोर सफलता मुझे अनुभूत हुई ।

(६) अब कुछ सुन्दर स्वप्न भी थोडे से शब्दोंमें लिख डालता हूं—

( क ) एक दिन दो भक्त जिनको मैं दिन में मिला था उनके दर्शन हुए, एक सन्त बूडसिंघ बीर जिनकी भगवद्-

विषयक कविता भीतर से फुरती है और सन्तों की बाणी जैसी है दूसरे एक स्वामि जो अच्छे सुयोग्य विद्वान् हैं और हमें बाग में उन दिनों मिलते थे ।

( ख ) एक रात बडी सुन्दर सुनहरी मखमल सी बिछी हुई खूब झलमल झलमल करती दिखाई दी, चित्त आनन्द हो गया ।

( ग ) एक रात नीला आस्मान सफेद बदलियोंवाला दिखाई दिया, फिर विचार आया कि स्वामी जगन्नाथ यह आस्मान दिखा गये थे फिर तो चान्द सूरज दिखानेवाला कोई न मिला । इतने में कांसी की थाली किसीने मेरे सामने खडी कर दी । उस में दो सूर्य सुन्दर चमकते दिखाई दिये, चित्त प्रसन्न हो गया, तुरन्त स्वप्न समाप्त हो गया ।

( घ ) एक दिन बाग में एक मुसलमान मित्र से बात हुई कि पैगम्बर साहिब दर्शन देकर कुरान-शरीफ पढा सकते हैं यदि, पढनेवाला अत्यन्त उत्सुक भक्त हो । रात को दो स्वप्न आये एक में तख्त को उठानेवाले मये तख्त के दिखाई पडे, पर तुरन्त दृश्य ओझल हो गया। और दूसेर में दो व्यक्ति एक लडका एक बुढ्ढा दिखाई पडे। पास से गुजरा लडका लौट कर मेरे पास आया, मैंने उसे ला इला इल्लला पढाया, वह चला गया। मैंने फिर बुलाकर कहा- ऐसे लोग पढते हैं, मगर ठीक पढना इल्लिल्ला चाहिये। यह सुन कर उस की तसल्ली हो गयी और वह चला गया। नहीं तो पहिले उस बुढ्ढे के रोकने पर उसने न कर दी थी, यह कह कर कि यह परमात्मा का नाम लेता है, इसे मिल के जाऊंगा ।

अभी समझ आई है कि यह अवश्य पैगम्बर-साहिब और उनके परम प्रिय हजरत अली ही हो सकते हैं और कोई नहीं ।

इन सब स्वप्नों में मुझे एक कठिनाई रहती है कि मुझे तुरन्त जाग खुल जाती है और यह भाव बना रहता है कि यदि जाग न खुलती तो पता नहीं, आगे कैसे सुन्दर दृश्य दिखाई देते । अस्तु। इसमें अच्छाई भी है कि भयंकर स्वप्न भी तो तुरन्त बन्द हो जाते हैं, नहीं तो पता नहीं कि उन में अधिक देर पडा रहने से दिल कितना घबराता ।

(७) आज कल फिर मैं भगवान् के प्यारोंसे सम्बन्ध हुआ हुआ हूं, सो भगवत् चमत्कारों का आनन्द मिलता रहता है। सबसे सुन्दर बात तो यह है कि जिन मुन्शी अमीरचन्द जी के पीछे मैं स्वामी बुद्धाऽऽदेश जी के समय से पडा हुआ था, पर जिन से मैं रूठ कर चला आता था, परसों २८।६।४३ को न जाने भगवान् को क्या सूझी कि मैं घर से कोई ८ बजे सैर को निकला तो माल पर पहुंचते ही वह मिल गये। मेरी तो आत्मा की मानो खोया हुआ लाल मिल गया बहुत आनन्द से १०॥ बजे तक उन के सत्संग का लाभ उठाया। उन्होंने मुझे ओ३म् का जो अर्थ बतलाया उस समय तो मै हां हां करता सुनता गया, पर मेरे अचम्भे की हद न रही । जब शाम को गोपथ ब्राह्मण में वही अर्थ मुझे वहीं मिले, जहां मैंने यह पहिले कभी स्वप्न में भी न देखे हों, फिर शाम को एक ऐसा रईसजादा स्वयमेव मेरी ओर आकर्षित हो घर आकर मुझसे मेरी गीता का आंग्ल पद्यानुवाद का नमूना ले के गया । यह वही था जिसे आगे मैं अपनी गीतामें आकर्षित करवाने की बहुत कोशिश करता था, पर वह वैसे ही टाल देता था। तीसरी यह कि मैं किसी को अपनी जपजीके आंग्ल पद्यानुवाद की पाण्डुलिपि दे बैठा था, कई दिनसे उसका पता ही नहीं चलता था। कल वह भी बाग में दिखाई पडा, अपने साथी से मेरे विषयमें पूछ रहा था कि यह कौन है । चौथी बात यह कि सारे दिन भर में भगवान् का दर्शन कई बार हुआ, पर परसों जिस दिन वह मिले बहुत आनन्द दिन भर रहा, पर कल अपनी किसी अवहेलना से मेरा दिन वैसा सुन्दर न निकला। यह महात्मा बहुत उच्च कोटी के हैं, बडे पहुंचे हुए और अतीव विद्वान ओ३म् परक। कपडों से कोई नहीं पहिचानेगा। आखों से किसी को शक रह न सकेगा ।

(७) अब शेष मित्रोंके विषयमें लिखता हूं। मुझे कोई एक सप्ताह ज्वरसा रहा। एक दिन तंग आकर मैंने सन्त बूड-सिंघजी को बुला भेजा, ज्वर उसी दिन से उड गया। एक दिन सैरसे लौटने में रानीके पुतले के पास थोडी देर खडा रहा कि यहां से सन्तजी गुजरा करते है, शायद दर्शन हो जावें, कुछ मिनट पीछे सामने घडी देखी तो नौ बजे, झट ख्याल आया कि यह वक्त कहां, वह तो ११ बजे के लगभग

जाया करते हैं, तुरन्त मैं घर आ गया। शाम को अपने आप सन्तजी घर आ पहुंचे, कहने लगे कि दफ्तरसे लौटते जब रानी का पुतला पहुंचा तो किसी जबरदस्त ताकतने आगे घर की ओर जाने से पीछे की धक्का दिया कि इधर नहीं, इस तरफ जाओ और मैं अपने घर की जगह आपके घर आ गया। इस से पता चलता है कि तीव्र हार्दिक् भावना आकाशमें प्रभाव छोडती है, यदि जिसके सम्बन्धमें वह है वह अच्छा ग्राहक Receiver है तो घंटों पीछे भी वहां से गुजरता हुआ वह प्रभावित हो जायगा। जिसने वह भावना आकाशीय द्रव्य Ether पर परिणाम की वह अच्छा प्रेषक Transmitter कहाता है।

भगवान् की दया से आज कल की मित्र मण्डली के सदस्य प्रेषक और ग्राहक परस्पर सम्बन्धि कुछ न कुछ हैं ही। एक दिन गनपतरामजी बाग में आनन्द-समाधि में थे, मैं सैर को घर से निकला, मुझे डिंगा सिंध बिल्डिंग के पास वह आनन्द अनुभव हुआ, उन को बाग बैठ मेरे टूटे जूतों के चलने की आवाज सुनाई दी। यह है वास्तविक सम्बन्ध मैत्री का। यह संवेदना और सहानुभूति इकट्ठी का परिणाम है।

एक दिन सन्तजी मेरे पास आये, कोई डेढ घंटे पीछे मैंने कहा अब आप जाइए, क्योंकि घरवाले इन्तजारमें होंगे। उन्होंने कहा वह तो आज कल गये हुए हैं। मैंने कहा तब बैठें फिर वह बोले कि चिट्ठी आई थी आयंगे, पर आए नहीं, मैंने कहा तब आप जायं, कहीं घर पर आए न बैठे हों और हम यहां आप को पकड रख कर छोडें। फिर उन को भी ख्याल आया कि इन के मुख से जो निकला है, वह कहीं आये ही न बैठे, प्रतीक्षा कर रहे हों। वह चले गये तो आगे उनके घरवाले वास्तव में आए ही बैठे प्रतीक्षा में थे।

( ९ ) एक किशोरीलाल एक दिन बहुत चला गया कि एक गुस्सा मित्रसा मुझे बहुत तंग करने लगा हुआ है, आत्मघातक विचार भेजता है सारे कुटुंब को तंग करता है, बहुत हमारा नुकसान करता है, इत्यादि, मैंने उसे कहा कि वह है शून्य आप का कुछ बिगाड नहीं सकता, आप जब उससे डरें तो कल्पना करो कि रुलियाराम मेरी सहायता कर रहा है, पूरा जोर मेरे फायदेके लिये लगा रहा है। और मैंने कई बातें उस को नसीहत की बताई कि आज कल चित्तकी एकाग्रता न करो, अकेले न रहो, सैर परिवार या किसी मित्र के साथ करो, इत्यादि। तीसरे दिन बाग में मिला तो पूरे आनन्द में हो चुका था। बिल्कुल हालत बदल चुकी थी, इससे मैंने परिणाम निकाला कि हम मित्र परस्पर सभी अच्छे प्रेषक और अच्छे ग्राहक परस्पर की उन्नति के लिये हैं।

# अनात्मवाद और अहिंसा।

( लेखक- पं. वशिष्ठ )

जो जीव को शरीर के साथ उत्पन्न तथा शरीर की मृत्यु के साथ मृत मानते हैं, वे अनात्मवादी भी जीवन में सुख-शान्ति चाहते हैं। उनकी भी अभिलाषा यही रहती है कि वे दुःख-द्वन्द्वों से मुक्त रहें, कोई भी व्यक्ति, चाहे वह जड़वादी है या आत्मवादी, यह नहीं चाहता कि वह काम-क्रोधादि से व्यथित हो। प्रत्येक व्यक्ति इन विशेषणों को अपने लिए अभिशाप समझता है। कामी, क्रोधी, लोभी और अहंकारी होते हुए भी कोई व्यक्ति नही चाहता कि उसे प्रत्यक्ष वा परोक्ष में कामी, क्रोधी, लोभी या अहंकारी कहा जावे।

जब प्रत्येक मानव की यह नैसर्गिक अभिलाषा है कि वह इन मानसिक हिंसाओं की वेदनासे मुक्त रहे, तो उसके लिए यही सुपथ है कि वह उन कर्मों से भी बचे, जिनके करनेसे ये मानसिक हिंसाएं कुपित व उत्तेजित होकर व्यथा देती हैं। वे कर्म हैं– असत्य, स्तेय, आत्मक्षय, परिग्रह व पीडन। इन कर्मों को अपना कर कोई भी मनुष्य काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, अहंकार के प्रकोप व पीडा से नहीं बच सकता।

जो लोग अनात्म व अनीश्वरवादियों पर यह दोष लगाते हैं कि परलोक व ईश्वर के न माननेवाले अपने लिए कुकर्म की स्वच्छन्दता चाहते हैं, वे सचमुच अनात्म तथा अनीश्वरवादियोंके वैज्ञानिक व दार्शनिक सिद्धान्तोंसे अपरिचित हैं।

ईश्वरवादी हो या अनीश्वरवादी प्रत्येक मनुष्य काम,क्रोध, लोभ, मोह, मद, अहंकारादि के वशीभूत होकर ही कुकर्म करता है और आत्मश्लाघा ( अहंकार ) के कारण अपने कुकृत्यों को यथोचित प्रमाणित करने के लिए ईश्वरवाद या अनीश्वरवाद के सिद्धान्तों की युक्तियों को अपने कुकृत्यों के अनुकूल प्रमाणित किया करता है; किन्तु यह सब होता है काम, क्रोधादि रोगों से आक्रान्त होने के कारण।

ईश्वरवादी अपने कुकृत्यों को धर्मसंगत सिद्ध करने के लिए दुःख सुख, पाप पुण्य को शरीर का स्वाभाविक धर्म बताया करता है। वह जीव को अजर अमर बताकर जड नश्वर शरीरों के नाश को नगण्य कर्म सिद्ध करता है। पांचों ज्ञानेन्द्रियों तथा मन की चेष्टाओं को जड शरीर की स्वाभाविक प्रवृत्ति मानकर भोग विलास को शरीर की चेष्टा बताता है और प्रत्येक कुकर्म को शरीर-धर्म बताकर आत्मा को शुभ्र, पवित्र, निर्लेप बताया करता है। इसी प्रकार अनीश्वर व अनात्म वादी को जब काम, क्रोध, लोभादि के वशीभूत होकर मनमाना कुकर्म करना अभीष्ट होता है: तो वह अपने कुकर्म को न्यायसंगत प्रमाणित करने के लिए किसी भावी दण्ड-विधान वा फल-प्राप्ति की असम्भावना बताते हुए इस जीवन में ही मनमानी करने को जीवन का लक्ष्य बताने लगता है। किन्तु एक बात है जो प्रत्येक ईश्वरवादी व अनीश्वरवादी को मान्य है और वह है **" काम, क्रोधादि की व्यथा तथा इस व्यथा से छुटकारा पाने की अभिलाषा। "**

अपने जीवन में पाशविक बल की भित्तिपर सर्वश्रेष्ठ बन जाने पर भी कोई व्यक्ति सुखी नहीं हो सकता, यदि उसके जीवन में काम, क्रोधादि की हिंसाएं व्यथा दे रही हैं। इन रोगों से मुक्त हुए बिना सर्वबलिष्ठ व्यक्ति भी दुःखी, व्यथित ही रहेगा। काम, क्रोधादि के वशीभूत होकर मन पांचों ज्ञानेन्द्रियों से मनमानी करावेगा। वह मनमाना अपरिमित रूप में भोजन खाना चाहेगा, किन्तु खा न सकेगा, यदि खा लिया तो पचा न सकेगा और शारीरिक रोग की व्यथा का शिकार बन जावेगा। अपरिमित रूप में कामवासना की पूर्ति करेगा और अनेक रोगों का आखेट बन जावेगा। इसी प्रकार उसे हरजगह बाधा होगी और अपरिमित त्रास। संसार का कोई प्राणी यदि उसका अहित न भी कर सका, तो भी उसका शरीर ही उसका शत्रु बन कर दुःखरूप बाधा देगा। काम, क्रोधादि ही उस सर्वश्रेष्ठ, सर्वजित को जीवन भर व्यथा देते रहेंगे।

ईश्वरवादी हो या अनीश्वरवादी, सब के लिए काम,

क्रोधादि से छुटकारा पाये बिना जीवन दुःख और चिन्ता का घर ही बना रहेगा । अतः काम, क्रोधादि हिंसाओं से छुटकारा पाये बिना किसी मनुष्य को सुख शान्ति नहीं मिल सकती । ईश्वरवादी हो या अनीश्वरवादी कोई भी मानव पृथिवी पर के मानवों से बलवान् शक्तिसम्पन्न होकर भी सुख चैन नहीं पा सकता । तब उस मनुष्य को सुख शान्ति कहां, जिसको अपने समान मानवों से युद्ध व प्रति-द्वन्द्वता का खतरा है, जो उसके चारों ओर देश देशान्तरोंमें बस रहे हैं । अतः ईश्वर, अनीश्वर, आत्म तथा अनात्मवादी, आवागमन व परलोक में विश्वास रखनेवाले तथा अविश्वासी सबके लिए काम, क्रोधादि रोग--हिंसाओं से छुटकारा पाये बिना सुख शान्ति नहीं । और इसके लिए ज्ञानार्जनके साथ साथ असत्य, परिग्रह, स्तेय, आत्मक्षय व परपीडन ( हिंसा ) त्याग की जरूरत है ।

कहा जा सकता है कि काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, अहंकारादि शरीर के आवेश हैं । इन से दुःख नहीं होता और यदि होता भी है तो उस से कोई हानि नहीं होती । यदि कोई हानि होती भी है तो हम उस हानिको सहन करने के लिए विवश हैं, क्योंकि हम काम क्रोधादिको मिटा नहीं सकते, वे अवश्यंभावी है ।

काम क्रोधादि शरीर के आवेश नहीं हैं । शरीर एक यन्त्र है, उस में एक चेतनाशक्ति है, जो सुखदुःख, हर्ष-विषाद मानती है । शरीर को सौन्दर्य व कुरूपता, सुगन्ध व दुर्गंध, मधुर व कर्कश, स्वादु व अस्वादु, कोमल व कठोरसे कोई राग द्वेष नहीं । फोटोका केमरा सुन्दर असुन्दर सबका प्रतिबिम्ब ग्रहण करता है, उसी तरह शरीरके नेत्र भी । किन्तु सुन्दर में रुचि और असुन्दर में अरुचि करना आंख या शरीर का काम नहीं है । आंख के लिए कोई भी रूप कुरूप वा सुन्दर नहीं । उसी प्रकार कानों के लिए कोई शब्द मधुर वा कर्कश नहीं । । यह मन है जो प्रियता व अप्रियता की रचना करता है और इस मन को भी अनेक कृत्रिम इच्छाएं सिखाई जाती हैं । कहीं सुनहरे केश व नीले नेत्रों को सुन्दर मान कर प्यार करना सिखाया जाता है, तो कहीं काले केश व काले नेत्रों को । केशभूषा, खान-पान, अलंकार शृंगारादि में भी अनेक प्रकार से विचित्र रुचियें पैदा की जाती हैं । रही दुःख की बात, इसके लिए व्यक्तित्व ही प्रमाण है । प्रत्येक व्यक्ति जो / काम क्रोधादि से आक्रांत होता है, मन शरीर दोनों से दुःख पाता है । काम, क्रोध, लोभादि के कारण ही शोक, चिन्ता व भय होते है । और काम, क्रोध, लोभ, शोक, चिन्ता व भय से निम्न शारीरिक रोग होते है–

' ज्वर, क्षय, कास, अर्श, अतिसार, कोढ, समपित्त, शोष, उन्माद, हृदयरोग, अपस्मार, मूर्छा, मस्तिष्कके रोग, तृषा, शूल, उदावर्त, नेत्ररोग, प्रमेह, नपुंसकता, सन्यास तथा मृत्यु ! ' इनमें कोई भी रोग ऐसा नहीं है जो रोगी को व्यथा न देता हो, तथा उस की भयानक हानि न करता हो ।

हम काम, क्रोध, लोभ, मोहादि को घटा भी सकते हैं और बढा भी । जिस चीज को हम घटा और बढा सकते हैं, उस को निर्मूल भी कर सकते हैं । यदि यह मान भी लिया जावे कि हम उसे निर्मूल नहीं कर सकते, तो भी हम उसे न्यूनतम तो कर ही सकते हैं । इन आवेशों को न्यूनतम करना ही दुःख का अत्यंताभाव है ।

संक्षेप में काम लोभादि तृष्णा के अन्दर आ जाते हैं । तृष्णा अर्थात् इच्छा के ही भिन्न भिन्न रूपों का नाम काम, लोभ, मोह, मद, अहंकार है । इस तृष्णा से मुक्त होने के लिए ही जीवन है । यह तृष्णा ही हिंसा है, जो विकार उत्पन्न करती है और यही रोग है, जिस के अनेक रूप हैं ।

## सौंदर्य ।

**सौन्दर्य अर्थात् रूप क्या है** ? यदि हम इस पर विचार करें तो हमें पता लगेगा कि हम एक बडे धोखे में पडे हुए हैं । जड पदार्थों में हम जिसे रूप मानते हैं, वह केवल कलाकार की कला है । और यदि कलाकार से पूछा जावे तो उसकी कला एक भावना है । उस भावनाको जड वस्तु पर अंकित करने में भी कोई सौंदर्य नहीं है । सौन्दर्य तो देखनेवाले की भावुकता में है । कलाकार जब कोई मूर्ति, चित्र व वस्तु बनाता है, तो वह गहरे हल्के बिंदुओं को अंकित करता है या ऊंचा नीचा खोदता है । गहरे हल्के बिंदु व ऊंचाई निचाई स्वयं सौंदर्य हीन भूमिका हैं । इन गहरे हल्के बिन्दुओं तथा ऊंची नीची खुदाई का विशिष्ट

सहयोग ही सौंदर्य की रचना करता है। यही कला है। कलाकार पर मुग्ध न होकर हम कलायुक्त वस्तु पर मोहित हो जाते हैं। गुणी सदा अदृश्य रहता है, केवल गुण ही हमें दिखाई दिया करते हैं। हम गुणों को देख कर पसन्द करके अदृश्य गुणी पर मोहित हो जाते है। जिस गुण पर हम मोहित होते हैं वह नैमित्तिक है। कलाकार की कृति से पहले वस्तु में नहीं था। जो पहले नहीं था फिर रहेगा भी नहीं। हम वस्तु पर मोहित होते हैं, जिस में वह कला आ गई है, जो भूतकाल में उस वस्तु में भी नहीं और भविष्य में रहेगी नहीं।

यही नियम विश्व की रचनाओं में है। संसार की समस्त वस्तुओं का कला-सौंदर्य न था और न रहेगा। इस से हम इस निश्चय पर पहुंचते हैं कि सौंदर्य कोई स्थिति नहीं है, जो है वह एक कल्पित भावना है।

चेतन प्राणियों के शरीर में हम जिसे सौन्दर्य मानते है वह भी एक अद्भुत कला है, जो जड शरीर की नहीं बल्कि चेतन प्राणी की रचना है। चेतन प्राणी के शरीर में संचय, विकास, स्नेह व शांति ही सौंदर्य के रचयिता है। एक बालक बालिका के रंग, आकृति व स्वास्थ्य के सौदर्यका आधार है उसके स्वभाव की साधुता, सौम्यता, धैर्य, शांति, स्नेह, लज्जा व भोलापन। चेतना की ये कलाएं ही दर्शक को मुग्ध करती हैं क्योंकि रंग और आकृतिमें आकर्षणकी रचना चेतना की साधुता, शील, सौम्यता, धैर्य व स्नेह से होती है। जड शरीर में संचय व विकास भी इन्हींके द्वारा होते हैं। संचय और विकास का ही दूसरा नाम यौवन है। अतः जिस बालक बालिका की माता में स्नेह, शील, साधुता हैं और गर्भावस्था से ही जिसके स्वभाव में स्नेह, शील, साधुता आदि रहीं हैं, वह बालक बालिका ही सौंदर्य प्राप्त करता है। इसके विपरीत क्रोध, द्वेष, निर्लज्जता, अश्लील, क्रूरता आदि स्वभाववाली माता की सन्तान व क्रूर प्रकृति के बालक बालिका कुरूप होते हैं। इन गुणोंके आधार पर ही यौवन प्राप्त होनेपर युवक युवतियो का सौन्दर्य गुणों के अनुपातसे आकर्षक बनता है। जिसे हम सौन्दर्य समझते हैं वह शरीर का सौन्दर्य नहीं है अपितु उस शरीर की चेतनाशक्ति का स्नेह, शील है जो नेत्रों, मुख व अंग अंग से झांक रहा है। निर्लज, कामातुर, क्रोधोन्मत्त भूमिका में पडी युवती देखने में कितनी भयानक व अप्रिय प्रतीत होती है, यह सब जानते है।

जो सुन्दर युवतियां निर्लज्ज, क्रूर, दुष्टा तथा दुश्चरित्रा होती हैं वे स्वभावतः ऐसी नहीं होती। उनकी ये कुटेव संगति-दोष के कारण होती है। और जब उन में ये कुटेव आने लगती है तभी उनका सौन्दर्य क्षीण होने लगता है। स्वास्थ्य व यौवन भी नष्ट होने लगता है। वे तीस वर्ष की आयुतक पहुंचते पहुंचते कुरूपा, रोगी व वृद्धा हो जाती हैं। अतः सौन्दर्य-चेतना की कला है जो शील, स्नेह, लज्जा और भोलेपन की विभूति में नश्वर काया से झाका करती है। देश का जल वायु, अन्नादि तो शरीर की सौन्दर्यरचना में गौण साधन है, मुख्य साधन तो चेतना की सुशील कला ही है।

चेतना की सुशील कला पर न रीझ कर हम जड शरीर पर मुग्ध हो जाते हैं। सौंदर्य देखने की चीज है, छूने की नहीं। पुरुष स्त्रीके सौंदर्य पर मुग्ध होकर उस के स्पर्श-सुख की अभिलाषा करता है! उस स्पर्श सुख की अभिलाषा करता है जो कुरूपा और सुन्दरीमें समान है। जहां तक सौन्दर्य का सम्बन्ध है (जो देखने की चीज है) वहां तक वह सब को प्राप्त है। सुन्दर शरीरों को सब नरनारी देख सकते है किन्तु उनमें स्पर्श-सुखकी अभिलाषा कामुकता है, क्योंकि नेत्र का विषय तो मिल ही रहा है। सौदर्य में कोमलता की भावना भ्रांति है। '**रंग अनेक मजा एक**' को लोकोक्ति को हृदयंगम करने पर यह दुविधा सरल हो जाती है।

स्पर्श-सुख की जिस अभिलाषा को काम अर्थात् रति-कर्म कहा जाता है, वह शरीर का धर्म नहीं है। यौवनावस्था में भी शरीर को कामवासना नहीं होती, यद्यपि काम को उत्तेजना देनेवाले सब द्रव्य यौवन में पूर्ण और समर्थ होते है। कामवासना की प्रतीति मन के कामुक चिन्तन उत्तेजक खानपान, स्पर्श-सुखमें मनकी नियुक्ति तथा शरीर के कुछ खास अंगों की कृत्रिम उत्तेजक उष्णता के कारण होती है। अतः कामुकता का न्यूनाधिक्य मन के कामुक चिन्तन, स्पर्श-सुख में मन की नियुक्ति, उत्तेजक खानपान तथा तज्जनित कृत्रिम उत्तेजन की उष्णता के शरीरपर दबाव के अनुपात पर निर्भर है।

रक्त में कामविकार हो जाने पर त्वचा में खाज का रोग

होकर स्पर्शसुख की रचना करता है, वैसा ही प्रभाव उत्तेजक भोजन व कृत्रिम उत्तेजनापूर्ण उष्णता का होता है, जो एक प्रकार से रतिकर्म माध्यम स्त्री पुरुष के पृथक् रहते हुए भी मन को उपस्थित कर कामुकता में निमग्न कर देता है।

सौंदर्य और स्पर्श-सुख (रतिकर्म) पर हमने इतना प्रकाश इसलिये पुनः डाला है कि जनता कामवासना को एक उचित सीमा के अन्दर घातक न समझ कर सुखद व पोषक समझती है, किन्तु जीवन में एक बार वीर्यपात करनेवाला अपने समान स्वस्थ व सशक्त शरीरवाले उस व्यक्ति से घाटे में ही रहता है जो एक बार भी वीर्यपात नहीं करता और नाही मैथुनादि की अभिलाषा करता है। वीर्यपात शरीर को क्षीण ही करता है, चाहे वह जीवन में एक बार ही क्यों न हो। रही मैथुन सुख की बात, वह कफ पित्त के मिश्रण से वैसी ही रज-तम-गुण-मिश्रित उत्तेजना की संधान क्रिया है जैसी कफ पित्त से खाज में होती है। शराबी को भी तो मद्यपान से उल्लास व पोषण-सा प्रतीत होता है। शराब के अधिक सेवन से उस का शीघ्र क्षय होने के कारण अधिक मद्य सेवन को घातक माना जाता है, किन्तु उस की अल्प मात्रा के सेवन से क्षीणता अल्प व शनैः शनैः होने के कारण उस के अल्प सेवन को पोषक समझा जाता है। यही विश्वास रतिकर्म के लिए है।

इसी प्रकार क्रोध, लोभ, मोह, मद, अहंकार की पूर्ति में जो सुख व प्रसन्नता प्रतीतसी होती है, वह सुख व प्रसन्नता नहीं है; बल्के खाज में खुजलाहट करने के सुख जैसी शराबके नशे जैसी भ्रान्त सुख की प्रतीति है। (इन विषयों पर हम स्वतन्त्र पुस्तक लिखनेका विचार रखते हैं।)

जो कार्य, खानपान, जीवनचर्या काम, क्रोधादि रोगोंको कुपित अथवा उत्तेजित करे, इनको बढाये वे सब कुपथ्य हैं, त्याज्य हैं। यही कसौटी सब को मान्य होनी चाहिये। हत्या, मांस-भक्षण, भक्ष्याभक्ष्य, झूट, छल, प्रपंच, चोरी, लूट कोई भी कार्य वर्जित नहीं है यदि कर्ता के आत्मा, मन, शरीर को प्रत्यक्ष वा परोक्ष, निकट वा दूर, तत्क्षण वा सुदूर भविष्य में कोई क्षति नहीं पहुंचती, कर्म करने-वाले के काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, अहंकार में कोप, उत्तेजना की वृद्धि नहीं होती। हम किसी भी कर्म को करें किन्तु सतर्क रहें कि हमारा कोई कर्म काम क्रोधादि को बढावे नहीं, बल्के घटावे। यही कसौटी है जिस के आधार पर हम अपने अन्तस्तल की साक्षी में '**क्या करें**' और '**क्या न करें**' का निर्णय कर सकते हैं। किन्तु जब सात्विक आहार, प्रेम, परोपकार व सत्याचरण करने पर भी हमारे अन्तस्तल में काम, क्रोधादि न्यून न होकर कुपित, उत्तेजित होते जावें, तब हमें समझना चाहिये कि हमारे अन्तस्तल में भावनाओं का घोर कुपथ्य हो रहा है। जहां विकार शमन की औषधि पाकर भी कुपित हो रहे हैं वहां कुपित करनेवाले पदार्थों को पाकर विकार कितने भयंकर हो जावेंगे, यह विचारने योग्य है। जब मूंग का यूष पीकर संयम में व्याघात पड रहा है, तब उत्तेजक, मादक मांसादि के सेवन से जितेन्द्रियता की कैसे सम्भावना हो सकती है? अतः जब जब हम इस निर्णय में किं कर्तव्यविमूढ हों तब तब हमें आध्यात्मिक चिकित्सकों के मर्यादित पथ्य का सेवन करना भी अभीष्ट है।

इस के उपरान्त काम, क्रोधादि से सर्वथा मुक्त हो जाने पर हम स्वच्छन्द हैं– स्वतन्त्र हैं सब कुछ करने को। सब कुछ हमारे लिए पथ्य है। किन्तु काम, क्रोधादि तृष्णाओं से मुक्त होकर क्या हम से कोई ऐसा कर्म हो सकेगा जिससे किसी का भी अनहित हो, जिस से किसी को भी व्यथा हो? और यदि हो सकेगा तो क्यों? क्या हम ऐसा आहार विहार स्वीकार कर सकेंगे जो हमारे अच्युत मनको चलायमान न कर सकने पर भी हमारे शरीर में कृत्रिम, उत्तेजनापूर्ण सन्धानाक्रिया को उत्पन्न करके गडबडी कर दे? नहीं, हम ऐसा नहीं कर सकेंगे। कामना-मुक्त होकर हम किसी रोगीकी चिकित्साही करेंगे, किसी दुःखीका दुःख ही दूर करेंगे। इससे भिन्न कुछ हमसे हो ही न सकेगा।

## कर्म की हिंसा।

प्रत्येक प्राणी शान्तिमय उपायों का स्वागत करता है। हिंसक प्राणी मांसल जीव का मांस चाहता है। उसे अपने शिकार से वैर नहीं, किन्तु मृत्यु व कष्ट के भय से मांसल प्राणी अपना मांस देना नहीं चाहता। अतः अपने

इष्ट की प्राप्ति में व्याघात होने पर हिंसक प्राणी मांसल जीव पर आक्रमण कर देता है। आत्मरक्षा के लिए मांसल प्राणी क्रुद्ध होकर हिंसक से युद्ध कर बैठता है। आरम्भ में दोनों क्रोध से मुक्त थे। इष्टप्राप्ति में व्याघात होने तथा अनिष्टके उपस्थित हो जाने पर दोनोंको क्रोध ने आक्रमण के लिए कटिबद्ध कर दिया। यही क्रम डाकू, चोर व दूसरे मनुष्यों में पाया जाता है। एक देश दूसरे देश को छीनने का इष्ट बनाये बैठा है, किन्तु व्याघात होने से उसे क्रोध आता है और हिंसामय संघर्ष उपस्थित हो जाता है। विजित और विजेता, पीडित और अत्याचारी सब में हम यही नियम पाते हैं। प्रत्येक शान्तिमय उपायों का स्वागत करता है, क्योंकि शान्तिमय उपाय सरल होते हैं, उनमें कम झंझट और न्यूनतम हानि होती है।

इससे हम इस निर्णय पर पहुंचे कि अहिंसा एक नैसर्गिक नियम है और हिंसा नैमित्तिक। अतः सुख शान्ति की अभिलाषा रखनेवाले प्राणियों को सदैव सचेष्ट रहना चाहिये कि नैसर्गिक नियम में कोई निमित्त न आ जावे और यदि आ जावे तो जल्दी से जल्दी नैसर्गिक भूमिका में चले जाना चाहिये।

कर्म एक व्यापारिक सौदा है।' इस में हमने अपना लाभ देखना है। लाभ क्षणिक होता है और स्थायी भी। अदूरदर्शी क्षणिक लाभ को देखते हैं, दूरदर्शी स्थायी लाभ को। क्षणिक लाभ शीघ्र और सहज साध्य होता है, स्थायी लाभ विलम्ब और कष्ट-साध्य। स्थायी लाभ ही वास्तविक लाभ है और इसी लाभ के लिए दूरदर्शिता वांछनीय है। इसलिए हमारा प्रत्येक कर्म ऐसा हो जिस से लाभ उपलब्ध हो। प्रस्तुत विषय अहिंसा है। इसलिए हमें देखना यह है कि मन से सर्वथा अक्रोधी रहते हुए क्या कर्म से भी अहिंसक रहे ? हम यहां एक कसौटी प्रस्तुत करते हैं, वह है 'स्थायी लाभ'। जिस नीति से स्थायी लाभ हो वही वांछनीय होनी चाहिये। कर्म की हिंसा-अहिंसा के झंझट में हमें नहीं पडना चाहिये।

इस कसौटी पर हमें परखना होगा 'क्या कर्म की **हिंसा से स्थायी लाभ होगा ?**' मन से अहिंसक रहते हुए ही कर्म-हिंसाकी परिभाषा बन सकती है, क्योंकि मन से हिंसक होना कुपथ्य और रोग सिद्ध हो चुका है और मन से किसी का अहित चिन्तन हर प्रकार से अपने लिए ही बुरा है। मन से अहिंसक रहकर कर्म की हिंसा का अर्थ है 'दूसरे को कष्ट देना'। दूसरे को कष्ट देने के निम्न उद्देश्य हो सकते हैं (१) निज स्वार्थ की सिद्धि, (२) जिस को कष्ट दिया जाय, उसका कोई हित जिसे हम उस को कष्ट पहुंचा कर पूरा करना चाहते हैं। (३) लोक-कल्याण।

निज स्वार्थ सिद्धि के निम्न उद्देश्य हो सकते हैं-

(क) आत्म-रक्षा, स्वत्व-रक्षा। मानसिक, शारीरिक स्वाधीनता रक्षण।

(ख) अपना स्वत्व व स्वाधीनता प्राप्त करना जो दूसरे ने अपहरण कर लिया है।

(ग) दूसरे का स्वत्व व स्वाधीनता अपहरण करना।

दूसरे को कष्ट पहुंचानेवाले कर्मों को हम निम्न श्रेणियों में बाँट सकते हैं-

(१) (क) आत्म-रक्षा, मानसिक, शारीरिक स्वाधीनता रक्षण।

(ख) अपना स्वत्व व स्वाधीनता प्राप्त करना, जो दूसरे ने अपहरण कर लिया है।

(ग) किसीका स्वत्व स्वाधीनता अपहरण करना।

(२) (क) कडवी, विषाक्त औषधियों, बलात् पथ्य अथवा शल्य कर्म द्वारा किसी को रोग मुक्त करना।

(ख) भर्त्सना, ताडना, धिक्कार तथा कटु वाक्यों के प्रयोग से किसी को कुपथ से रोकना।

(ग) दण्ड, कारावास आदि पीडा से भयभीत करके किसी को कुकर्म से रोकना।

(३) भविष्य में वैसे कुकर्मों से रोकने तथा समाज को एक त्रासजनक आतंक से निर्भीक बनानेके लिए लोककल्याण हित अपराधी को प्राण दण्ड देना।

बाह्य रूप से कर्म की ये हिंसाएं तुरन्त सफल मनोरथ करनेवाली प्रतीत होने के कारण हमें ग्राह्य होती हैं। इसीलिए पशुबल के विश्वास के अभिमान में, जो शारीरिक और सामूहिक बल का प्रतिनिधि है, सफलताकी पूर्ण

आस्था रखते हुए हम इन कर्म-हिंसाओं को उतावलेपन से अपना लेते हैं, किंतु जब इन हिंसाओं के घातक विष-प्रभाव को अनुभव करते हैं तो हमें मानना पडता है कि जो हिंसा-सिद्धांत हमने अपनी शक्ति की पूर्णता के स्तम्भ पर ग्रहण किया था, वह हमारी शक्ति न्यूनता के दीवाले के कारण हमारी दुर्बलता की एक अशान्त छटपटाहट था, क्योंकि कष्ट पानेवाला कष्ट देनेवाले के प्रति कभी सद् भावना नहीं रख सकता, जब तक कि वह पूर्ण ज्ञानी न हो और ऐसा ज्ञानी पुरुष करोड में एक भी दुर्लभ है।

हम कह आये हैं कि जब एक वस्तु में कोई दूसरी वस्तु एक वा अनेक स्थानों में आकर उसे विभाजित करती है तो उस क्रिया को हनन करना, काटना, टुकडे करना, हिंसा कहा जाता है। काम, क्रोध, लोभादि इसी प्रकार के हिंसक हैं। जब इन विकारों के वशीभूत मन की अभिलाषाओं की पूर्ति की समस्या आती है, तो मनुष्य इनकी पूर्ति के लिए पांच प्रकार के कर्मों में से किसी एक वा अधिक को ग्रहण करता है। वे कर्म हैं, असत्य, आत्मक्षय, परिग्रह, स्तेय व हिंसा।

## असत्य।

"सत्य" अस्ति से बना है जिस का अर्थ है अस्तित्व ( To be, existence ) जो वस्तु वा भाव जिस रूपमें है उसको वैसा ही मानना स्वाभाविकता है, सत्य है। जिसको जैसा जानते हो उसको वैसा प्रकट करना सत्य भाषण है, तथा जो कार्य जैसे होना चाहिये वैसे करना सत्य कर्म है। काले सांप के दांत में विष होता है, उसके काटने से मनुष्य की मृत्यु हो जाती है, ऐसा मानना सत्य है। काले सांप के काटने से मनुष्य बलवान् व दीर्घजीवी हो जाता है, ऐसा मानना असत्य है तथा ऐसा कहना असत्य भाषण है और उस विषधर से कटवाना असत्य कर्म है। असत्य को सत्य या सत्य को असत्य मानकर अपने मिथ्या विश्वास के आधार पर ज्यों का त्यों कह देना सत्य भाषण जरूर है, क्योंकि ऐसा कहने में मन में कोई छल वा कपट का विकार नहीं है, लेकिन यह सत्य भाषण आंशिक सत्य है, क्योंकि इस मिथ्या विश्वासके कथनसे हानि होना अनिवार्य है। हमारे कथन पर विश्वास करके काले सांप के दंश को जो चिर जीवन का साधन मानेंगे, वे उस उपचार से मृत्यु को प्राप्त होंगे, या किसी लाभदायक उपयोग से वंचित हो जावेंगे और यही दशा हमारी भी होगी। मिथ्या विश्वास के आधार पर हम जो प्रयत्न करेंगे वह असफल होगा, जिससे हमारे मन को कष्ट होगा। अपने मिथ्या कथन को यथार्थ सिद्ध करने के लिए अनेक सम्बद्ध झूंठ बोलने पडेंगे। इस प्रकार प्रतिवाद में द्रुत गति से तत्सम्बन्धी अनेक मिथ्या भाषणों की रचना करनी पडेगी, जिससे मन और मस्तिष्क क्षुब्ध होकर अशान्त हो जावेंगे। मिथ्या कर्म से मिथ्या ही फल मिलेगा। इसलिए असत्य मानना, असत्य भाषण, असत्य कर्म अपने व दूसरोंके लिए हानिकारक, क्षोभजनक, दुःखदाई हिंसक है। असत्य हिंसा है, दुःख है, अतः हेय है।

## आत्मक्षय।

बल और स्वास्थ्य हमारे शरीर का जीवन है। शान्ति, धैर्य और अविकार हमारे मन आत्मा का। ज्ञान व कर्मेन्द्रियों के अति आचरण से, वीर्यनाश से हमारे शरीर के बल का क्षय होता है। अशान्ति व चंचलता से मन और आत्मा के बल का, विकृत भोजन व चर्याओं से शरीर दुर्बल होता है तथा हीन विचारों से मन और आत्मा। यही आत्मक्षय है, क्योंकि पार्थिव पदार्थोंमें हम को अपना शरीर ही सबसे अधिक प्रिय है। इस शरीर के क्षय से हमें अत्यन्त व्यथा होती है। हमारा शरीर, मन व आत्मा इन अनेक विकारों से अस्त व्यस्त, छिन्न भिन्न हो जाते हैं। अतः आत्मक्षय दुःख है, हिंसा है।

## परिग्रह।

कामना, लोभ, मोह रोगों के वशीभूत होकर प्रिय-वस्तुओं को अपरिमित मात्रामें चारों ओर से समेटना पडता है। इस समेटने में दूसरोंको कष्ट होता है, क्योंकि संसार की कोई वस्तु व्यर्थ नहीं बनी है, वह किसी न किसी प्राणी के जीवन और सुख का आधार बन रही है और हमारे ऐसा करने ( परिग्रह, चारों ओर से समेटने ) से उन प्राणियों का नैसर्गिक विकास अवरुद्ध हो जाता है। वे दुःखी होकर आक्रमण करते हैं और मारकाट की हिंसा दोनों ओर से उपस्थित हो जाती है। आधुनिक पूंजीवाद इस परिग्रह का एक रूपमात्र है। इसलिए परिग्रह उभय-पक्ष, सारे चेतन जगत् के क्षोभ, दुःख व अशान्ति का मूल कारण है। स्वतः दुःख है, हिंसा है। ( क्रमशः )

# वैदिक धर्म।

## वर्ष २४ सन १९४३ की विषयसूची।

# दैवत-संहिता ।

## प्रथम भाग तैयार है। द्वितीय भाग छप रहा है।

आज वेद की जो संहिताएँ उपलब्ध हैं, उन में प्रत्येक देवता के मन्त्र इधरउधर बिखरे हुए पाये जाते हैं । एक ही जगह उन मंत्रों को इकट्ठा करके यह **दैवत-संहिता** बनवायी गयी है । प्रथम भाग में निम्न लिखित ४ देवताओंके मंत्र हैं-

| देवता | मंत्रसंख्या | पृष्ठसंख्या | मूल्य | डाकव्यय. | देवता | मंत्रसंख्या | पृष्ठसंख्या | मूल्य | डाकव्यय |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ **अग्निदेवता** | २४८३ | ३४६ | ३) रु. | ॥।) | ३ **सोमदेवता** | १२६१ | १५० | १) रु. | ॥) |
| २ **इंद्रदेवता** | ३३६३ | ३७६ | ३) रु. | ॥।) | ४ **मरुद्देवता** | ४६४ | ७२ | १) रु. | ।) |

इस प्रथम भाग का मू. ५) रु. और डा. व्य. १॥) है ।

इस में प्रत्येक देवता के मूल मन्त्र, पुनरुक्त मंत्रसूची, उपमासूची, विशेषणसूची तथा अकारानुक्रम से मंत्रोंकी अनुक्रमणिका का समावेश तो है, परंतु कभी कभी उत्तरपदसूची या निपातदेवतासूची इस भाँति अन्य भी सूचीयाँ दी गयी हैं । इन सभी सूचीयों से स्वाध्यायशील पाठकों की बडी भारी सुविधा होगी ।

संपूर्ण दैवतसंहिताके इसी भाँति तीन विभाग होनेवाले हैं और प्रत्येक विभाग का मूल्य ५) रु. तथा डा. व्य. १॥) है । पाठक ऐसे दुर्लभ ग्रन्थ का संग्रह अवश्य करें । ऐसे ग्रन्थ बारबार मुद्रित करना संभव नहीं और इतने सस्ते मूल्य में भी ये ग्रन्थ देना असंभव ही है ।

# वेदकी संहिताएं ।

वेद की चार संहिताओंका मूल्य यह है-

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| १ **ऋग्वेद** (द्वितीय संस्करण) | ५) | डा० व्य० १।) | ३ **सामवेद** | ३) | डा० व्य० ।॥) |
| २ **यजुर्वेद** | २) | ,, ,, ॥) | ४ **अथर्ववेद** ( द्वितीय संस्करण) | ५) | ,, ,, १) |

इन चारों संहिताओंका मूल्य १५) रु और डा. व्य. ३) है अर्थात् कुल मूल्य १८) रु. है । परन्तु पेशगी म० आ० से सहूलियतका मू० १०) रु० है, तथा डा० व्यय ३) रु० है । इसलिए डाकसे मंगानेवाले १३) तेरह रु० पेशगी भेजें ।

यजुर्वेद की निम्नलिखित चारों संहिताओं का मूल्य यह है- ।

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| १ **काण्व संहिता** (तैयार है) | ३) | डा० व्य० ।॥) | ३ **काठक संहिता** (तैयार है) | ५) | डा० व्य० १) |
| २ **तैत्तिरीय संहिता** | ५) | ,, ,, १) | ४ **मैत्रायणी संहिता** ,, | ५) | ,, ,, १) |

वेदकी इन चारों संहिताओं का मूल्य १८) है, डा. व्य. ३॥।) है अर्थात् २१॥।) डा. व्य. समेत है । परंतु जो ग्राहक पेशगी मूल्य भेजकर ग्राहक बनेंगे, उनको ये चारों संहिताएं १८) रु० में दी जायंगीं । डाकव्यय माफ होगा ।

- मंत्री, स्वाध्याय-मण्डल, औंध, (जि० सातारा)

Regd. No. B. 1463



मुद्रक और प्रकाशक- व० श्री० सातवळेकर, भारत-मुद्रणालय, औन्ध

वर्ष २४ ]                                    [ 'देवकामा' विशेषांक

ॐ

# वैदिक धर्म

[ मासिक पत्र । ]

[ सत्यका ग्रहण और असत्यका त्याग करनेके लिये हरएक को सदा उद्यत रहना चाहिये । ]

## क्या विवाह-संस्कारमें नियोगकी प्रतिज्ञा करना योग्य है ?

[ सबको विचार करनेयोग्य समस्या । ]

संपादक
पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर,
स्वाध्याय-मण्डल, औंध ( जि० सातारा )

मार्गशीर्ष विक्रमीय संवत् २०००

मूल्य चार आने

# एक विचार करनेयोग्य प्रश्न।

आपके घरमें तथा आपके इष्टमित्रोंके घरोंमें विवाह जैसे मंगलकार्य होनेकी संभावना रहतीही है, इसलिये आपको इस बातका अवश्य विचार करना चाहिये कि '**संस्कार-विधि**'में क्या लिखा है और पंडित क्या करते है ?

अजमेर वैदिक यंत्रालयमे छपी '**संस्कार-विधि**' में विवाह-प्रकरणमे विवाह-मण्डपमे वधूवरका प्रवेश होतेही जो चार मंत्र 'वर' के बोलनेके लिये लिखे है ( पृ १३७-१३८ देखो ) इनमेंसे तीसरे मंत्रके अर्थमें यह वाक्य है-

"हे वरानने ! तू ( देवृकामा ) देवरकी कामना करती हुई अर्थात् **नियोगकी भी इच्छा करनेहारी** हो ।"

पाठको ! यहां देखनेकी और विचार करनेकी बात यह है कि '**वर**' ने वधूका अभी हाथही पकडा है, अभी विवाह-संस्कार शुरुही हुआ है । वधूके साथ वरका परिचय भी नहीं हुआ। ऐसे अवसरपर '**वर**' का अपनी **नववधूको '** **नियोगकी इच्छा करनेहारी हो** **'** ऐसा कहना उचित नहीं दीखता। **मनुस्मृतिमें** '**विवाह-विधिमें नियोगविषयक वाक्य बोलनेका निषेध किया है** । ( देखो- "**नोद्वाहिकेषु मंत्रेषु नियोगः कीर्त्यते क्वचित्** ।" मनुस्मृति ९।६५ ) हमारी मनोभावनाको भी यह अनुचित दीखता है ।

इसलिये इसका आप भी अधिक विचार कीजिये । क्या आपके पुत्र या पुत्रीके विवाहके समय '**वर**' ने नववधूके उद्देश्यसे नियोगपरक वाक्य उच्चारण किये, तो आपको अच्छा लगेगा ?

आपकी धर्मपत्नीको यह सब लेख सुनाइये और उनकी संमति पूछिये कि वह अपनी पुत्रीके विवाहके समय नियोगकी प्रतिज्ञा करनेके लिये अपनी संमति दे सकती है ?

आपके प्रौढ पुत्र या पुत्रियां होंगीं, तो उनकोभी यह सब लेख समझाकर उनकी संमति लीजिये । इसी तरह आपके परिवारमें जो स्त्री-पुरुष इस विषयमें अपनी संमति प्रकट कर सकते है, उनकी संमति भी लीजिये ।

इसके पश्चात् आपके इष्टमित्रोंसे इस विषयमें कहिये और उनकी संमति लीजिये । आपके इष्टमित्रोंमें जो शास्त्री, पण्डित अथवा संस्कृत जाननेवाले और धर्मविचार करनेवाले हों, उनको भी यह पुस्तिका पढने दें और उनकी संमति लें ।

यदि आप आर्य-समाज या किसी धर्म-सभा के सदस्य हैं, तो आप अपनी सभा के सामने यह पुस्तिका रखिये । आर्य-समाज और उसकी अन्तरंग सभा सामूहिक रूपसे इसका मननपूर्वक विचार करे और विचार करके अपनी सर्वसंमति निश्चित करें । विचार करनेके समय स्त्री-सदस्यों की संमति भी अवश्य लेनी चाहिये ।

अर्थात् आपके पास यह पुस्तिका पहुंचनेके पश्चात् इन सबकी- स्त्रियोंकी और पुरुषों की- संमति लेखद्वारा लेकर, मेरे पास भेज दें, अथवा **श्री० मंत्री, सार्वदेशिक आर्य-प्रतिनिधि सभा**, श्रद्धानन्द-भवन, **देहली के पास भेज दें और मुझे सूचित करें ।**

इस में देरी न हो, क्योंकि यह प्रश्न सबके हितके लिये अत्यंत आवश्यक है और जल्दी निर्णय करनेयोग्य है ।

( १ ) विवाह-विधि के मंत्रोंमें ऋग्वेदका '**अघोरचक्षु**' वाला मंत्र तीसरा है । इस मे '**देवृकामा**' पद छपा है और उसका अर्थ '**नियोगकी इच्छा करनेवाली**' किया है ।

( २ ) परंतु ऋग्वेद मे किसी स्थानपर '**देवृकामा**' पद ही नहीं है। इस मंत्रका शुद्ध पद '**देवकामा**' है और इसका अर्थ '**ईश्वर-भक्ति करनेवाली**' है ।

( ३ ) विवाह के मंगल कार्य में वर वधूका हाथ पकडकर कहे कि '**हे वधू ! तू ईश्वरकी उपासना प्रतिदिन करती रह,**' यह कितना अच्छा है ! '**नियोग की इच्छा करनेवाली हो**' ऐसा कहने के स्थानपर ईश्वर उपासना की वैदिक सूचना देना निःसंदेह उत्तम है ।

( ४ ) मंत्र मे यदि '**देवृकामा**' पद होता, तो नियोग की संभावना कोई मान भी सकता था। पर इस मंत्रमें 'देवृकामा' पद ही नहीं है। उस अशुद्ध पदको वहां छापना यह एक अशुद्धि है और उसका अर्थ नियोग-परक करना दूसरी अशुद्धि है। ऐसी दो घोर और भयानक अशुद्धियां इस 'संस्कार-विधि' में हुई है। 'देवृकामा' का अर्थ 'पतिके घर में देवर रहें यह इच्छा करनेवाली' ऐसा है, 'नियोग की इच्छा करनेवाली' ऐसा नहीं है । पुत्रकामा, धनकामा ऐसेही बहुत वैदिक पद हैं।

( ५ ) इस विषयके पर्याप्त प्रमाण इस लेख में दिये हैं। इस लिये यहां अधिक प्रमाण देनेकी आवश्यकता नहीं है ।

( ६ ) **जो सत्य है, उसको सत्य मानना और उसका स्वीकार करना है । इससे अधिक यहां कुछ भी करना नहीं है । आप यह कार्य करेंगे, ऐसी आशा है ।**

# क्या विवाह-संस्कारमें नियोगकी प्रतिज्ञा करना उचित है ?

ऋग्वेदमें ' देवृकामा ' पद नहीं है, परंतु ' देवकामा ' है, इस विषयमें इस समयतक अनेक युक्तियां और प्रमाण **वैदिक धर्म** में दिये गये हैं। जो पद ऋग्वेदमें है ही नहीं उसको वहां मानना और ऐसे भ्रष्ट प्रमाण से विवाह की मंगल विधिमें भी ' वधूवर से नियोगकी प्रतिज्ञा करवाना ' एक अत्यंत निंदनीय कर्म है। हमने अपनी ओर से जितना शास्त्रदृष्टिसे प्रयत्न किया जा सकता है, उतना किया और इस घोर पाप से विवाह करनेवाली जनताको बचानेका यत्न किया। परंतु आर्यसमाजके पण्डित, साम्प्रदायिक ईर्ष्याद्वेष से मोहित होकर, अशुद्ध मुद्रितको ही शुद्ध साबित करनेका यत्न कर रहे हैं !!!

यह बात पाठक निम्नलिखित प्रस्तावमें देख सकते हैं।

## ऋग्वेदमें शुद्ध पाठ ' देवकामा ' ही है।

( श्रीमती सार्वदेशिक आ० प्र० सभा देहली की धर्मार्यसभा का स्वीकृत प्रस्ताव । )

विषय

(क) ऋग्वेद १०।८५।४४ मे शुद्ध पाठ ' देवकामा ' है या ' देवृकामा ' है ?

(ख) अथर्ववेद १४।२।१७-१८ इन दो मंत्रो मे शुद्ध पाठ ' देवकामा ' है या ' देवृकामा ' है ?

यह विषय सभा के सामने प्रस्तुत होकर श्री मंत्रीजीने देवकामा-देवृकामाविषयक वादविवाद के दोनों पक्षोंके प्रमाणो को सदस्यों के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए बताया कि वर्तमान समयमें ऋग्वेद के जो मुद्रित संस्कारण उपलब्ध होते हैं उनमें, वैदिक यंत्रालय अजमेरमे छपे ऋग्वेद को छोडकर, ' अघोरचक्षुरपतिघ्नी ' इस ( ऋ० १०।८५।४४ के ) मंत्रमें ' वीरसूर्देवकामा स्योना ' यह पाठ ही पाया जाता है। परंतु ऋषि दयानन्दने संस्कारविधिके विवाहप्रकरणमें इस मंत्रको दो जगह उद्धृत किया है और वहां इसका पाठ ' देवकामा ' दिया है और उसीके अनुसार अर्थ किया है, जिसे श्री. पं० सातवलेकरजी आदि ठीक नही मानते। वे इसे वैदिक यंत्रालयवालोंकी भूल सिद्ध करनेका यत्न करते है। किंतु संस्कारणविधि, प्रथम संस्कारण को देखनेसे जो ऋषि दयानन्द के जीवनकालमें सन १८७७ में एशियाटिक प्रेस बंबईमें छपा था, विवाहप्रकरणमे पृष्ठ ८४ और ९१ पर यह मंत्र ऋग्वेद तथा पारस्कर गृह्यसूत्र से और पृ० ९३ पर अथर्ववेद १४।२।१७-१८ से इसके साथ मिलताजुलता पर पृथक् मन्त्र उद्धृत है। यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि ऋषि दयानन्द के विचारमें ऋग्वेदका १०।८५।४४ मे शुद्ध पाठ 'देवृकामा' है न कि ' देवकामा ' यहांतक कि पृ० ९१× पर जब छापेकी भूल से ऋग्वेदका पाठ ' वीरसूर्देवकामा स्योना ' छप गया, तो संस्कारविधि प्रथम संस्कारण के शुद्धिपत्र मे उन्होंने पृष्ठ ५ पर उस ९१ पृष्ठका उलेख करते हुए लिखा–

पृ० ९१ पं० ९४ देवका = देवृका

यह ठीक है कि ' वैदिक यंत्रालय अजमेरके ऋग्वेद-संहिताके संस्करण को छोडकर अन्य किसी संस्करणमें, जो अब उपलब्ध होते हैं, ऋग्वेदके इस मंत्रमें 'देवृकामा' पाठ नहीं पाया जाता। परंतु कई पुरानी हस्तलिखित पुस्तकों तथा संस्करणोंमें पहिले यह पाठ पाया जाता था, इसके कई प्रबल प्रमाण दृष्टिगोचर होते है।

उदाहरणार्थ स १८९१ में " सेंट पीटर्सबर्ग कोशमें, जो आटो बोथलिंग और रोडल्फ रौथ नामक विद्वानोंने संपादित किया, उसके पृ. ७६६ पर ' देवृकामा ' शब्दका पता ऋ० १०।८५।४४ और अथर्व० १४।२।१८ दिया है। यह पुस्तकमें

× पृ० ८४ का पाठ ' देवकामा ' है, यह क्यो नहीं दुरुस्त किया ? क्या इसका अर्थ नियोगपरक ही यहां है ? (संपादक)

सबसे प्राचीन कोश है । इसमें यह स्पष्टतया प्रमाणित होता है कि, उपर्युक्त महत्त्वपूर्ण कोश बननेके समयमें ऋग्वेदका देवृकामा पाठ लिखित वा मुद्रित संस्करणोंमें ऋ० १०।८५।४४ पर अवश्य रहा ।×

यह संस्कृत कोश 'पुराना होनेके कारण अमाननीय है,' यह श्री पं० सातवलेकरजी आदि का कथन ठीक नहीं, सबसे प्राचीन होनेके कारण उसका महत्त्व बढता है, घटता नहीं ।

( २ ) स. १९१२ में प्रो० मेकूडोनेल और प्रो० कीथ ने लंदनमें ' वैदिक इंडेक्स ' छापा । इसके पृ० ३७८-३७९ पर ' देवृकामा ' शब्दपर टिप्पणी है और देवृकामा शब्दका पता ऋ० १०।८५।४४ और अथर्व० १४।२।१८ दिया है । इससे स्पष्ट है कि १९१२ में प्रो० मेक्डोनेल और कीथ के सामने ऋग्वेदके संस्करणमें ' देवृकामा ' यह पाठ अवश्य था ।×

( ३ ) व्हिटनीकृत अथर्ववेद के अंग्रेजी अनुवादकी भूमिका में भी ऋग्वेदमें पाठ देवृकामा होनेका संकेत किया गया है ।

( ख ) अथर्ववेद के १४।२।१७-१८ में पाठ देवृकामा है, इसके प्रमाण तो अत्यधिक हैं । ... ... ( यहां अथर्वप्रमाण दिये हैं ) ... ... [ पर सेंटपीटर्सबर्ग कोश जो आपने ऊपर प्रमाण माना, उसमें अथर्वका पाठ ' देवकामा ' लिखा है । आपका ही प्रमाण आपके विरुद्ध जाता है ।' संपादक ']

इस सबके विचारविनिमय के पश्चात् सर्व-संमतिसे निर्णय हुआ कि ऋषि दयानन्दसंमत पाठ ऋग्वेद और अथर्ववेद दोनोंमें देवृकामा ही है । जिसकी पुष्टिमें अनेक प्रबल प्रमाण उपलब्ध होते हैं । **किन्तु इसविषयक अन्तिम निर्णय होनेके पूर्व अभी ऋग्वेदके हस्तलिखित और मुद्रित प्राचीन संस्करणोंकी अधिक खोज करनी चाहिए ।**

मंत्री

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली

## हमारा वक्तव्य ।

यह प्रस्ताव श्री०सार्वदेशिक आ०प्र०सभा देहली की धर्मार्य-सभाकी अन्तरंग-सभाने किया है । यह प्रस्ताव उक्त सभामें सर्व-संमतिसे स्वीकृत हुआ । हमारे विचार से यह प्रस्ताव जिन्होंने स्वीकृत किया, उनकी ही **'स्थायी निन्दा करनेवाला'** यह प्रस्ताव है, क्योंकि इस प्रस्तावके शब्दोंसे यह सिद्ध हो रहा है कि जो लोग इस सभामें उपस्थित थे उनको ऋग्वेद का पाठ ' देवकामा ' है या ' देवृकामा, ' इस संबंध का कोई ज्ञान नहीं है और आज जो साधन प्राप्त है, उनका उपयोग करके उक्त विषयका निर्णय करनेकी निर्णायक बुद्धि भी उनमेंसे किसीमें नहीं है। धर्मार्यसभाके सदस्य तो ऐसेही अवश्य होने चाहिये कि, जो कमसे कम ऋग्वेदके पाठ के विषय में तो उनमें अनिश्चयकी बुद्धि नहीं रहनी चाहिये । अस्तु । इस प्रस्ताव में निम्नलिखित बातें स्वीकृत हो चुकी हैं-

(१) वर्तमान समयमें उपलब्ध होनेवाले ऋग्वेदके समस्त संस्करणों में ' देवृकामा ' पद नहीं है, परन्तु सबमें ' देवकामा ' ही पद है ।

(२) केवल अजमेर के वैदिक यंत्रालयमें छपे ऋग्वेदमेंही ' देवृकामा ' पद है । यह पं० सातवलेकर आदि ठीक नहीं मानते । वे यह भूल वैदिक यंत्रालयवालों की है, ऐसा सिद्ध करते हैं ।

(३) परन्तु यह भूल वैदिक यंत्रालयवालों की नहीं है, क्योंकि ऋषि दयानन्द के जीवनमें छपे 'संस्कार-विधि' के शुद्धिपत्रमें ' देवृकामा ' पद दिया है ।

(४) सेंटपीटर्सबर्ग कोश, तथा वैदिक इन्डेक्स इन युरोप-मुद्रित ग्रंथोंमें ऋग्वेदका पाठ ' देवृकामा ' दिया है, इसलिये उनके पास इस विषयके प्रमाण अवश्य होंगे ।×

(५) अथर्ववेदमें ' देवृकामा ' पाठ मिलता है ।

(६) इसलिये ऋषि दयानन्द का स्वीकृत पाठ ऋग्वेदमें ' देवृकामा ' है ।

(७) परंन्तु अन्तिम निर्णयके लिये ऋग्वेद के हस्तलिखित और मुद्रित ग्रन्थोंकी अधिक खोज करनी चाहिये ।

उक्त प्रस्तावमें ये सात बातें हैं । इसमें पहिला कथन अत्यंत महत्त्वका है । इस समय उपलब्ध होनेवाले प्राचीन, अर्वाचीन ऋग्वेदके संस्करणोंमें से किसीमें ' देवृकामा ' पद नहीं है और सबमें ' देवकामा ' ही पद है । केवल अजमेर के

× इसके लिए क्या प्रमाण है ? प्रमाण के बिना किये इस विधानका क्या मूल्य है ? (संपादक)

वैदिक यंत्रालयमुद्रित ऋग्वेदमें ही 'देवृकामा' पद है। यही हमारा कहना है। हमारा कथन इस तरह इस प्रस्ताव में स्वीकार किया गया है। इस समयतक जितने भी ऋग्वेदके प्राचीन, अर्वाचीन हस्तलिखित, मूल अथवा भाष्ययुक्त ग्रंथ उपलब्ध हैं, अथवा छपे ग्रंथ हैं, उन सभीमें ' देवकामा ' पद मिलता है, वेदपाठी उसको प्रमाणित करते हैं, ब्राह्मण और गृह्यसूत्रोंने उसीको माना है, इसलिये वही मानना चाहिये, यही तो हमारा कथन था। वह अबतक वैसाहि अखडित रहा है।

अन्तिम सातवें परिच्छेदमें अधिक खोज करनेकी बात लिखी है, इसलिये उक्त प्रस्ताव करनेवाली सभा के मन में देवृकामा के विषय में अभीतक कुछ भी निश्चय नहीं हुआ, यही सिद्ध होता है। भविष्य में ये सदस्य निर्णय करते रहें।

पंचम परिच्छेदमें अथर्ववेदके पाठ के विषयमें लिखा है। वह भी अपरीक्षितही है। क्योंकि पिप्पलाद संहिता अथर्ववेद कीएक संहिता है, जिसमें दो मंत्र हैं, एकमें ' देवकामा ' पद है और दूसरे मंत्र में ' देवृकामा ' है। अथर्ववेदकी शौनक-संहिताके लिखित ग्रंथोंमें दोनों प्रकारके पाठ मिलते हैं। यद्यपि मुंबईमुद्रित ग्रंथ में दोनों स्थान में ' देवृकामा ' पद छपा है। तथापि यहा प्रश्न अथर्ववेदके पाठ का नहीं है, अतः हम इस विषय में कुछ भी अधिक लिखना नहीं चाहते।

अथर्वमंत्र और ऋग्वेदमंत्र एक नहीं हैं और आर्यसमाज की प्रचलित संस्कारविधिमें जो मंत्र लिखा है, वह ऋग्वेदकाही मंत्र निःसंदेह है, वह अथर्ववेदका मंत्र नहीं है। इसलिये विवाद्य विषय ऋग्वेदका पाठ ' देवकामा' है या ' देवृकामा ' है. इसमें अथर्वपाठ कौनसा है, इसका संबंधही नहीं है। अथर्ववेदकी पिप्पलादसंहिता पतंजलि ऋषि की मानी है और उसमें जो मंत्र ऋग्वेद के करीब करीब समान है, उसमें निःसंदेह पाठ ' देवकामा ' ही है। तथापि विवाद्य विषय अथर्व का नहीं, वह ऋग्वेद का है। इसलिये हम यह विषय यहीं छोडते है।

अजमेर वै० यंत्रालय के मुद्रित ऋग्वेदमें तथा संस्कार-विधि में ऋग्वेदका मंत्रही दिया है और उसमें ' देवृकामा ' ऐसा गलत अशुद्ध पद छापा है, यह निंदनीय अशुद्धि है। हमारे मतसे यह अशुद्धि वै० यंत्रालयवाले पंडितोंकी है। यदि यह अशुद्धि श्री स्वामिजीकी है ऐसा श्री सार्वदेशिक आ० प्र० सभा का मत है, तो उस विषयमें हमें कुछ भी अधिक कहना नहीं है।

युरोपमुद्रित उक्त कोशों के उक्त पाठविषयक लेखका तिरस्कार संपूर्ण युरोपीयन वेदज्ञोंने किया है और अब युरोपमें भी ऋग्वेदका पाठ ' देवकामा ' ही है, इस विषय में किसीको संदेह नहीं है, अतः मोक्षमुलर के सभी संस्करणों मे तथा जर्मनमुद्रित ऋग्वेदमें ' देवकामा ' ही शुद्ध पाठ माना है। जो कोशग्रंथ युरोपमें पूर्णतया अप्रमाणित हो चुके, उनके प्रामाण्यकी स्वीकृति भारतवर्ष की ' सार्व० आर्य० प्र० सभा' करने लगी और उस तिरस्कृत कोशग्रंथों के आधारपर वै० यंत्रालय के अशुद्ध पाठको स्वीकारार्ह मानने लगी! यह यदि इस सभाको भूषण मालूम होता हो, तो उस विषयमे हमें अधिक कुछ भी लिखना नहीं है।

हमें जो दुःख होता है, यह इस बातका है कि ऐसे लेखों से उनकेही आचार्य का नाम कलंकित हो रहा है। संप्रदायमोहित सभासद इस समय इस बातको नही जानते है, परंन्तु श्री० स्वामिजी के यश का संरक्षण करनेवाले ये ही उनका स्थायी अयश हे नेयोग्य प्रमाद कर रहे हैं। उनकी इच्छा हो तो वे इसका पुनः विचार करें, न हो तो वे न करें।

श्री स्वामिजीने प्रथम (और द्वितीय) 'संस्कारविधि' में पृ० ८४ पर ' देवकामा ' ही पाठ माना और अर्थ भी नियोग-रहित किया था। दोनों संस्कारविधियों में यह अब भी देखा जा सकता है। इतनाही नहीं, परन्तु प्रथम वार मुद्रित संस्कारविधिमें नियोगपरक जितने मंत्र थे, उन सबको द्वितीय वार की संस्कारविधि से पूर्णतया हटाया था। तृतीय वार की संस्कारविधि अजमेर मे छपी, उसमें नियोग-परक अर्थ को स्थायी बनाया और यह श्री स्वामिजी के मरणोत्तर हुआ है।

इस विषय में हम पं श्री. राम कौशिकजी का लेख देते हैं-

# ऋग्वेदमें 'देवकामा' है

## और विवाहमें नियोगकी प्रतिज्ञा करना अयोग्य है।

( लेखक श्री० पं० राम कौशिक, ऋषिकेश )

'संस्कारविधि'के विवाह–प्रकरण का ' देवकामा तथा देवृकामा ' पद एक महत्त्वपूर्ण विषय है, क्योंकि वैदिक विवाह-संस्कारोंमें इसकी प्राय. आवश्यकता पडती ही रहती है। कार्यकर्ताओंको कहीं-कहीं संस्कारविधिके विवाहप्रकरणमें आया हुआ " अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि " वाला मंत्र छोडनाही पडता है, या स्वयं उच्चारणमात्र करके मौन रह जाना ही पडता है, तथा कहीं कहीं संस्कारविधिके " नियोगपरक अर्थों ' के विपरीत अर्थ करना पडता है। **विवाहसंस्कार जैसे शुभावसर पर नियोगपरक अर्थ न तो उपस्थित जनताही सुनना पसन्द करती है और न कार्यकर्ताही उपर्युक्त अर्थ का करना उचित समझते हैं;** इसी कारण यह नियोगपरक अर्थ सभी के दिलोंमें खटकताही रहता है। समस्त आर्य सामाजिक पुरुष प्राय यही चाहते हैं कि विवाह-पद्धति से यह नियोगकी प्रतिज्ञा हट जाए तो उत्तम है। विवाहसंस्कार करनेवाले पंडितों को तो उस समय बडा ही संकोच होता है, इसलिए अन्तमें उन्हें विवश होकर ' येन केन प्रकारेण ' इसे टालनेके अतिरिक्त और कुछ नहीं सूझता।

उपर्युक्त कठिनाइयों को दूर करनेके लिए यदि इसका कुछ न कुछ परस्पर निर्णय हो जाता, तो समस्त आर्य-समाजों के लिए एक प्रकार से हितकर ही था। परन्तु सार्वदेशिक सभा तथा आर्यप्रतिनिधि सभा एवं आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा की विद्वान् मण्डलीने उपर्युक्त गम्भीर विषयपर अभीतक कुछ ध्यानही नहीं दिया।

पं० प्रियरत्नजी आर्षका लिखा हुआ " ऋग्वेदमें देवृकामा या देवकामा का विवेचन " नामक एक ट्रेक्ट सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा देहली ने प्रकाशित किया है। इससे यह स्पष्ट पता तो नहीं चलता कि, सर्वदेशिक सभाने इस ट्रेक्ट को केवल प्रकाशित ही किया है, अथवा वह उसके विचारों से भी सहमत है। पं० आर्षजीने इस ट्रेक्टमें मास नवम्बर सन १९४१ के 'वैदिक धर्म' में छपे हुए लेख **' ऋग्वेद का पद देवकामा है, अथवा देवृकामा ?'** के उत्तर देनेका प्रयत्न किया है। इस स्थलपर आर्षजीने जिन-जिन पक्षोंका समर्थन किया है तथा साथ ही जो जो आक्षेप किए है, वे निम्न प्रकार हैं।

### पं० प्रियरत्नजीका पक्ष।

१. ऋग्वेदमें ' देवकामा ' पाठ का होना और उसका अर्थ ' ईश्वरकी कामना करनेवाली ' करना प्रसंग से बाहर है।

२. ऋग्वेदका शुद्ध पाठ 'देवृकामा' है, 'देवकामा' अशुद्ध है।

३. विवाह के अवसरपर नियोगकी चर्चा करना अमंगल नहीं है।

४. संस्कारविधिके विवाहप्रकरणमें ऋग्वेदके **'अघोरचक्षुः'** मंत्रमें ' देवृकामा ' पाठ होना और उसका नियोगपरक अर्थ करना, वैदिक यंत्रालय अजमेरके पंडितोंका काम नहीं है, अपितु उक्त प्रकार का दोष पंडितों के सिर मढना बिल्कुल गलत है।

५. स्वामिजीने जानबूझकर संस्कारविधिमें ' देवृकामा ' ही पाठ रखा है।

६. स्वामिजी अमंगल शकुनोंकी प्रथाको नहीं मानते थे।

७ विवाह नए मैरेज एक्ट तथा अथर्ववेद से भी हो सकता है।

८. ऋग्वेदमें भी अथर्ववेदकी भाँति 'देवृकामा' ही पाठ था।

९. सेन्टपीटर्सबर्ग डिक्शनरी अति प्राचीन है, उसमें ' देवृकामा ' पद आया है।

१०. आर० राथ और मि० व्हिटने ने अपने अथर्ववेदकी भूमिकामें ' देवृकामा ' ऋग्वेदका पाठ माना है।

११. साम्प्रदायिक ऋग्वेदियोंने ऋग्वेद के ' देवृकामा ' की ' ऋकार ' को निकाल कर ' देवकामा ' बना लिया। क्योंकि वे नियोग को अच्छा नहीं समझते थे।

### वाद-विवाद का मुख्य विषय क्या है ?

' वाद-विवाद का मुख्य-विचारणीय-विषय यह है कि ऋग्वेद

के 'अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि' वाले मंत्र में शुद्ध पाठ 'देवकामा' है अथवा 'देवृकामा' और इन दोनों पाठों में से स्वामिजीने किस पाठको शुद्ध माना है। स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाशमें स्वामिजीने स्पष्ट लिखा है कि-'वेदादि सत्य शास्त्रों और ब्रह्मा से लेकर जैमिनि मुनिपर्यन्त जो माना है, वह मैं भी मानता हूं-' इससे कोई नकार नहीं कर सकता, क्योंकि भारतवासी आर्य ( हिन्दु ) वेदोंको अपना 'धर्मग्रन्थ' मानते हैं। इस नाते से समस्त आर्य सामाजिक व्यक्ति 'वैदिकधर्मी' कहलाते हैं। अतः हमें वेदकी ही शरण सबसे प्रथम लेनी चाहिए।

## 'देशी विदेशी समस्त स्थानों की लिखित व मुद्रित ऋग्वेद प्रतियोंमें शुद्ध पद 'देवकामा' ही है'

हमारा दावा है कि, ऋग्वेद मं० १० सू० ८५ के ४४ वें 'अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि' मंत्रमें शुद्ध पद 'देवकामा' ही है। इसमें हेतु यह है कि समस्त देशी विदेशी वेदज्ञ विद्वान् तथा प्राचीन व अर्वाचीन आर्यसामाजिक वैदिक विद्वान् ऋग्वेदके 'अघोरचक्षुः' वाले मंत्रमें शुद्ध पद 'देवकामा' को ही मानते थे और इस समय भी मानते है 'देवृकामा' को नहीं। दूसरे-देश-विदेशमें जितनी सुविख्यात सभा सोसायटियां हैं कि जिनमें वेदसंशोधन का कार्य बडे परिश्रमद्वारा अनुसंधानिक रूपसे हो रहा है, वहां की लिखित व मुद्रित समस्त प्रतियों में भी शुद्ध पद 'देवकामा' ही है, 'देवृकामा' नहीं। आगे हम उक्त प्रतिज्ञा व हेतु की सिद्धि में उदाहरणरूपसे निम्न प्रमाण पेश करते हैं—

(१) बम्बई के निर्णयसागर प्रेस द्वारा मुद्रित ऋग्वेद में, (२) बम्बई में महामहोपाध्याय पं० राजारामशास्त्री द्वारा मुद्रित ऋग्वेदमें, (३) भारतीय बम्बई के गणपत कृष्ण यंत्रलय द्वारा मुद्रित ऋग्वेदमें, (४) पूना वैदिक संशोधनमण्डल द्वारा मुद्रित ऋग्वेदमें, (५) पूना भाण्डारकर रिसर्च इंस्टीट्यूटमें स्थित ऋग्वेदमें, (६) कुम्भकोणके विद्वानों द्वारा मुद्रित ऋग्वेदमें,(७) सी० आर दत्तवाले ऋग्वेदके बंगला अनुवादमें तथा पद पाठमें, (८) पं० गौरीशंकर वाले ऋग्वेदके भाषानुवादमें, अर्थात् उक्त समस्त प्रतियों में शुद्ध पद 'देवकामा' ही है। 'देवृकामा' किसी में भी नहीं है। ( ९ ) लाहौर ओरियन्टल कालेज, (१०) काशी प्राच्य विद्यालय, (११) बम्बई रायल एशियाटिक सोसायटी, (१२) कलकत्ता रायल एशियाटिक सोसायटी अर्थात् उपर्युक्त सुविख्यात संस्थाओं में जिस कदर वेदकी प्रतियां विद्यमान हैं, उन समस्त में शुद्ध पद 'देवकामा' ही है, देवृकामा किसी में भी नहीं, (१३) साम-मंत्र-ब्राह्मण, वैदिक प्राचीन ब्राह्मण ग्रन्थ,(१४) आपस्तम्ब मंत्र पाठ, (१५) पारस्कर गृह्यसूत्र, (१६) हिरण्यकेशीय गृह्यसूत्र, (१७) मानवगृह्यसूत्र आदि समस्त प्राचीन आर्ष ग्रन्थों में शुद्ध पद 'देवकामा' ही है, 'देवृकामा' पाठ किसीमें नहीं है।

## आर्यसामाजिक विद्वानोंद्वारा मुद्रित ऋग्वेदमें भी 'देवकामा' ही है

(१८) आर्यसमाज के सुप्रसिद्ध संन्यासी स्वामी विश्वेश्वरानन्द नित्यानन्दजीद्वारा मुद्रित ऋग्वेदपदसूची में, (१९) लाहौर के श्री पं० विश्वबन्धुजी द्वारा मुद्रित वेद-पद-सूची में, (२०) अजमेर के श्री पं० जयदेवजी द्वारा मुद्रित ऋग्वेदभाषाभाष्य में, उक्त ऋग्वेदप्रतियों में शुद्ध पद 'देवकामा' ही छपा है।

उपर्युक्त प्रमाणों से यह तो भली भांति सिद्ध ही हो चुका है कि एतद्देशीय प्राचीन समय के हस्तलिखित एवं सुविख्यात संस्थाओं में मुद्रित जिस कदर ऋग्वेद एवं ब्राह्मणग्रन्थ आदि की प्रतियां उपलब्ध है, उन समस्त पुस्तकों में शुद्ध पद 'देवकामा' ही है, 'देवृकामा' किसी में भी नहीं है। अब आगे यह प्रश्न और रह जाता है कि, उपर्युक्त पाठों के विषय में यूरोपीय वेदज्ञ विद्वान क्या मानते हैं।

## यूरोप अमेरिका आदि देशोंमें मुद्रित ऋग्वेदमें भी 'देवकामा' ही है

(२१) मि० थीओडोर ओफ्रेक्ट द्वारा मुद्रित ऋग्वेदमें,(२२) मि० मोरिस ब्लूमफील्ड द्वारा मुद्रित मंत्रसूची में, (२३) मि० मोनियर वुईलियम द्वारा मुद्रित ऋग्वेद-शब्द-कोशमें, ( २४ ) मि० एच० एच० विल्सन द्वारा मुद्रित ऋग्वेद के अनुवाद में, (२५) मि० एल्फ टी० एच० ग्रिफितद्वारा मुद्रित ऋग्वेद के अनुवाद में,(२६) मि० मैक्समूलर द्वारा मुद्रित ऋग्वेदसंहिता एवं सायणाचार्यवाले ऋग्वेदभाष्यमें, ( २७ ) मिस्टर मैक्समूलरद्वारा मुद्रित ऋग्वेदकी उत्तर पदसूची में, (२८) यूरोपमुद्रित पदसूची एवं उत्तरपदसूचीमें 'देवकामा' ही है, 'देवृकामा' नहीं है।

उपर्युक्त यूरोपीय वेदज्ञ विद्वानों के जिस कदर उद्धरण दिए गए है, उन से यह निर्विवाद सिद्ध हो गया है कि, उक्त विद्वानों

ने बडे परिश्रमद्वारा अनेक प्रकार के हस्तलिखित एवं मुद्रित ऋग्वेदप्रतियों को जहां-तहां से एकत्र किया, उपरान्त समस्त ग्रन्थोंमें अनुसंधान विवेचन सहित प्रत्येक के पाठभेदों को निश्चय किया, तब कहीं अन्तमें इस निर्णयपर पहुचें कि ऋग्वेद मण्डल १०, सूक्त ८५ के ४० वे ' अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि ' वाले मंत्रमें शुद्ध पाठ ' देवकामा ' ही है, 'देवृकामा' शुद्ध पाठ कदापि नहीं हो सकता।

' देवकामा ' की सिद्धिमें जिस कदर उपर्युक्त प्रमाण उद्धृत किए गए हैं, उनसे पाठकों को यह तो भली प्रकार विदित ही हो गया होगा कि, जिन जिन स्थानोंमें लिखित व मुद्रित ऋग्वेद-प्रतियां उपलब्ध हैं, उन समस्त पुस्तकोंमें शुद्ध पद ' देवकामा ' ही है, ' देवृकामा ' किसी भी स्थानकी ऋग्वेद प्रतियोंमें विद्यमान नहीं है।

आर्षजीका कहना है कि- ऋग्वेदमें ' देवकामा ' का होना और उसका अर्थ ' ईश्वरकी भक्ति करनेवाली ' करना, प्रसंग से बाहर है। इस विषयमें देखो-

**अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः।**
**वीरसूर्देवकामा स्योना शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥**

१. ऋग्वेद मण्डल १०, सूक्त ८५ का यह ४४ वा मंत्र है। जिसका अर्थ सायणाचार्यने इस प्रकार किया है- हे वधु! **त्वं अघोरचक्षु क्रोधाद्भयंकरचक्षुरेधि भव, तथा अपतिघ्नी भव, तथा पशुभ्यः शिवा हितकरी भव, सुमनाः सुवर्चाश्च भव, वीरसूः पुत्राणामेव प्रसवित्री ' देवकामा ' स्योना सुखकरा च भव।**

२ उपर्युक्त ' **अघोरचक्षुः** ' वाले मंत्र तथा उसके अर्थो को देशी-स्वदेशी समस्त वैदिक विद्वान् आदरसहित शुद्ध एवं प्रमाणित मानते हैं× और स्वामिजीने भी इसी प्रकार ठीक माना है, एवं आर्य सामाजिक विद्वानोंने भी उक्त मंत्र तथा उस के अर्थोंको शुद्ध माना है।

३. ऊपर हमने २८ के लगभग ऐसे प्रमाण दिए हैं कि जिन स्थानोंके लिखित व मुद्रित ऋग्वेद प्रतियोंमें शुद्ध पाठ ' देवकामा ' ही आया है, क्योंकि भारत एवं यूरोप-अमेरिका के वेदज्ञ विद्वानोंने भी ऋग्वेदमें शुद्ध पाठ ' देवकामा ' ही माना है तथा इसका अर्थ भी समस्त विद्वानोंने ऐसाही किया है, ' वीरसूर्देवकामा '- वीरप्रसविनी, देवोंकी भक्ति करनेवाली, वीर पुत्रोंके लिए ईश्वर से कामना करनेवाली हो। देखो, यूरोपीय विद्वान् भी इसी प्रकार अर्थ करते हैं— Loving the Gods, Be bevoted to the Gods. Loving the Gods. इत्यादि किन्तु हमारे आर्षजी ' देवकामा ' का अर्थ भी ' देवर अर्थात् दूसरे पतिकी इच्छा करनेवाली ' ऐसाही मानते हैं, जो सर्वथा प्रसंगविरुद्ध है। वस्तुतः ' देवकामा ' का शुद्ध अर्थ तो यही हो सकता है ' ईश्वरकी भक्ति करनेवाली '।

किन्तु आश्चर्य है कि, आर्षजीने अपने समूचे ट्रेक्टमें अपने दावे की सिद्धि के लिए कोई प्रमाण व युक्ति पेश नहीं की, जब कि आपका दावा है कि-ऋग्वेदमें 'देवृकामा' ही शुद्ध पाठ है-तो यह ऋग्वेदद्वारा सिद्ध करना चाहिए था कि आप किस स्थान व संस्था के लिखित व मुद्रित ऋग्वेदको- जिसमें आपने ' देवृकामा ' पाठ देखा है- शुद्ध व प्रमाणित मानते हैं, अथवा संस्कारविधि को ही प्रमाणित माने बैठे है! परंतु उपर्युक्त मंत्र तो ऋग्वेद का है, उसीसे संस्कारविधि में आया है, अतएव संस्कारविधि की अपेक्षा प्रमाणरूपसे वेदही अधिक महत्त्व रखते हैं।

## प्रथम संस्कारविधिमें भी शुद्ध पाठ 'देवकामा' ही है।

१. संस्कारविधि का ' प्रथम-संस्करण ' संवत् १९३३ वि० को एशियाटिक यंत्रालय बम्बई में मुद्रित हुआ है। इसके विवाहप्रकरण के आरम्भ ही में-

पृष्ठ ७९ से पृष्ठ ८३ तक ' **आश्वलायन-गृह्यसूत्र** ' के प्रमाण हैं।

पृष्ठ ८३ से पृष्ठ ८८ तक ' **पारस्कर-गृह्यसूत्र** ' के प्रमाण हैं।

पृष्ठ ८८ से पृष्ठ ९० तक ' **गोभिलीय-गृह्यसूत्र** ' के प्रमाण हैं।

इसके आगे पृष्ठ ९०-९१ पर ' **ऋग्वेद** ' के प्रमाण हैं। और—

× नवरत्न विवाह-पद्धति के पृष्ठ १५२ पर 'अघोरचक्षु.' मंत्र को अथर्ववेद काण्ड १४, अ० २, मंत्र १८ मानकर निम्न अर्थ किया है। ( वीरसूः ) वीर पुत्रोंको पैदा करनेवाली ( देवकामा ) देवान् अग्न्यादीन् पूजार्थे कामयति, अर्थात् देवताओंमें तथा पितरोंमें श्रद्धावाली हो।

आगे पृष्ठ ९२ से पृष्ठ ९६ तक '**अथर्ववेद**' के प्रमाण हैं।

इस स्थलपर जहां प्रत्येक ग्रन्थों के प्रमाणों का संग्रह भिन्न-भिन्न दिया हुआ है, वहां पर ऋग्वेद के मन्त्रों का संग्रह भी एकही स्थान पर पृथक् दिया है, एवं पारस्कर गृह्यसूत्र के मन्त्रों का संग्रह भी एकही स्थानपर पृथक् दिया है।

२. यहांपर जरा ध्यान देनेकी आवश्यकता है। प्रथम संस्कारविधि में ऋग्वेद के मंत्रसंग्रह पृष्ठ ९१ पर ऋग्वेद का '**अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि**' वाला मंत्र आया है कि जिसमें '**वीरसूर्देवकामा**' शुद्ध पाठ इसी विचार से दिया गया है कि समस्त स्थानों के मुद्रित व लिखित ऋग्वेद-प्रतियों में '**देवकामा**' ही पाठ है।

३. प्रथम संस्कारविधि में पारस्कर गृह्यसूत्र आदि के मंत्रों का एवं ऋग्वेदादि के मंत्रोंका जहां संग्रह पृथक्-पृथक् दिया है, वहां इन सबों का अर्थ भी अलग-अलग कर दिया है। इस प्रकार समस्त ऋग्वेद-मंत्रोंका अर्थ पृष्ठ १०७ से पृष्ठ १०९ तक दिया है। जिसमें पृष्ठ १०८ पर मंत्र ४३-४४ का एक साथही अर्थ इस प्रकार है- 'प्रजापति परमात्मा हमारे इस गृहाश्रम में प्रजाको दीर्घायुवाले उत्पन्न करें और सब आनन्द-भोग से सरकृत करें, जो मंगलकारिणी स्त्री पतिलोक जो गृहाश्रम उसको प्राप्त हो, सब मनुष्यों और पशुओं के सुख के लिये।' केवल इतनाही अर्थ किया है।

४. प्रथम संस्कारविधि के पृष्ठ ९१ पर एक तो शुद्ध पाठ '**देवकामा**' का होना और दूसरे उसके अर्थ भी नियोग-परक न होना यह दोनों प्रमाणित करते हैं कि ऋग्वेद में शुद्ध पाठ '**देवकामा**' ही है, 'देवृकामा' नहीं है।

यहां पर यह शंका उठाई जा सकती है कि- प्रथम संस्कारविधिमें पृष्ठ ९१ पर ऋग्वेदके '**अघोरचक्षु**' मंत्र मे जो '**देवकामा**' पद आया है, वह गलतीसे छप गया है, इस कारण ऋषिने उसका पुनः संशोधन किया है और अन्त में शुद्धाशुद्धि पृष्ठ ५ पर अशुद्ध 'देवका' और शुद्ध 'देवृका' बनाकर छाप दिया है।

## जब ऋग्वेदमें भी शुद्ध पद 'देवकामा' ही है, फिर संशोधन किस के द्वारा किया?

१. ऋषिने संशोधन किया अथवा किन्हीं अन्य पंडितोंने, किन्तु किया किस ग्रन्थके आधार से? क्या ऋग्वेद-संहिताको छोडकर किन्हीं अन्य ग्रन्थों से संशोधन किया? यदि यह सत्य है, तो उलटे मार्गपर चलकर भारी लगती की। क्योंकि 'देव-कामा' ऋग्वेदके मंत्रका पद है, अतएव 'देवकामा' का संशो-धन किसी ऐसी ऋग्वेदसंहितासे ही हो सकता है कि, जिसमें '**देवृकामा**' पद मौजूद हो, अन्य किसी ग्रंथसे संशोधन होना असम्भव है। किन्तु हम यह दावेके साथ कह सकते हैं कि, स्वामिजीके पुस्तकालयमें 'देवृकामा' वाली ऋग्वेद-संहिता न उस समय थी और न अब मौजूद है। साथही इस समय भी किसी देशी विदेशी संस्था-सोसायटीमें 'देवृकामा' वाली ऋग्वेद-संहिता का मिलना असम्भव है। इसकी पुष्टिमें हम केवल आर्षजी ही के 'ट्रेक्ट' को पेश करते हैं कि उसमें भी किसी स्थलपर 'देवृकामा' वाली ऋग्वेद-संहिताका वर्णन नहीं है।

२. यदि यह अनुमान ठीक है कि वहांपर '**देवकामा**' गलती से छप गया, वस्तुतः 'देवृकामा' होना चाहिए था। यदि ऐसे ही मान लें, तथापि वहांपर उसका अर्थ भी तो नियोग-परक 'दूसरे पतिकी कामना करनेवाली' ऐसा होना चाहिए था! परन्तु वहांपर न तो नियोग-परक अर्थ और न 'देवृ-कामा' पाठ एक तरफ से दोनोंका अभाव है, और तु इसके विपरीत वहांपर '**देवकामा**' पाठ मौजूद और उसके अनि-योगपरक अर्थ भी विद्यमान, फिर भला यह कैसे मान लिया जा सकता है कि **देवकामा** पाठ वहाँ गलती से छप गया?

३. प्रथम संस्कारविधिके ९१ पृष्ठवाले शुद्ध पद 'देवकामा' का शुद्धा-शुद्धि पत्रपर ले जाकर 'देवका' अशुद्ध पद का 'देवृका' शुद्ध पद बना देना तो सहज ही काम था, अतः बना दिया गया, **परन्तु इसके अर्थ भी तो अशुद्ध ही थे? फिर इन्हें संशोधन करके शुद्धा-शुद्धि-पत्रपर क्यों नहीं ले जाया गया?**

परन्तु अर्थ ज्योंके त्यों मौजूद!! केवल शुद्ध-पद '**देव-कामा**' को शुद्धा-शुद्धि-पत्रपर ले जाकर न जाने किस आधारसे अशुद्ध-पद 'देवृकामा' बनानेका साहस कर डाला!! जब कि समस्त देशी-विदेशी वैदिक विद्वान् प्रत्येक स्थानोंके लिखित व मुद्रित ऋग्वेद-संहिता की प्रतियोंमें शुद्ध पद '**देवकामा**' ही को मानते हैं, 'देवृकामा' को नहीं।

## पारस्कर-गृह्यसूत्र में भी शुद्ध पद 'देवकामा' ही है

पारस्कर गृह्यसूत्रके '**अघोरचक्षु.**' वाले मंत्रमें हम दावेके

साथ कह सकते हैं कि किसीभी स्थानके लिखित व मुद्रित पारस्कर गृह्यसूत्रकी प्रतियोंमें न तो 'देवृकामा' पाठ है और न उसका नियोगपरक अर्थ ही किया है, समस्त स्थानोंकी मुद्रित पारस्कर गृह्यसूत्रकी प्रतियोंमें शुद्ध पाठ '**वीरसूर्देवकामा**' ऐसा दिया है और उसके अनियोगपरक अर्थ "(**वीरसूः**) सुपुत्रजननी (देवका**मा**) देवान् अग्न्यादीन् कामयेत सेवार्थमीहेत, यद्वा-देवं देवनं क्रीडां कामयेत्" इस प्रकार किए है। आर्यजी! क्या आप किसीभी स्थानके छपे हुए पारस्कर गृह्यसूत्र की प्रतियोंमें 'देवृकमा' पाठ और उसके नियोगपरक अर्थ दिखला सकते है? जब कि पारस्कर गृह्यसूत्रमें न तो 'देवृकामा' ही पाठ है और न नियोगपरक अर्थ, फिर आश्चर्य है कि पारस्कर गृह्यसूत्रवाले मंत्रमें 'देवृकामा' अशुद्ध पाठ छापनेका साहस कैसे किया गया?

## प्रथम संस्कारविधि में केवल षोडश संस्कारों का व्याख्यान मात्र है।

१. संस्कार-विधि का प्रथम संस्करण वि. सं. १९३२ में आरम्भ होकर और श्रीयुत लक्ष्मणशास्त्री द्वारा शोधन होकर वि. सं. १९३३ को एशियाटिक यन्त्रालय बम्बई मे मुद्रित हुआ था। प्रथम संस्कारविधि तथा प्रस्तुत संस्कारविधि के नामोंमें किंचित् मात्र भी अन्तर नहीं है, परन्तु प्रथम संस्कारविधि 'क्रिया-विधान' से सर्वथा रहित ही है। क्योकि प्रस्तुत संस्कारविधि के अनुसार इसमें न तो किसी प्रकार की क्रियाविधि ही है और न यज्ञविधि ही, अपितु सामान्य प्रकरण का अग्न्याधान-समिधाधान एवं अष्टाज्याहुति आदि कुछ भी अङ्कित नहीं है। प्रस्तुत संस्कारविधिमें जिस प्रकार प्रत्येक संस्कार की क्रियाविधि दी गई है, उसी प्रकार गृहाश्रम-संस्कार के अन्तर्गत पंच महायज्ञ के ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ आदि पंच-यज्ञ भी दिए है, किन्तु वे भी इसमे विद्यमान नहीं। इसमें क्रियाविधि कुछ भी न देकर केवल यह दर्शाया गया है कि आश्वलायन गृह्यसूत्र आदि इन संस्कारों के विषय मे किस प्रकार क्या क्या मानते है। हमारे विचार मे यदि इस पर ऊपरसे संस्कारविधि एवं स्वामिजी का नाम हटा दिया जाय, तो यह पुस्तक संस्कारों का संग्रह एवं उनकी व्याख्यामात्र ही रह जाती है, 'संस्कारविधि' नहीं रहती।

२. स्वामिजी के जीवनकालमें प्रथम संस्कारविधि का दौर-दौरा लगभग आठ वर्ष तक बराबर जारी रहा, परन्तु यह किंचित् मात्र भी विश्वास नहीं होता कि, इतने अर्से में इसके द्वारा कोई वैदिक संस्कार कराया गया होगा, अथवा नहीं; यदि कराया गया, तो किस क्रियाद्वारा सम्पन्न हुआ? जब कि उसका प्रत्येक संस्कार 'क्रिया-विधि' शून्यही है। अतः यहांपर यह प्रकट कर देना अत्युक्ति दोष न होगा कि जिस प्रकार तथा जिस क्रमसे पारस्कर गृह्यसूत्र आदि में विवाह आदि प्रत्येक संस्कार का विधान पाया जाता है, उसी प्रकार उसके विधिविधान को ज्यों का त्यों प्रथम संस्कारविधि में उद्धृत कर दिया गया था। पश्चात् जब सनातन धर्मपद्धति को देखा, तो फिर उसीके ढंगपर कुछ न्यूनाधिक करके दूसरी संस्कारविधि की रचना की गई है, क्योंकि सनातन-धर्मविवाहपद्धति के क्रम से प्रस्तुत संस्कारविधि के विवाहप्रकरण का क्रम सर्वथा ज्यों का त्यों मिलता-जुलता है कि जो पारस्कर गृह्यसूत्र में भी समानतया ही मौजूद है।

३. ऐसा कहा जाता है कि स्वामीजीने पुनः संशोधन करके शुद्धा-शुद्धि-पत्रपर 'देवृकामा' पाठ बना दिया था। यह मिथ्या दोष स्वामिजी के सिर मढा जाना है; स्वामीजीने न तो पूर्वही संशोधन किया और पश्चात् ही, क्योंकि बम्बईमुद्रित प्रथम संस्करण के टाईटिलपेजपर छपा है-'**श्रीयुत लक्ष्मणशास्त्रिणा शोधितः।**

४. उपर्युक्त प्रकारकी सब गडबड स्वामीजी के विश्वास-पात्र ब्र० रामानन्द आदि पंडितों ही की है कि जो लिखने व संशोधन आदि का काम करनेके लिएही नियत थे। (ऋग्वेदभाष्य वैदिक यंत्रालय प्रयाग मुद्रित सं० १९४७ के टाईटल-पेजपर टिप्पणी छपी है, 'इस भाष्य की भाषाको पंडितोंनें बनाई और संस्कृतको भी उन्होंने शोधा।')

## प्रथम-संस्कारविधिके पुनः संशोधनका कारण।

स्वामीजीको जब यह पता चला कि, मेरे विश्वास-पात्र सेवकोंने अपनी चालाकी से संस्कारविधिमे गडबड करके इस कदर मिलावट कर दी है कि 'गर्भाधान-संस्कार' एवं 'अन्न-प्राशन-संस्कार' में 'मांसयुक्त भात' खाने-खिलानेका विधान रख दिया है और इसी प्रकार विवाहके अतिरिक्त प्रकरणके विरुद्ध 'सीमन्तोन्नयन-संस्कार' तथा 'मृतक-संस्कार' इन दोनोमें भी नियोगका विधान सिद्ध करनेके लिए मंत्र रख दिए और उनकी नियोगपर व्याख्या भी कर डाली, यह देखकर उनको बहुत दुःख हुआ। इन्हीं कारणोंसे बाधित होकर स्वामिजीने अपने मरनेसे चार मास पूर्व द्वितीय संस्कारविधिका

' नवीन संस्करण ' निकालनेका विचार किया । प्रथम संस्कारविधिका पुनः संशोधन वि० सं० १९४० आषाढ वदि त्रयोदशी को आरम्भ होकर स्वामिजीके देहान्तके पश्चात् वि० सं० १९४१ में ' द्वितीय संस्करण ' के नामसे संस्कारविधि वैदिक यंत्रालय प्रयागमें मुद्रित हुई । इसी बीच आश्विन वदि चतुर्दशी वि० सं० १९४० में स्वामीजीको विष दिया गया और वे एक मास उपरान्त अस्वस्थ रहे । तदनन्तर वि० सं० १९४० अमावास्याको उनका स्वर्गवास हो गया । उक्त हिसाबसे ढाई-तीन मासके अल्प समयमें प्रथम संस्कारविधिका संशोधन कर के द्वितीय-संस्कारविधिका निर्माण कराया गया ।

वस्तुतः यदि प्रथम-संस्कारविधि तथा प्रस्तुत संस्कारविधि दोनोंका मिलान किया जाय, तो यह कह देना साहसमात्रही होगा कि प्रथम संस्कारविधिका पुनः संशोधन किया गया है । अपितु यह मान लेना अधिक उपयुक्त होगा कि प्रथम-संस्कारविधिकी कायापलट करके नवीन-संस्कारविधिकी रचना की गई है ।

## प्रथम-संस्कारविधिकी रचना केवल गृह्य-सूत्रोंके ही आधारपर की गई थी।

१. प्रथम-संस्कारविधिके कुल १५३ पृष्ठ है, जिनमें केवल षोडश संस्कारोंका नाम तथा उनका व्याख्यान दिया गया है । इनमेंसे यदि प्रत्येक संस्कार एक-दो पृष्ठोंपर मान लिया जाय, तो कुल तीस पृष्ठोंपर षोडश संस्कारोंका समस्त विषय आ जाता हैं कि जो पुनः संशोधन की हुई ' द्वितीय-संस्कारविधि ' मे गया है । शेष आरम्भसे अन्ततक समस्त पृष्ठोका संपूर्ण विषय प्रथम-संस्कारविधिसे बाहर निलालकर फेक दिया है । उदाहरणार्थ, प्रथम-संस्कारविधिके विवाह-प्रकरणकोही ले लीजिए, पृष्ठ ७९ से लेकर पृष्ठ ११४ तक विवाहप्रकरण दिया हुआ है, इन ३४-३५ पृष्ठोमें केवल 'आश्वलायन गृह्यसूत्र' के मंत्र एवं व्याख्यान, ' पारस्कर गृह्यसूत्र ' के मंत्र एवं व्याख्यान। 'गोभिलीय गृह्यसूत्र' के मंत्र एवं व्याख्यान, इन तीनोंका सब कुछ संस्कृतही में है । आगे ऋग्वेदके १५ मंत्र तथा अथर्ववेदके ५२ मंत्र दिए हैं और साथमें कुछ श्लोक मनुके भी दिए गए है और तीनोंका अर्थ भी भाषामें कर दिया है ।

२. अन्य गृह्यसूत्रोंकी अपेक्षा पारस्कर गृह्यसूत्रमें विवाह-विधिका विधान विशेष रूपसे दर्शाया गया है, अतएव विवाह-संस्कार की संपूर्ण रचना प्रत्येक आचार्यने इसीके आधारपर की है । आश्वलायन-गोभिलीय गृह्यसूत्रोंमें पारस्कर गृह्यसूत्रसे कुछ विशेष नहीं है, यह जानकर इन दोनोंको तथा साथमें ही मनुके श्लोकोंको भी प्रायः अलगसा ही कर दिया । ऋग्वेद के तथा अथर्ववेदके मंत्रोंमेंसे भी कुछ मंत्र छोडकर शेष सब निकाल दिए गए ।

## स्वामिजीनेंही नियोगपरक मंत्र संस्कारविधिसे हटाये थे।

किन्तु यह एक विचित्र बात हुई कि, ऋग्वेदके ' **दशास्यां पुत्रानाधेहि पतिमेकादशं कृधि** ' आदि मंत्र कि जिनका नियोगपरक अर्थ किया जाता है और साथमेही अथर्ववेद काण्ड १४ के १७ वे १८ वें ( पृष्ठ ११२ पर जहा अथर्ववेदमंत्रोंके अर्थ दिए है, वहां पर उक्त दोनों मंत्रोंका ' नियोगपरक अर्थ ' भी नहीं किया गया है। ) ' **देवृकामा** ' वाले दोनों मंत्र अर्थात् **दोनों वेदोके जितने नियोगपरक मंत्र व अर्थ थे, उन सबकोभी निकाल बाहर कर दिया गया।** उसके अतिरिक्त **प्रथम-संस्कारविधिमें जिस-जिस स्थल पर** नियोगसूचक **मंत्र, श्लोक, सूत्रादि आए थे,** जिनके नियोगपरक अर्थ **दिए थे, उन सबको भी** देशनिकाला दे दिया गया । अर्थात् ३४-३५ पृष्ठोमें दिया हुआ विवाहके विधिविधानमेंसे केवल उपर्युक्त ग्रन्थोका शेष-भाग तथा पारस्करगृह्यसूत्रका कुछ विशेष भाग द्वितीय संस्कारविधिके लिए रखकर शेष **सबका सब निकाल बाहर कर दिया गया ।**

३. जिस प्रकार पारस्कर गृह्यसूत्रमें ' **साधु भवानास्ताम् मधुपर्कोमधुपर्कः** ' आदि मंत्रोसे लेकर ' **ध्रुव पश्य** ' तक मंत्रोंके अतिरिक्त ( १ ) **समञ्जन्तु विश्वे देवाः**, ( २ ) **यदेषि मनसा दूरम्**, ( ३ ) **अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि**, ( ४ ) **सा नः पूषा शिवतमा**, ये चार मंत्रभी क्रमवार एकही खण्डमें दिए है, उसी प्रकार क्रमसे एकही खण्डमें उक्त चारों मंत्रोंसहित समस्त मंत्रोंकी ज्यों की त्यों नकल प्रथम संस्कारविधिमें की गई है । यहापर यह कहा जा सकता है कि उपर्युक्त मंत्र तो ऋग्वेदमेंभी आए है, फिर इनको पारस्कर गृह्यसूत्रके ही क्यों कहे जाते हैं? **ऋग्वेदमें** केवल ' **समञ्जन्तु** ' तथा ' **अघोरचक्षु** ' ये दोही मंत्र हैं, इसी कारण वहापर इनका क्रम भी नहीं है और पारस्करगृह्यसूत्रमें उपर्युक्त चारों मंत्रोंका क्रम पाया जाता है, अतः स्पष्ट विदित होता है कि यह मंत्रोंका क्रम **पारस्कर गृह्यसूत्रसेही लिया गया है, नकि ऋग्वेदसंहितासे ।**

इसलिये यहांपर निर्विवाद मानना पडेगा और हमारे आर्यजीभी इससे नकार न करेंगे कि उक्त चारों मंत्रोंका क्रम अतिरिक्त पारस्कर गृह्यसूत्रके अन्य किसी ऋग्वेदादि ग्रंथोंमें नहीं हो सकता।

४. प्रथम संस्कारविधिका पुनः संशोधन होनेपर भी उपर्युक्त चारों मंत्र क्रमवार ' द्वितीय-संस्कारविधि ' में पृष्ठ ११४ पर ज्योंके त्यों छाप दिए गए हैं और साथ में ' अघोरचक्षुः ' वाले मंत्रमें वही अशुद्ध पाठ ' देवृकामा ' ही दिया हुआ है, किन्तु अर्थ कुछ न्यूनाधिक करके ' देवरकी कामना करनेवाली अर्थात् नियोगकी भी इच्छा करनेहारी ' ऐसा किया गया है। स्वामीजीने यदि इसका स्वयं संशोधन किया होता तो यह कब सम्भव था कि 'देवृकामा' अशुद्ध पाठ नियोगपरक अर्थसहित द्वितीय संस्कारविधिके पृष्ठ ११४ पर दिया जाता ? क्योंकि स्वामीजी स्वयं जानते थे कि समस्त स्थानोंकी लिखित व मुद्रित पारस्कर गृह्यसूत्र की प्रतियोंमें शुद्ध पाठ 'देवकामा' ही है। अतः इसकी अधिक पुष्टि इससे और हो जाती है कि प्रथम संस्कार विधिमें शुद्ध पाठ ' देवकामा ' को अशुद्ध पाठ ' देवृकामा ' बना देनेपर स्वामीजीने उसे पुनः संशोधन करके ' देवकामा ' बना दिया है- देखो। द्वितीय-संस्कारविधि पृष्ठ १३४ पर शुद्ध पाठ ' देवकामा ' ही छपा है और ' वहां पर नियोगपरक अर्थ भी नहीं है। इससे अधिक पुष्टि 'देवकामा' की सिद्धि में और क्या हो सकती है ?

## द्वितीय संस्कारविधिमें भी ऋग्वेद का शुद्ध पाठ ' देवकामा ' ही है।

१ जिस प्रकार प्रथम-संस्कार-विधि में पृष्ठ ९१ पर (१) आ नः प्रजां जनयतु, (२) अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि, (३) इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः (४) सम्राज्ञी श्वशुरे भव, ये चार मंत्र क्रमवार दिए हैं, निस्संदेह इन चारों मंत्रोंका क्रम ऋग्वेद मण्डल १०, सूक्त ८५, मंत्र ४३ से ४६ तक पाया जाता है। इन में दूसरा मंत्र ' अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि ' वाला है कि जिस में शुद्ध पद ' देवकामा ' ही दिया हुआ था, किन्तु हमारे कर्मचारियों की कृपासे उसका संशोधन करके शुद्धाशुद्धि-पत्रपर ' देव ' का 'देवृ' बना दिया गया। जब प्रथम-संस्कारविधि का संशोधन हुआ, तो शुद्धा-शुद्धिपत्रपर अशुद्ध पद ' देवृका ' को देखकर स्वामिजी आश्चर्य-चकित रह गए, फिर उन्होंने स्वयं अपने हाथसे इस ' देवृकामा ' अशुद्ध पदके स्थानपर शुद्ध पद 'देवकामा' बनाया। देखो- द्वितीय-संस्कारविधि पृष्ठ १३४ पर उपर्युक्त चारों मंत्र क्रमवार दिए हैं कि जिसके ' अघोरचक्षुः ' वाले मंत्रमें शुद्ध पाठ ' देवकामा ' छपा है। जो उस स्थलपर सिर ऊंचा किए हुए यह दर्शा रहा है कि जिन कर्मचारियोंने जानबूझकर अशुद्ध पाठ ' देवृकामा ' बना दिया था, उसे स्वामीजीने संशोधनद्वारा पुनः ' देवकामा ' बनाकर यह स्पष्टतया प्रमाणित कर दिया है कि ऋग्वेदके ' अघोरचक्षु ' वाले मंत्रमें शुद्ध पाठ ' देवकामा ' ही है और प्रथम-संस्कारविधिमें भी यह शुद्ध पाठ इसी प्रकार छपा है- ' देवृकामा ' होना किसी दशामें भी सम्भव नहीं।

२. पाठकगण! जरा ध्यानपूर्वक विचारें- ' इस मंत्रका अर्थ पृष्ठ ११४ पर लिखे प्रमाणें जानना। ' यह नोट देते समय उन भले मानुषोंने यह सर्वथा विचार नहीं किया कि इस मंत्र में तो पाठ ' देवकामा ' है और पृष्ठ ११४ पर 'देवृकामा' कि जिसका अर्थ ' देवर की कामना करती हुई, अर्थात् नियोगकी भी इच्छा करनेहारी ' ऐसा छपा है। 'देवकामा ' का ऐसा घृणित अर्थ ' नियोगकी भी इच्छा करनेहारी ' क्या कोई बुद्धिमान् पुरुष कभी मान सकता है ? कदापि नहीं। यदि पृष्ठ १३४ पर ' अघोरचक्षु ' वाले मंत्र में ' देवृकामा ' पाठ होता, तो ऐसा नोट देना वस्तुतः सम्भव था कि ' इस मंत्र का अर्थ पृष्ठ ११४ पर लिखे प्रमाणें जानना' परन्तु जब १३४ पृष्ठ पर देवृकामा ' पाठ ही नहीं है, तो फिर उसका नियोगपरक अर्थ करना सरासर गलती ही है।

३. संस्कारविधि का 'तीसरा संस्करण ' वि० सं० १९४७ में वैदिक यंत्रालय अजमेर मुद्रित हुआ है। वैदिक यंत्रालयवालों ने जब द्वितीय संस्कारविधिके पृष्ठ १३४ पर ' अघोरचक्षु ' वाले मंत्रमें ' देवकामा ' छपा हुआ और इसीसे संबंधित नीचे यह नोट ' इस मंत्रका अर्थ पृष्ठ ११४ में लिखे प्रमाणें जानना ' देखा, तो उनके हृदयमें निम्न प्रश्न उठना स्वाभाविक ही था कि जिस मंत्र में शुद्ध पद ' देवकामा ' हो, आश्चर्य है कि उसके लिए देवर की कामना करती हुई अर्थात् नियोग की भी इच्छा करनेहारी ऐसे विचित्र अर्थ की ओर संकेत किया गया हो ? बस उन्होंने तुरन्त इस प्रश्नका समाधान करने एवं नोट को सार्थक बनाने के लिए अपनी बुद्धिमता एवं दूरदर्शिता द्वारा ' तृतीय-संस्करण ' छापते समय पृष्ठ १३४ पर दिए हुए अघोर-चक्षुवाले मंत्रमें शुद्ध पद ' देवकामा ' बदल

कर अशुद्ध पद 'देवृकामा' बना डाला! उस समयसे अबतक प्रत्येक संस्करणमें अशुद्ध पद 'देवृकामा' ही बराबर छपता चला जाता है।

## 'संस्कारविधि'में स्वामीजीने 'नियोगका विधान' नहीं किया।

१. यह कहना ठीक है; यदि स्वामीजी को 'नियोगका विधान' अभिमत होता, तो उनको उचित था कि **प्रथम-संस्कारविधिमें नियोग-परक जो-जो मंत्र व अर्थ विद्यमान थे, उन सबको तथा इस की पुष्टिमें जिस कदर नियोग-परक विषय उपलब्ध होता, उन संपूर्ण विषयको द्वितीय-संस्कारविधिमें जमा किया जाता।** परन्तु इसके विपरीत स्वामीजीने संशोधन करते समय प्रथम-संस्कारविधिके जिस जिस स्थलपर नियोगपरक मंत्र व अर्थ आए थे, उन सबको तो निकाल ही दिया था, परन्तु आश्चर्य है कि नियोगके संस्थापक अथर्ववेदके 'देवृकामा' व.ले १७ वें व १८ वें दोनों मुख्य मंत्रोंको भी यहांसे निकाल बाहर किया। इनका ऐसा करना स्पष्ट प्रकट करता है कि स्वामीजीको विवाह जैसे शुभावसर पर 'नियोगका विधान' मानना तो एक ओर रहा, अपितु उसका वर्णन करना भी वे अति-निकृष्ट समझते थे।

२. स्वामीजीने संस्कारविधि में 'देवृकामा' शब्दका अर्थ 'देवरकी कामना करनेवाली' केवल इतनाही किया था। बीचमें 'अर्थात्' शब्द डालकर अर्थका अनर्थ कर दिया। एक 'देवरकी कामना करनेवाली' दूसरे 'नियोगकी भी इच्छा करनेहारी' याने एक अर्थके दो भाग बन गए। 'देवृकामा' शब्दसे दूसरा भाग निकलना तो असम्भव है। चलो! यहां कुछ देरके लिए ऐसाही मान लें कि स्वामीजीनेही दूसरा अर्थ-'नियोगकी भी इच्छा करनेहारी' किया है, परन्तु किया किसके आधारपर है?

## स्वामीजीने भी दुनयवी शकुनोंकी प्रथाको ठीक माना है।

'विवाहके शुभावसरपर वेद अमंगलका विधान नहीं करते,' अतएव उस अवसरपर नियोगकी चर्चा करना अमंगल समझा जाता है।

स्वामीजीने भी लोक-नीतिके अनुसार उपर्युक्त मंगलामंगल की प्रथाको ठीकही माना है—देखो, स्वामीजी इसकी पुष्टिमें प्रस्तुत संस्कारविधिके पृष्ठ १८२ पर क्या लिखते है— **जब वधू-वरका रथ वरके घरके आगे आ पहुंचे, तब कुलीन, पुत्रवती, सौभाग्यवती, वा कोई ब्राह्मणी वा अपने कुलकी स्त्री आगे सामने आकर वधूका हाथ पकडकर वरके साथ रथसे नीचे उतारे'** संस्कारविधि के उपर्युक्त पाठ से यह स्पष्ट विदित होता है कि स्वामीजी भी विवाह के शुभावसरपर नवविवाहिता वधूके सम्मुख किसी विधवा आदि स्त्रीका आना-अमंगलही समझते थे।

## धार्मिक विवाह-विधान आदर्श रूप है।

१. धर्मपरायण आर्य-जाति कि जिनका वैदिक विवाह-विधान का आदर्श समस्त विश्वके विवाह-विधानोंसे उच्चतम हो और मंगल कामनाका द्योतक माना गया हो, जिस में **'अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि वीरसूर्देवकामा'** आदि मंत्रोंद्वारा नवविवाहित दम्पति को जनसाधारणकी ओरसे आशीर्वाद दिया गया हो तथा जिन पवित्र मंत्रोंमें पतिव्रतधर्म एवं पतिव्रताधर्मका आदर्श जीवन कूट-कूट कर भरा गया हो, भला! उन विशुद्ध मंत्रोंके वैदिक विधानमें 'दूसरे पतिकी कामना करनेवाली' ऐसा अभद्र एवं भ्रष्ट उपदेश का होना क्या सम्भव हो सकता है? कदापि नहीं।

२ विवाह एक धार्मिक संस्कार है, जिसमें हर्षके साथ सब मंगल कर्म ही होते हैं, किसी प्रकारके अमंगल को तो वहां स्थान ही नहीं है। सन्तानोत्पत्तिके निमित्तही वधूवर दोनों मंगल विवाह-सूत्रमें बंध रहे हैं। उक्त विवाहबन्धन धार्मिक होनेसे दोनोंके लिए जीवनपर्यन्त अटूट एवं दृढ हो रहे हैं। उक्त बंधनमेंही दोनोंकी पुत्रोत्पत्ति-कामना निहित है, इसी लिए जनसंघके समक्ष वेदीपर गुरुजन **'सुमंगलीरियं वधूः'** के लिए समस्त कामनाओंकी पूर्ति करनेवाले पतिदेवको प्राप्त करा रहे हैं। वधू-वर दोनोंके इस शुभ-मिलनको जहां पुरोहितसहित उभयपक्षीय उपस्थित जनता हर्षनाद कर रही है, वहां वधू-वर दोनों भी परस्पर एक दूसरे को प्राप्त करके मनही मन हर्षित हो रहे हैं। जिस मंगलावसर पर चारों दिशाओंमे गाजे-बाजे सहित हर्षनाद हो रहा हो, भला! उस समय पति-देव संस्कार की आरम्भिक क्रियाके मध्यहीमे जनसंघके समक्ष वेदीपर अपनी भावी नव-विवाहिता-पत्नीको कि जिसका भली प्रकार अभी पाणिग्रहण भी नहीं हुआ, संकेतद्वारा ऐसे अमंगलसूचक वाक्योंको, 'यदि किन्हीं कारणोंसे मैं नपुंसक हो जाऊं या मर जाऊं, तो तू दूसरे पतिसे पुत्रलाभ कर लेना' स्वयं अपने

मुखसे कभी उच्चारण कर सकता है ? प्राण जायं पर ऐसा कदापि नहीं कर सकेगा। क्या यह लज्जा की बात नहीं कि युवक-युवती दोनों जीवित, हट्टे-कट्टे तथा सर्व प्रकारसे समर्थ होते हुए भी जनसमूहके सामने अपने आपके लिए अमंगल प्रतिज्ञा कर रहे हैं- 'यदि मैं मर गया, तो तू दूसरा पति कर लेना तथा मैं मर गई, तो तू दूसरी स्त्री कर लेना!' वाह ! क्या सुन्दर विधान है !!

## स्वामीजीने नियोगको अनिवार्य नहीं समझा।

१ सत्यार्थप्रकाशमें लिखा है कि स्त्री भी--जो पति धर्मके अर्थ परदेश गया हो तो 'आठ वर्ष,' विद्या और कीर्ति के लिए गया हो, तो 'छः वर्ष,' धनादिके लिए गया हो, तो 'तीन वर्ष,' पुरुष भी-वंध्या स्त्री हो 'आठवें' (विवाहसे आठ वर्ष तक स्त्रीको गर्भ न रहे) सन्तान होकर मर जाय, तो 'दशवें' कन्याही कन्या हो, पुत्र न हो तो 'ग्यारहवें' वर्षतक बाट देखे अर्थात् विवाह करनेके बाद इतने वर्षोंके उपरान्त उपाय करनेपर भी यदि सन्तान न हो, तब कहीं जाकर स्त्रीपुरुष दोनोंको वंशादिकी रक्षार्थ परस्पर विचार करना है कि हमें सन्तान की आवश्यकता है। या नहीं।

२ परन्तु आश्चर्य है कि जनसंघके सामने वेदीपर आतेही, वर महाशय को यह कैसे पता चल गया कि मैं 'नपुंसक' हूं और यदि पूर्वमेही नपुंसक थे, तो एक अबला-बालिकाका जीवन नष्ट करनेके लिए वेदी पर उपस्थितही क्यों हुए थे ? यहापर कोई यह कह सकता है कि उस समय तो समर्थ थे, किन्तु बाद मे 'नपुंसक' हो गए। यदि ऐसा ही है, तो 'नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे' इस अमंगलसूचक वाक्यका प्रथमही दिनसे प्रयोग क्यों किया जा रहा है ? क्योंकि उक्त प्रकारकी नपुंसकता का पता तो गृहस्थ भोगनेके कुछ वर्ष पश्चात्ही लग सकता है, तिस परभी बिना डाक्टर की परीक्षा के यह भली प्रकार पता लगाना असम्भवसाही है कि दोनोंमेंसे कौन असमर्थ अर्थात् वंध्या व नपुंसक है। क्योंकि स्वामीजीने भी माना है कि दोनोंके रज--वीर्य सम तुल्य होनेपर सन्तानोत्पत्ति नहीं हो सकती। पश्चात् सन्तानोत्पत्ति की आवश्यकता अनुभव करना स्त्री पुरुष दोनों ही की इच्छापर निर्भर है। उपर्युक्त कार्यके लिए उनको मजबूर नहीं किया जा सकता।

## नियोगकी विधि नहीं है।

१ मरने आदि किसी भी दशामें स्त्री--पुरुषोंको नियोगद्वारा पुत्रोत्पत्ति करना अनिवार्य नहीं, क्योंकि नियोग का विधान वेदमें नहीं मिलता, यह तो एक आपत्कालकी क्रिया है, अतः मंगल कार्य नहीं तथा दोनों की इच्छापर अवलम्बित है। यही कारण है कि किसी भी आचार्य एवं सूत्रग्रन्थकारोंने नियोगको 'संस्कार' नहीं माना, अतएव स्वामीजीने भी उक्त नियोगको किसी प्रकारका संस्कार नहीं माना। यदि स्वामीजी 'नियोग-संस्कार' मानकर क्रियाविधिसहित उसे संस्कारविधिमें देते, तो क्या कोई रोक सकता था ? क्योंकि वे भी तो एक आचार्य थे। परंतु स्वामिजीने ऐसा नहीं किया, क्योंकि वे भली प्रकार जानते थे कि वेद एवं पारस्कर गृह्यसूत्रोंमें 'नियोग-संस्कार' का विधान नहीं है। फिर भला वे उनके विरुद्ध कैसे कर सकते थे ? देखो, स्वयं स्वामीजी सत्यार्थ-प्रकाशमे इस प्रकार लिखते हैं-'स्त्री ब्रह्मचर्यमें स्थित रहकर कन्या व स्त्रीको पढानेका काम कर सकती है, वंशकी रक्षाके लिए स्वजातिका लडका 'गोद ले सकती है' इत्यादि। इससे सिद्ध है कि नियोग आवश्यक नहीं है।

२. स्वामीजीने बडे गम्भीर विवेचनद्वारा संस्कारविधि में जो ऋग्वेदके 'देवकामा' वाले पद को दिया है, उस में एक महत्त्वपूर्ण रहस्य है और ऋषि की दूरदर्शिता भी इसीसे झलकती है। क्योंकि स्वामीजी '**नोद्वाहिकेषु मंत्रेषु नियोगः कीर्त्यते क्वचित्**' मनुके इस श्लोक का आदर करते हुए यह जानते थे कि विवाह जैसे शुभ व मंगल अवसर पर 'नियोग तथा पुनर्विवाहका विधान नहीं आना चाहिए।' अतएव स्वामीजीने अथर्ववेदका 'देवृकामा' वाला मंत्र न देकर वह ऋग्वेदका 'देवकामा' वाला मंत्रही दिया है।

अब यह तो भली प्रकार सिद्ध हो ही चुका है कि ऋग्वेद में शुद्ध पाठ '**देवकामा**' ही है, 'देवृकामा' नहीं। अतः विवाहके मंगलावसरपर '**देव**' परमात्मा से '**वीरसूः**' वीर पुत्रों की कामना करनेवाली, ऐसा अर्थ करना प्रसंगानुसार उचित ही है।

## 'देवृकामा' का नियोगसूचक अर्थ स्वामीजी आदि किसी विद्वान्ने नहीं माना।

१. 'अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि' वाले मंत्रके 'देवकामा' पदमें 'कामा' शब्द एक व्यापक शब्द है। जिसका अभिप्राय मंत्र में दी हुई कामनाओंकी ओर एक प्रकारका संकेत है। देवरकी कामना वही है कि जो कामना वीर पुत्रोंके उत्पन्न करनेमें विहित है, यथा- देवकामा, पतिकामा, पुत्रकामा' देवर-ज्येष्ठ

आदि पारिवारिक-जन-कामा, तथा पशु-पक्षी आदि जीवकामा अर्थात् इनके प्रति यह शुभ भावनाएं हृदय में सदा बनी रहें कि मेरे पतिगृह में सबके सब सुखपूर्वक जीवित रहे।

२. यदि कुछ देरके के लिए ऋग्वेदका पाठ 'देवृकामा' मान भी लिया जाए, तो 'नियोग की भी कामना करनेहारी' ऐसा अर्थ किसी दशामें भी नहीं बन सकता। अतएव ऋग्वेद में 'देवृकामा' का होना तथा उसका अर्थ नियोगपरक करना युक्ति-युक्त नहीं, इसी प्रकार आर्यसामाजिक विद्वान् भी मानते हैं। इसकी पुष्टि में यहां कुछ प्रमाण देना हम उचित समझते हैं –

३. संस्कारविधिका गुजराती अनुवाद आर्यप्रतिनिधिसभा बम्बईने मुद्रित किया है और दूसरे वहींके आर्य सामाजिक विद्वान् पंडितोंद्वारा इसका अनुवाद मराठीमें भी हुआ है। संस्कारविधिके विवाह-प्रकरणमें आए हुए 'देवृकामा' वाले मंत्रका 'देवरकी कामना करनेवाली-देवरको सुख देनेवाली' केवल इतनाही अर्थ उन पुस्तकोंमें किया है। 'नियोगकी भी इच्छा करनेहारी' यह इतना अधिक अर्थ 'वैदिक यंत्रालय अजमेर' वाली संस्कारविधिमेंही पाया जाता है, दूसरे स्थानकी अन्य भाषामें मुद्रित संस्कारविधिमें नहीं मिलेगा।

४. इसके अतिरिक्त स्वामीजीकृत सत्यार्थप्रकाशकी साक्षीभी मौजूद है। वैदिक यंत्रालय प्रयागमुद्रित सत्यार्थप्रकाशके तृतीय संस्करणके पृष्ठ ११५ पर 'अदेवृघ्न्यपतिघ्नीहैधि' अथर्ववेदवाले मंत्रमें 'देवृकामा' पद आया है, वहांपरभी (वीरसूः) शूर-वीर पुत्रोंको जनने, (देवृकामा) देवरकी कामना करनेवाली (स्योना) और सुख देनेवाली पति वा देवरको, ऐसा प्रसंगानुसार अर्थ किया है, पर नियोगकी भी इच्छा करनेहारी यह अंश इसमें भी नहीं दिया।

५. आर्य प्रतिनिधिसभा संयुक्त प्रान्तने सत्यार्थप्रकाश मराठीभाषामें कोल्हापूर छापकर प्रकाशित किया है, उसमेंभी अथर्ववेदके मंत्र 'अदेवृघ्न्यपतिघ्न्येहैधि' मंत्रमें 'देवृकामा' पद आया है, इसका अर्थ देवरकी कामना पूरी करनेवाली, केवल इतनाही दिया है। शेष अंश 'अर्थात् नियोगकी भी इच्छा करनेहारी' नहीं दिया।

६. जिस प्रकार यूरोपियन वेदज्ञ विद्वानोंने 'देवृकामा' का अर्थ Loving brother-in-law (देवरपर प्रीति करने वाली) ऐसा किया है-- 'नियोगकीभी इच्छा करनेहारी' किसीने नहीं किया- ठीक इसी अर्थका अनुवाद आर्यसमाजके प्रसिद्ध विद्वान् श्री पं० चमूपतिजीद्वारा अनूदित तथा आर्य-प्रतिनिधिसभा पंजाबद्वारा प्रकाशित 'उर्दू सत्यार्थप्रकाश' में 'देवरसे मुहब्बत करनेवाली' ऐसा श्रेष्ठ अर्थ किया है। जिससे यह भली प्रकार विदित होता है कि 'कामा' शब्दका अर्थ 'नियोग' न होकर 'मुहब्बत-प्रीति' ही सर्वोत्तम है।

७. 'देवृकामा' का शब्दार्थ 'देवरकी कामना करनेवाली' संस्कारविधिमें भी विद्यमान तथा सत्यार्थप्रकाशमें भी मौजूद एवं स्वामीजीसे लेकर आर्यसामाजिक सभी प्रसिद्ध-प्रसिद्ध विद्वानोंने इसी प्रकार माना है। शब्दार्थ तो इसी प्रकार आर्यजीभी मानते हैं, केवल भेद इतनाही है कि आप उसकी व्याख्या नियोगपरक अर्थोंमें करते हैं, जो किसी वैदिक विद्वानने नहीं की। क्योंकि आपका यह दावा है कि- अथर्ववेदसे नियोगवाधिको कोई हटा नहीं सकता-हटानेकी इसमें तो शक्ति है नहीं और हम हटा सकते हैं, किन्तु उपर्युक्त प्रमाणोंसे हमें तो यही स्पष्ट प्रतीत हो रहा है कि आर्य समाजके प्रमुख-प्रमुख विद्वानोंके दिलोंमें पूर्वहीसे यह वाक्य खटक रहे थे। इसी कारण विवाह जैसे मंगला वसर पर उक्त नियोगपरक अर्थको इष्ट न समझकर 'चालीस पैंतालीस' वर्षोंके पूर्वही निकाल बाहर कर दिया था। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे आर्यजी पुनः इसका 'जीर्णोद्धार' करना चाहते हैं, जो नितान्त असम्भव है। सुप्रसिद्ध वेदज्ञ विद्वान् श्री. पं० सातवलेकरजीने अपने वैदिक धर्म मास आक्टूबर स० १९४२ के अंकमें 'देवृकामा और नियोग' शीर्षक लेख-द्वारा उक्त विषयपर अति उत्तम प्रकाश डाला है, जो द्रष्टव्य है।

आर्यजीका ख्याल है कि यूरोपमें 'सेन्टपीटर्सबर्ग डिक्शनरी' नामक कोष बहुत काल पूर्व तैयार किया गया था, अतः उक्त डिक्शनरी अति प्राचीन है, यह पंडितजीने भी माना है।

### ऋग्वेदही सर्वप्रथम तथा प्रधान पुस्तक है

वैदिक मंत्रोंमें जहां वेदोंका वर्णन आया है वहांपर प्रथम नाम 'ऋग्वेद' काही आया है, अथर्ववेदका नहीं। क्योंकि वह चौथे नम्बरपर है। यद्यपि मनु आदि महर्षियोंने तीनही वेदोंका नाम दिया है, अथर्ववेदका नामही नहीं दिया, तथापि उन नामोंमें भी प्रथम नाम ऋग्वेदकाही आया है। इसी लिए अधिकांश विद्वान् अन्य वेदोंकी अपेक्षा अथर्ववेदको बहुत काल पीछेका रचा मानते हैं। अन्य आश्रयोंकी भांति स्वामीजीनेभी अपनी पुस्तक का नाम अथर्ववेद आदि भाष्यभूमिका न रखकर 'ऋग्वेदादि-

भाष्यभूमिका ' ही रखना श्रेष्ठ समझा, अतः स्पष्ट प्रकट है कि स्वामीजीभी ऋग्वेदकोही सर्वप्रथम पुस्तक मानते थे। क्यों- कि ऋग्वेदके अनेक मंत्र अन्य वेदोंमे मिलनेके अतिरिक्त उसके सूक्तके सूक्त यजु, साम, अथर्व, तीनो वेदोंमें पाए जाते हैं। अतः स्पष्ट विदित होता है कि ऋग्वेदमें तीनों वेदोंमेंसे किसीका एकभी मंत्र नहीं गया, अपितु ऋग्वेदसेही अन्य तीनो वेदोंमे मंत्र गए हैं।

५. आर्षेजीभी इस बातसे नकार न करेंगे कि 'ऋग्वेदही सर्व- प्रथम पुस्तक ' है, फिर भला! यह कैसे माना जा सकता है कि ' अथर्ववेदकी भांति ऋग्वेदमेभी है? ' किन्तु ऐसा तो होना सम्भव है कि 'ऋग्वेदकी भाति अथर्ववेदमें भी-देवकामा-पदही था,' इसकी पुष्टिमे और अधिक प्रमाण देनेकी आवश्यकता नही है।

## अन्तिम निवेदन।

१. इसी लेखमें पूर्व हमने प्रबल युक्ति-प्रमाणोंसहित उक्त विषयकी भली प्रकार विवेचना कर दी है कि, प्रथम-संस्कार- विधिके पृष्ठ ९१ पर ऋग्वेदके मंत्रसंग्रहमें ' अघोरचक्षुः ' वाला मंत्र आया है, उसमे शुद्धपाठ ' देवकामा ' ही छपा है। यदि ' देवृकामा ' ही था, तो फिर संशोधन किसका किया? क्या ' देवृकामा ' का अथवा ' देवकामा ' का? दोनों दशाओंमें संशोधन करना ही यह सिद्ध करता है कि उस स्थलपर शुद्ध पाठ ' देवकामा ' ही था और अभीतक मौजूद भी है, एवं नियोगपरक अर्थ भी वहां नहीं है। तनिक आखें उभार कर देखें, तो स्पष्ट नजर आ जाएगा।

२. प्रथम-सम्कारविधिका संशोधन होनेके बवजूद भी प्रयाग मुद्रित द्वितीय-संस्कारविधिके पृष्ठ १३४ पर शुद्ध पाठ ' देवकमा ' ही छपा है, जो अभीतक वहांपर विद्यमान भी है, तथा उस स्थलपर उसके नियोगपरक अर्थ भी नहीं दिए है, अतः शुद्ध पाठ होनेके कारणही वह शुद्धा-शुद्धि-पत्र पर भी चढाया नहीं गया। क्योंकि यह सर्व-मत द्वारा मानी हुई बात है कि ऋग्वेदमें शुद्ध पाठ ' देवकामा ' ही है, तथा ' देवृकामा ' अशुद्ध पाठ है।

३. वैदिक-यंत्रालयवाले पंडितोंके सिर श्री पं० सातवलेकर जीका मढना गलत नहीं, वल्कि सही है। क्योंकि प्रथम-द्वितीय दोनों संस्करणोंमें शुद्ध पाठ ' देवकामा ' होनेके बावजूद भी स्वामीजीकी अनुपस्थितिमें अर्थात् मरनेके पश्चात् वैदिक-यंत्रा- लय अजमेरवालोंने अपने यहां तृतीय-संस्करण छापते समय ऋग्वेदवाले ' अघोरचक्षुः ' मंत्रमें अशुद्ध पाठ ' देवृकामा ' छापकर आर्य जनताको एक प्रकारसे धोखा दिया है। क्योंकि वैदिक यंत्रालय अजमेरसे पूर्वकी छपी हुई प्रथम-द्वितीय दोनों संस्करणों में शुद्ध पाठ ' देवकामा ' ही छपा है और **उसका वहांपर नियोगपरक अर्थ भी नहीं है।**

इतने प्रमाणोंसे निम्नलिखित बातें सिद्ध हुई हैं—

१. ऋग्वेदके १०।८५।४४ ' **अघोरचक्षु** ' वाले मंत्रमें ' देवकामा ' ही पाठ है। श्री स्वामिजीने अपनी प्रथम संस्कार- विधिमें यही ' देवकामा ' पाठ मानकर उसका अर्थ भी नियोग- रहित किया था।

२ प्रथम संस्कारविधिमें मुद्रित अनेक नियोगपरक मंत्रोंको द्वितीय वारकी संस्कारविधिमें स्थान भी नहीं दिया। इससे सिद्ध होता है कि श्री स्वामीजी विवाहके मंगल संस्कारमें नियोग- मंत्रोंका उच्चारण करना भी उचित नहीं समझते थे। ऐसा उनका मत न होता, तो वे नियोगके सब मंत्र द्वितीय वारके मुद्रणमें भी रखते। पर वैसा हुआ नहीं।

३. संस्कारविधिमें ' **नियोगकी विधि** ' नहीं है। तथा ' **गोद लेने** ' को भी श्री स्वामिजीने माना है। इसलिये नियोग अनिवार्य नहीं है। संतान न होनेपर भी स्त्रीपुरुष ' **आजन्म ब्रह्मचारी रहेंगे,** ' तो वे स्वामीजीके मतमे श्रेष्ठ होंगे, दूषणीय नही होंगे। इसलिये प्रत्येक विवाहसंस्कारमे ' **वधूवर नियोग- की भी इच्छा करता रहे,** ' ऐसा जो अजमेर वै. यं. मुद्रित संस्कारविधिमे छपा है, वह अयोग्य है।

४ विवाहसंस्कारमें नियोगका उच्चारण करनेका निषेध मनु- स्मृतिमें किया है। किसी गृह्यसूत्रकारने विवाहमंत्रोंमें नियोग- मंत्रोंको लिखा नहीं है। इसलिये ऋग्वेदका पाठ अशुद्ध छापना और उसका अशुद्ध अर्थ- अर्थात् नियोगपरक अर्थ करना, यह दोनों अयोग्य है।

५. कौन वधू-वर ऐसे हैं कि जो विवाह वेदीपर हवनाग्निके सामने खडे होकर कहेंगे कि ' हे स्त्री! तू नियोगकी इच्छा करनेवाली हो!' और ' हे पति! तू नियोगकी इच्छा करने- वाला हो!' क्या कोई ऐसे मातापिता है और क्या कोई ऐसे पुरोहित भी हैं कि जो अपने पुत्र या पुत्रीसे इस तरह प्रतिज्ञा विवाहसंस्कारमेंही करवायेंगे?

जितना विचार किया जाय, उतना स्पष्ट हो जाता है कि अजमेर वैदिक यंत्रालयमें मुद्रित संस्कारविधिमें यह अशुद्ध मुद्रित हुआ है, जिसको अति शीघ्र शुद्ध करना आवश्यक है।

# ऋग्वेदमें पद 'देवकामा' ही है।

संपूर्ण ऋग्वेदके किसी मंत्रमें 'देवृकामा' पद नहीं है। ऋग्वेदकी शाकलसंहितामें भी नहीं है और शांख्यायन संहितामें भी नहीं है। सर्वत्र मं० १०।८५।४४ वें मंत्र में 'देवकामा' ही पद है।

इसके प्रमाण ये हैं—

## ( १ ) संहिता-पाठ।

वीरसूर्देवकामा स्योना शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे॥

(शाकल शाखा) ऋग्वेद १०।८५।४४;

(शांख्यायन शाखा) ऋग्वेद अध्याय ५९, वर्ग२८।४

शाकल और शांख्यायन इन दोनों संहिताओंके पाठ एक जैसे ही हैं। पर शांख्शायन संहितामें निम्नलिखित मंत्र इस सूक्तके साथ अधिक हैं—

> अविधवा भव वर्षाणि शतं साग्रं तु सुव्रता।
> तेजस्वी च यशस्वी च धर्मपत्नी पतिव्रता॥
> जनयद्बहुपुत्राणि मा च दुःखं लभेत् कचित्।
> अष्टपुत्रा भव त्वं च सुभगा च पतिव्रता॥

( शांख्यायन ) ऋग्वेद ५९।२८।८-९

ऋग्वेदकी यह शांख्यायन शाखा गुजरात में है और इस वेदके पाठी वहां इस समयमें भी हैं। इस का पाठ 'देवकामा' है और साथसाथ ये आशीर्वादमंत्र भी हैं। इनका अर्थ यह है- 'हे वधू! तू विधवा न हो, सौ वर्षतक जीवित रह, पूर्ण आयु प्राप्त कर, उत्तम नियमोंका पालन कर, पतिव्रता हो और बहुत पुत्रोंको प्राप्त कर, कमसे कम आठ पुत्र तुझे प्राप्त हों, तुझे दुःख कभी न प्राप्त होवे।' ये आशीर्वाद विवाह के समयमें उत्तम प्रतीत होते हैं।

## ( २ )

वीरसूर्देवकामा सं त्वयैधिषीमहि सुमनस्यमाना।

( पिप्पलाद-शाखा ) अथर्ववेद १८।८।९

( शौनकीय-शाखा ) अथर्ववेद १४।२।१७

## ( ३ )

जीवसूर्देवकामा स्योना०।

(आपस्तम्ब-मंत्रपाठ १।१।४)

## ( ४ ) ब्राह्मण ग्रंथका पाठ।

ब्राह्मणग्रंथमें पाठ 'देवकामा' ही माना है। किसी भी ब्राह्मण वा आरण्यक में 'देवृकामा' पाठ नहीं है। ब्राह्मण ग्रंथका पाठ देखिये-

वीरसूर्जीवसूर्देवकामा स्योना०।

(साममंत्र ब्राह्मण १।२।१७)

## ( ५ ) गृह्यसूत्रका पाठ।

गृह्यसूत्र के अनुसार विवाहादि कर्म किये जाते है। अतः गृह्यसूत्रकारोंने इस मंत्रका पाठ विवाहविधिमें कौनसा माना है, यह देखिये-

वीरसूर्देवकामा स्योना०।

(पारस्करगृह्यसूत्र १।४।१६)

(मानवगृह्यसूत्र १।१०।६)

जीवसूर्देवकामा स्योना०।

(हिरण्यकेशीगृह्यसूत्र १।२०।२)

वीरसूर्जीवसूर्देवसूर्देवकामा स्योना०।

(गोभिलगृह्यसूत्र(टीका) २।२।१६)

इसके अतिरिक्त 'अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि०' यह मंत्रभाग आपस्तम्बगृह्यसूत्र २।४।४; बोधायनगृह्यसूत्र १।१।२५; शांख्यायनगृह्यसूत्र १।१६।५; वाराहगृह्यसूत्र १।१।२५; जैमिनीयगृह्यसूत्र १।२१ इन ग्रंथोंमें आया है। परंतु इनमेंसे किसीमें 'देवृकामा' पद नहीं है। अर्थात् सब गृह्यसूत्रोंकी विवाहपद्धतिमें 'देवकामा' ही पाठ है।

कौशिकसूत्र ७७।२२, बृहद्देवता ८।१।३७ में भी इस मंत्रका प्रारंभिक प्रतीक है।

## ( ६ ) लिखित ग्रंथोंकी साक्षी।

२०० और ३०० वर्षोंके ऋग्वेदके प्राचीन लिखित ग्रंथ जो वेदपाठियोंके घरानोमें अनेक पुश्तोंसे वेदके पठनपाठनमें प्रयुक्त होते आये हैं, तथा जो सौ पचास वर्षोंके लिखे ग्रंथ उपलब्ध हैं, उन सबमें 'देवकामा' ही पाठ है। किसीमी ऋग्वेदके

लिखित ग्रंथमें ( १०।८५।४४ स्थानपर ) 'देवृकामा' पद नहीं है।

वैदिक घरानोंमें जहां पुश्त प्रतिपुश्त वेदका अध्ययन, अध्यापन चलता रहता है, वहांके लिखित ग्रंथ प्रमाणिक माने जाते है। क्योंकि प्रतिवार पठनपाठन के समय, किसी स्थानपर अशुद्धि नजर आ गयी, तो वह उसी समय शुद्ध की जाती है। इस तरहसे ये ग्रंथ शुद्ध रहते हैं और शुद्ध होते जाते हैं।

इस तरहके लिखित ग्रंथ औंधमें हैं और बंबई, पूना, नासीक, त्र्यंबकेश्वर, वाई, सावंतवाडी, गोवा, अहमदनगर, सांगली, मिरज, कोल्हापूर, इचलकरंजी, म्हैसूर, त्रिवेंद्र, कुंभकोणं, कांचीवरं, मदुरा, मद्रास, कलकत्ता, काशी, प्रयाग आदि अनेक स्थानोंमें जहां जहां वैदिक लिखित ग्रंथोंका संग्रह है, जहां वेदपाठियोंके घराने हैं, जहां इस समय तक वेदकी पठनपठनप्रणाली चली आ रही है, वहांके चुन चुनके ७-८ सौ ग्रंथ हमने विशेष प्रयत्नसे देखे। इस कार्यके लिये रामेश्वर तक प्रवास भी किया और स्थानस्थानके ऋग्वेद के ग्रंथ देखे। देवनागरी, ग्रंथलिपि तथा अन्यान्य लिपिके ऋग्वेद भी देखे। सर्वत्र 'देवकामा' ही पाठ मिलता है। किसी स्थानके लिखित ग्रंथमें 'देवृकामा' पद नहीं है।

## ( ७ ) भाष्य-ग्रंथोंकी अनुमति।

ऋग्वेदपर सायनभाष्य होकर इस समय करीब ६०० वर्ष हुए हैं। ऋग्वेद १०।८५।४४ '**अघोरचक्षु**' वाले मंत्रके पाठका निश्चय करनेके लिये हमने सायनभाष्यकी कई प्रतियां स्थानस्थानके ग्रंथभण्डारोंमें देखीं। पूनामें इस समय ऋग्वेद सायनभाष्य छप रहा है। इस कार्यके लिये कई स्थानोंसे भाष्यके लिखित ग्रंथ मंगवाये है। इन सबमें इस मंत्रमें 'देवकामा' ही पाठ मिला है। इनमें कुछ ग्रंथोंका वर्णन देखनेयोग्य है।

**१.** पूनाके '**भारत-इतिहास-संशोधक-मंडल**' में पं० कलंबकर ग्रंथसंग्रह (सं० १) में प्राचीनसे प्राचीन सायनभाष्य है **संवत् १६४३ ज्येष्ठ वदि गुरुवासरे गोविन्द त्रिपाठिना वाराणस्यां लिखितं हरिसूरिपण्डितानां पुस्तकम्।**' ऐसा इसपर लिखा है। अर्थात् यह ग्रंथ ३५७ वर्षोंका पुराना है। इसमें '**देवकामा स्योना सुखकरा च भव।**' ऐसा है अर्थात् इस मंत्रका पाठ '**देवकामा**' है।

२. दूसरा भाष्य बागलकोट (जि. विजापूर) के पं० कृष्णाचार्य मलगी का है। यह संवत् १७४३ का लिखा है। अर्थात् यह २५७ वर्षका पुराना है। इसमेंभी पूर्वोक्त भाष्यपंक्ति वैसीही है और '**देवकामा**' पाठ है।

३. ग्वालियार दरबारसे प्राप्त पं० लक्ष्मण गणेश आठवलेजी के पासका सायनभाष्य २०० वर्षोंका पुराना है। इसमें भी भाष्यकी पंक्ति वैसीही है और '**देवकामा**' पाठ है।

४. साताराके पं० खुपेरकर शास्त्रीजीके पासका सायनभाष्य १५० वर्षोंका पुराना है। इसमें भी भाष्यपंक्ति वैसी ही है और पाठ '**देवकामा**' है।

५. इन्दौरके श्री सरदार माधवराव किबे साहेब के पासका सायनभाष्य १२५ वर्षोंका पुराना है। इसमें भाष्यपंक्ति वैसी ही है और पाठ '**देवकामा**' है।

६. वाई ( जि. सातारा ) में प्राज्ञपाठशाला में १५० वर्षोंका पुराना सायनभाष्य है। इसमें भाष्यपंक्ति ऊपर लिखे समान है और पाठ '**देवकामा**' है।

७. गोकर्ण ( जि. कानडा ) के पं० महाबलेश्वर दीक्षितके पास सायनभाष्य ११२ वर्षोंका पुराना है। इस में भी पूर्वोक्त प्रकार भाष्यपंक्ति है और पाठ '**देवकामा**' है।

८ जोधपूर से प्राप्त सायनभाष्य १७५ वर्षोंका पुराना लेख है। इस में भी वैसी ही भाष्यपंक्ति है और पाठ '**देवकामा**' है।

ये सब ग्रंथ आजभी पूना में देखे जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त बीसियों सायनभाष्यके ग्रंथ हैं, जिनमें उक्त मंत्रमें '**देवकामा**' ही पाठ माना गया है। साडे तीनसौ वर्षोंके तथा भारत के विभिन्न प्रान्तोंमें मिले सायनभाष्योंके नाना प्रकार के ग्रन्थोंमें इस मंत्रका पाठ '**देवकामा**' ही मिलता है और भाष्य की पंक्ति भी ऊपर जैसी लिखी है, वैसी ही मिलती है। इससे निःसंदेह सिद्ध होता है कि सायनभाष्य में इस मंत्रका पाठ 'देवकामा', ही माना था। इस समयतक एक भी सायनभाष्य का लिखित ग्रंथ ऐसा नहीं मिला कि जिस में इस पदका पाठ दूसरा लिखा हो।

## छपे भाष्योंकी साक्षी।

ये सायनभाष्य पं. मोक्षमूलरने युरोपमें दो बार छापे, मुंबई, पूना, कलकत्ता में भारतवर्षमें भी सायनभाष्य छापा है। सबने इस मंत्रका पाठ '**देवकामा**' ही माना है। और भाष्यकी पंक्ति ऊपर लिखी जैसी ही सर्वत्र है।

## ( ८ ) अनुवादकोंकी संमति ।

अंग्रेजी अनुवाद करनेवालोंमें ये अनुवदकर्ता हैं, जिनके अनुवाद प्रसिद्ध हैं—

१. म० विल्सन ' be devoted to the Gods ' ( देवकामा )

२. म० ग्रिफिथ ' Loving the Gods ' ( देवकामा )

मराठी के अनुवादकर्ता ये हैं—

३. पं० सिद्धेश्वरशास्त्री ( पूना )= ( देवकामा )= 'श्रद्धावाली'

४. पं० रा०वि०पटवर्धन(पूना)=(देवकामा)='ईश्वरभक्त'

हिंदी अनुवादकर्ता ये हैं-

५. पं० रामगोविंद त्रिवेदी ( भागलपूर )= ( देवकामा )= देवोंकी भक्ता होओ ।

६. पं० गौरीनाथ झा ( भागलपूर )= ( देवकामा )= देवोंकी भक्ता होओ।

इस तरह ऋग्वेद-अनुवादकों की संमति ऋग्वेदपाठ ' देवकामा ' है, यही है ।

७. पं० जयदेव शर्मा ( अजमेर ) मंत्रमे ' देवृकामा ' लिखते हैं, परंतु अर्थ करनेके समय ' ( देवकामा ) विद्वानों को वा अपने कान्त पतिको सदा चाहनेवाली हो, ' ऐसा अर्थ करते हैं । इससे इसको भी ऋग्वेदका पद ' देवकामा ' ही इष्ट था, यह इनके अर्थसे स्पष्ट है । इन्होंने भूलसे मंत्रमें ' देवृकामा ' छापा है। यदि इनको ' देवृ ' इष्ट होता, तो अर्थ में ' देवर ' लिखते । परंतु वैसा नहीं किया ।

इस तरह अनुवादकों की संमति यही है कि ऋग्वेदके इस मंत्रमें ' देवकामा ' ही पाठ है ।

## ( ९ ) पदपाठ और सूचीकारों की संमति ।

१. स्वा० विश्वेश्वरानन्द और नित्यानन्दजीने ऋग्वेदकी पद-सूची निर्णयसागर, मुंबईमें छापी है ( सन १९०८ में मुद्रित )। इसमें पृ. २०६ पर " देव-कामा १०, ८५, ४४ " ऐसा ऋग्वेदका इस मंत्रका पद दिया है । इस सूचीमें ' देवृकामा ' पद है ही नहीं । अर्थात् इनके मतसे ऋग्वेदमें ' देवृकामा ' पद ही नहीं है ।

२. पं० मोक्षमुल्लरके युरोप ( लंडन ) मुद्रित सब ऋग्वेद-भाष्योंमें पदपाठमें ' देवकामा ' है और इसीके उत्तरपद-सूचीमें भी ' देवऽकामा ' ही है, देवृकामा नहीं है ।

३. पं० थिओडोर आफ्रेक्ट ने जर्मनी ( Bonn ) बोनमें स० १८७७ में ऋग्वेद पदपाठसहित छापा है । इसके द्वितीय विभाग पृ० ३७९ पर यह मंत्र है । यहां Devakama ( देवकामा ) ऐसा छापा है और नीचे पदपाठमें Deva-kama ( देव-कामा ) ऐसे इसके पद दिये हैं ।

४. पं० ब्लूमफील्डका वैदिक कंकार्डन्स स. १९०६ में अमेरिका के मेसाचुसेट्समें प्रसिद्ध किया है । पृ० ८९७ पर ' देवकामा ' वाला मंत्रभाग दिया है । यहां ऋग्वेदका दूसरा कोई पाठ दिया नहीं है । ये अनेक पाठभेद देते हैं, पर इनके मतसे ऋग्वेदमें ' देवकामा ' ही है ।

५. श्री मोनिअर वुईलियम्स का संस्कृत-इंग्लिश-कोश ऑक्सफर्डमें सन १८९९ में छपा । इसमें ऋग्वेदका पद ' देव-कामा ' पृ. ४९२ पर दिया है । और अर्थ Loving the Gods, pious ( R. V. ) ऐसा देकर ऋग्वेदका ही पता बताया है । [ यहां पाठक ध्यानमें रखें कि इसी कोशमें पृ ४९६ पर ' देवृकामा ' पद दिया है, पर वहां ऋग्वेदका पता नहीं दिया । ] ' देवकामा ' का पता ऋग्वेदका देते है, पर ' देवृ-कामा' का ऋग्वेदका पता नहीं देते । इससे देवृकामाका ऋग्वेदमें न होना सिद्ध होता है ।

६. महामहोपाध्याय राजाराम शास्त्रीजी द्वारा मुंबईमें सायन-भाष्य पदपाठसहित छापा था । उसमें १०।८५।४४ में ' देव-कामा ' पद दिया है ।

७. मुंबई निर्णयसागर प्रेसमें कई बार ऋग्वेद-संहिता और पदपाठ छापा है । प्रतिबारके पुस्तकमें ' देवकामा ' ही छपा है । ये ग्रंथ वेदपाठियोंद्वारा शुद्ध किये जाते हैं ।

८. पूनाके वैदिक संशोधन मण्डलके द्वारा ऋग्वेद सायन-भाष्य पदपाठसहित छापा जाता है । इसमें ' देवकामा ' पाठ ही स्वीकृत किया है ।

९. श्री पं० विश्वबन्धुजी शास्त्रीके श्री विश्वेश्वरानन्द वैदिक इन्स्टीट्यूट लाहौरके द्वारा बडी खोजके साथ वेदसंहिताओं और ब्राह्मणग्रंथोंकी पदसूचियाँ मुद्रित हुई है । इसमें ऋग्वेदका पद ' देवकामा ' ही दिया है ।

१०. कुम्भकोणके विद्वानोंने बडी खोजके साथ ऋग्वेदका पदपाठ छापा है । इसमें ' देवकामा ' ही पद इस मंत्रमें दिया है । यह मद्रासके वेदपाठियोंद्वारा शुद्ध किया हुआ पाठ है ।

इस तरह देखनेसे पता लगता है कि एक भी ऋग्वेदके संस्करणमें १०।८५।४४ के मंत्रमें 'देवृकामा' पद नहीं है। सबमें '**देवकामा**' ही है।

११. पं० ओल्डनबर्गने Text Krititche (Vol. II, पृ. २८९) मे '**देवकामा**' पदही ऋ० १०।८५।४४ में है, ऐसा बडी विस्तृत टिप्पणी देकर सिद्ध किया है। इन्होने ऋग्वेदमें 'देवृकामा' माननेवालोंका खंडन किया है।

'**सेंटपीटर्सबर्ग**' कोशमें ऋग्वेदमें 'देवृकामा' होनेकी बात लिखी और वही म. मैक्डोनेल्ड और कीथने अपने 'वैदिक इंडेक्स' में दुहरायी है। पर इन सबका खंडन जर्मन विद्वानोंने किया है। इसका आशय यह है- Rigvedic देवृकामा is in fact a fiction of Bothlingk-Roth, accepted only by uncritical writers. अर्थात् 'बोथलिंग और राथकी अदूरदृष्टिसे ऋग्वेदमे 'देवृकामा' पद है, ऐसा लिखा गया और **अविवेकी लेखकोंने उसेही सत्य माना !!!**' अर्थात् ऋग्वेदमें 'देवृकामा' पद नहीं है, ऋग्वेदका पद '**देवकामा**' ही निःसंदेह है।

अर्थात् 'सेंटपीटर्सबर्ग' कोशमें उक्त विद्वानोंकी अशुद्धि हुई। उसीके आधारसे वैदिक इंडेक्सवालोंने अशुद्धि की। परंतु आगे जब जर्मन पंडितोंकी खोजसे सिद्ध हुआ कि ऋग्वेदका पद '**देवकामा**' ही है, तबसे किसी भी युरोपियन पण्डितने ऋग्वेदमें 'देवृकामा' पदका स्वीकार नहीं किया। पं० मोक्षमूलरने अपने दोनों ऋग्वेदके संस्करणोंमें उक्त कारणही ऋग्वेदमें '**देवकामा**' ही छापा है। इनके सामने 'सेंटपीटर्सबर्ग' कोश था ही, पर वह अशुद्ध बातको कैसे मानता ?

म० रॉथकीभी व्यवस्था देखिये। इसने अथर्ववेद जर्मनीमें बर्लिनमे सन १९२४में ब्लाक बनवाकर बडी मिहेनतसे छापा। इसके पृ० ३०८ पर अथर्ववेद १४।२।१७-१८ ये मंत्र आते हैं। इनमें अथर्ववेदका पाठ दोनों मंत्रोंमें '**देवकामा**' दिया है। यही बात भारतवर्षमें शिलाप्रेसपर छपे अथर्ववेदकी है। इसमें भी '**देवकामा**' ही अथर्ववेदपाठ दिया है।

ये ही म. राथ अपनी इस भूमिकामें पृष्ठ XVI (१६) पर ऋग्वेदका पाठ 'देवृकामा' और अथर्ववेदका 'देवकामा' लिखते हैं! पर यह इनकी खोज अशुद्ध सिद्ध हुई है। क्योंकि ऋग्वेदका पद 'देवृकामा' है, ऐसा अब कोई भी मानता नहीं। पर इस म० राथके विचार में अथर्ववेद में भी '**देवकामा**' ही है!

जो यह इन के कारण गडबड हुई, वह अब यूरोपमें शान्त हुई है। और सब युरोपके विद्वान् एकमतसे ऋग्वेदका पद '**देवकामा**' मानने लगे हैं। पर जो एक बार उक्त सेंट पीटर्सबर्ग कोश में अशुद्ध छपा, यह वैसा ही रहा है। पर वह अशुद्ध है, ऐसा सब जानते हैं। इसलिये यह किसीके माननेयोग्य नहीं हैं। पदपाठ, सूचीकार और कोशकारोंकी यह साक्षी है और इनसे ऋग्वेदका पाठ '**देवकामा**' ही सिद्ध होता है।

## (१०) अथर्ववेद में दोनों पाठ हैं।

हमने यहा ऋग्वेदके १०।८५।४४ वाले मंत्रके पाठ के विषय में ही लिखा है। अथर्ववेदके १४।२।१७-१८ वाले मंत्रों के विषय में दोनों प्रकारके पाठ मिलते हैं, वह विटनीने अपने अथर्वानुवाद में इन मंत्रोंपर लिखा है, 'Our Mss. are divided in C between देवृकामा and देवकामा, the majority having, with RV and Ppp, the latter, which is therefore more probably the true reading.' (विटनी अथर्वानुवाद पृ. ७५६-७५७)

अथर्ववेदके पाठ के विषय में यहां हमें विशेष लिखनेकी आवश्यकता नहीं है। क्योंकि यहां बिचार ऋग्वेदके पाठके विषय मे चल रहा है और पूर्वोक्त विवेचन से यह निःसंदेह सिद्ध हुआ कि ऋग्वेद में '**देवकामा**' ही पद है और 'देवृकामा' पद ऋग्वेद में नही है।

## (११) देवृकामा का अर्थ।

किसी वेदमें 'देवृकामा' पद हो वा न हो, पर यदि किसी जगह 'देवृकामा' ऐसा पद आया, तो उसका अर्थ क्या करना चाहिये, इसका विचार हम अब करते है। ऋग्वेदमें '– कामा' जिनके अन्तमें पद हैं, ऐसे ये पद है—

**ऋग्वेदमें**—

अन्न-काम १०।११७।३
क्षेम-काम १०।९४।१२
देव-काम २।३।९; ३।४।९; ४।२५।१; १०।४२।९,१६०।३
देवकामा १०।८५।४४
पुत्र-काम १०।१८३।१-२
यज्ञ-काम १०।५१।५
रायस्काम १।७८।२; ७।३२।३, ४२।६

श्रवस्काम ८।२।३८

सोम-काम १।१०४।९; ८।६१।२

**अथर्ववेदमें—**

देवृ-कामा (देव-कामा) १४।२।१७–१८

देव-काम ७।५२।६; २०।८९।९; ९६।३

पुत्र-कामा ११।१।१

पुत्र-काम्या ६।८१।३

यज्ञ-कामा ७।२९।१; १०८।१

सोम-काम २०।८।२; ३४।१७; ११३।२

**यजुर्वेदमें—**

देव-काम २९।९

इतने पद सब वेदोंमें ' काम ' जिनके अन्तमें है, ऐसे है। इनके अर्थ सुगम हैं, इसलिये हरएकके ध्यानमें आ सकते है। **' पुत्रकामा '** में **' पुत्रके विषयमें कामवासना की तृप्ति अथवा पुत्रके साथ नियोगकी इच्छा '** ऐसा अर्थ कोई नहीं कर सकता। **यज्ञकाम , सोमकाम,** आदि स्थानों पर तो स्त्रीपुरुषके कामसंबंधका भाव निश्चयसे ही नहीं है। अतः **'देवृकामा'** पदका अर्थ जो अजमेरमुद्रित संस्कारविधिमें (पृ. १३८ पर) 'देवरकी कामना करनेवाली **अर्थात् नियोगकी भी इच्छा करनेवाली ।'** ऐसा जो नियोगका भाव बतानेवाला किया है, उसके लिये वेदमंत्रमें कोई प्रमाण नहीं है। 'देवरकी कामना करनेवाली' इतना अर्थ ठीक होगा और इसका अर्थ इतनाही होगा कि **'पतिके घरमें देवर रहें, ऐसी इच्छा करनेवाली '** इससे अधिक नियोगपरक इन पदोंका अर्थ करना अयोग्य है। पतिके लिये भाईबहिने रहें, यह इच्छा योग्य ही है। जैसा **' पुत्रकामा '** पदमें कामविषयक भाव नहीं है, वैसाही **' देवृकामा '** में भी कामविषयक भाव नहीं है। हरएक वधूवरको अवश्यही नियोगकी प्रतिज्ञा विवाहमें करनी चाहिये, ऐसा कहना अनुचित है। इतनी नियोगकी आवश्यकता नहीं है।

## (१२) वधू नियोगकी इच्छा कबसे करे ?

यह मंत्र अजमेर-मुद्रित संस्कारविधिमें पाणिग्रहणके पूर्व आया है और यहां ' देवृकामा ' के कल्पित अशुद्ध पदका अर्थ **'' नियोगकी इच्छा करनेवाली हो ''** ऐसा किया है !! यहां **' देवकामा '** पद शुद्ध है ओर उसका अर्थ **' ईश्वरकी भक्ति करनेवाली हो, '** ऐसा शुद्ध है। परंतु अजमेरवालोंने अशुद्ध पद छापकर उसका अर्थ भी अशुद्ध ही किया है !!

परंतु बारबार सूचना करनेपर भी इस शुद्ध अर्थका स्वीकार वहां नहीं किया जाता है और प्रतिवार **'नियोगकी इच्छा करनेवाली हो '** यही अर्थ मुद्रित किया जाता है !! इसलिये पूछना आवश्यक है कि **नवविवाहित वधू प्रथम दिवस से ही नियोगकी इच्छा करती रहे,** या कुछ पतिके साथ समागम करनेके लिये बीचमें उनको फुरसत मिलती रहेगी? प्रतिदिन पतिके साथ रहकर पतिव्रताधर्मका पालन करती हुई यह वधू प्रतिदिन ' नियोगकी भी इच्छा करती रहे, ' यह कैसे हो सकेगा ? इस विषयमें पाठकोंको और विवाह करनेवालोंको विशेष विचार करना चाहिये।

## (१३) अब करना क्या चाहिये ?

अब यही करना चाहिये कि ऋग्वेद १।८५।४४ **'अघोरचक्षु '** वाले मंत्र मे अजमेर वैदिक यंत्रालयमुद्रित संस्कारविधि में जो **' देवृकामा '** मुद्रित हुआ है, वहां **' देवकामा '** छापना चाहिये और उस पदका अर्थ 'ईश्वर की भक्ति करनेवाली ' करना चाहिये, तथा वहां से नियोगपरक अर्थवाला वाक्य हटा देना चाहिये। इसी यंत्रालयमुद्रित मूल ऋग्वेद में भी इस मंत्र में 'देवृकामा' छपा है, वहा **' देवकामा '** छापना चाहिये।

जो अपने ग्रंथों में अशुद्ध पाठ रखनेके इच्छुक नहीं हैं, उनको श्रीमती सार्वदेशिक आर्य प्र० सभा, देहली के पास इस विषयको अपनी संमति अति शीघ्र लिखकर भेजनी चाहिये। आशा है ' सत्यका ग्रहण और असत्यका त्याग करनेको सदा उद्यत रहनेवाले ' वैदिकधर्मी इस सचाईका अति शीघ्र ग्रहण करेंगे और विवाहसंस्कार से अशुद्धिको हटा देंगे।

# संमतियाँ।

ऋग्वेदका पद 'देवृकामा' नही है, 'देवकामा' है, इस लेखके विषयमें संमतियाँ--

(१)

श्री पं० नरदेवशास्त्रीजी, आचार्य, महाविद्यालय, ज्वालापुर (मार्गशीर्ष कृष्ण १० संवत् १९९८ के पत्रमें) लिखते है, आपका देवकामावाला लेख पढा। लेख गंभीर, सुंदर और प्रमाणोंसे परिपुष्ट है। (फिर मार्गशीर्ष कृ० १४ सं. १९९८ के पत्रमें लिखते है-) 'मुझे ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है कि 'देवृकामा' ऋग्वेदका पाठ नहीं है। बहुत देखभाल और गवेषणाके पश्चात् मैं इस निर्णयपर पहुंचा हूं कि 'देवकामा' ही ऋग्वेदमें पाठ है। इसमें मुझे तनिकभी संदेह नहीं है।'

(२)

पं० रामचन्द्रजी, अम्बाला (ता. ९।११।४१ के पत्रमें) लिखते है--'देवृकामाका जो अर्थ अजमेर वैदिक यंत्रालय-मुद्रित संस्कारविधिमें किया है, वह मौकेके विरुद्ध और साधारण बुद्धिके भी विपरीत है। आपने उपकार किया, जो जनताकी आंखें इस त्रुटिकी ओर खोल दीं। (ता. १७।११।४१ के पत्रमें) 'देवकामाका विचार ३० वर्षपूर्व ही मेरे मनमें आया था। मैंने ला० द्वारिकादासजीसे कथा था, उन्होंने आर्यसमाजके प्रतिष्ठित लोगोंसे कहा कि संस्कारविधिसे इस नियोगपरक अर्थको निकल दो। मेरे मतसे यह निश्चित है कि ऋग्वेदमे 'देवकामा' ही है।'

(३)

श्री. संपादक 'आर्यभानु' सोलापुर (पत्र-सं. १३२४ ता. १५।११।४१ में) लिखते है- 'आपका देवकामावाला लेख मिला। अपने यह जो गवेषणा की है, उसे देख पाठक श्रद्धासे नत हो जाता है।' विनीत- सतीश विद्यालंकार।

(४)

श्री. पं० लक्ष्मीनारायणशास्त्री, उपदेशक, श्री स. ध. सभा, नैरोबी (हालमें डेरा गाझीखान) लिखते हैं- 'देवकामावाला लेख पढा। इससे ऋग्वेदमें देवकामा पद है, इसकी सिद्धि होती है। अपने संदिग्ध विषयको निर्णीतावस्थातक पहुंचाया है।'

(५)

श्री. पं. जगन्नाथशास्त्री, न्यायभूषण, संस्कृताध्यापक गवर्नमेंट कालेज, डेरागाजीखां, लिखते हैं- 'ऋग्वेदमें देवकामा पद है, देवृकामा पद ऋग्वेदमें नहीं है। विवाहकालमें नवोढा स्त्री देवरसे सन्तानोत्पत्तिकी कामना करे, यह प्रतिज्ञा सर्वथा धर्मविरुद्ध है।'

(६)

पं० मनोहर विद्यालंकार, तेनाली, जि. गुंटूर लिखते हैं- 'पं. जयदेव शर्माजी और पं. बुद्धदेवजी मीरपुरी आदिका हठ मत है कि जो ऋग्वेदमें देवृकामा है, ऐसा कहते हैं।'

(७)

पं० विश्वामित्रजी, धर्मार्य-सभा, हरचंद्रपुरा, लायलपुर लिखते हैं कि- 'मैं ऋग्वेदमें 'देवकामा' को ही शुद्ध जानता और मानता हूं। मैंने अपनी संस्कारविधिसे नियोगवाले अर्थको काट दिया है।'

(८)

पंडिता शालिनी धारेश्वरजी की संमति- 'विवाहके समय नियोग की प्रतिज्ञा करने की कल्पना हम स्त्रियोंको ठीक नहीं जंचती।

× × ×

[इस तरह सहस्रों संमतियां हैं जो विवाह में नियोग की प्रतिज्ञा करनेके विरुद्ध हैं और ऋग्वेद में 'देवकामा' पद का होना सिद्ध करती हैं।]

# दैवत-संहितापर संमतियाँ।

( १ )

प्राध्यापक श्री **हरि दामोदर, वेलणकरजी**; एम्, ए. कहते हैं-

विभिन्न वैदिक संहिताओं के आलोचनापूर्ण एवं अतीव उपयुक्त संस्करण प्रकाशित करने का अत्यंत प्रशंसनीय कार्य स्वाध्यायमंडलमें चलता ही जा रहा है, पर अब स्वाध्याय-मण्डल के अध्यक्ष के तत्त्वावधान में सम्पादित **दैवतसंहिता** का प्रकाशन इस संस्थाद्वारा हो रहा है। यह दैवत-संहिता कोई स्वतन्त्र वैदिक ग्रंथ नहीं है, अपितु चारों मुख्य संहिताओं से चुनकर किया हुआ संग्रहग्रन्थ है, जिस में सूक्त अलग ढंग से एकत्रित किये है, अर्थात् एक ही देवता के सारे सूक्त [ अग्नि या इन्द्र के सूक्त ] एक ही ग्रन्थ में संग्रहीत कर रखे है। यह तो स्पष्ट ही है कि दैवतसंहिता कई विभागों में प्रकाशित हो सकती है और हर विभाग किसीएक विशिष्ट देवता के अनेक सूक्तों का संग्रह होगा।

अबतक स्वाध्याय-मंडलने चार विभागों का प्रकाशन किया है, जिन में क्रमशः अग्नि, इन्द्र, सोम तथा मरुत् देवता के सूक्त एकत्रित हुए हैं। ऋग्वेद-संहिता मे जिस क्रमसे ये देवता के सूक्त पाये जाते हैं, उसी क्रम से हर विभागमें ये दिये गये है और ये सूक्त भी अत्यंत प्राचीन तथा संख्यामें अधिक है। तदुपरान्त वे सूक्त पाये जाते है, जिन मे दो देवताओं का आवाहन किया है। उसके पश्चात् ऋग्वेद दसों मण्डलोंमें पाये जानेवाले उस उस विभाग के पुनरुक्त मन्त्रभाग दिये है। अन्त में तीन महत्त्वपूर्ण सूचियाँ जोड दी गयी है जैसे-

( १ ) विशिष्ट देवताके सभी मंत्रोंमें जो उपमायें पायी जाती हैं, उन की सूची।

( २ ) विभाग के सभी मंत्रों की सूची और—

( ३ ) उस देवताके सभी मंत्रों में जो विशेषण प्रयुक्त हुए हैं, उनकी सूची। इन्द्र देवताके विभागमें जो इन्द्रके सहचारी देवता हैं, उनके भी विशेषण दिये है तथा इन्द्र के विशेषण भी समास के द्वितीय शब्दों की अकारानुक्रमणी के अनुसार दिये हैं।

इस प्रकार की व्यवस्थासे जो लाभ तथा उपयोगिता सिद्ध होती है, वह स्पष्ट ही है, विशेषतया अनुसंधान करनेवाले विद्यार्थी की दृष्टि से देखनेपर। यदि किसी भी वैदिक देवताके सम्बन्ध में रचे गये विभिन्न सूक्त, जो कि संहिताओंमें अलग अलग स्थानों में उपलब्ध होते है, एक ही ग्रन्थ में इकट्ठे संगृहीत कर रख लिये जायें, तो उस देवताका विस्तारपूर्वक अध्ययन करना बहुत सुगम हो जाता है। देवता के स्वरूप एवं विशेषताओं का सतर्कतापूर्वक, सर्वांगीण अध्ययन करने में उपमासूची तथा विशेषणसूची से बडी भारी सहायता मिल सकती है। पण्डित सातवलेकरजीके अथक परिश्रम और तीव्र लगनके कारण हमें सचमुच आश्चर्य प्रतीत होने लगता है, क्योंकि युद्धजन्य विषम परिस्थितियों में भी वे इस महत्त्वपूर्ण, अत्यंत उपर्युक्त कार्य को बराबर पूर्ण करते जा रहे है। इतने अधिक अनुपात मे ज्ञातव्य बातोंका संग्रह कर के पंडितजीने उसे विद्वानों के सम्मुख रखा है, जिस से हम आश्चर्यचकीत हुए बिना नहीं रह सकते। विद्वान् तथा सहायकर्ता धनाढ्य लोग हर तरह से पंडितजी के प्रयत्नों को प्रोत्साहन देंगे, तो बडी अच्छी बात होगी।

शास्त्री हॉल ह० दा० वेलणकर, M. A.
बंबई नं० ४

( २ )

लोकमान्य स्वर्गीय बाल गंगाधर तिलकद्वारा प्रस्थापित पूनेका प्रसिद्ध मराठी समाचारपत्र '**केसरी**' अपने 'पुस्तक-परीक्षण' स्तम्भ मे स्वाध्याय-मंडलद्वारा प्रकाशित, दैवत-संहिता के संबंधमे इस भांति अपनी राय प्रकट करता है—

पंडित सातवलेकरजी ने अत्यन्त परिश्रमपूर्वक तथा बडी भारी आर्थिक हानि उठाकर हिन्दी भाषामें यह प्रचंड ग्रन्थ प्रकाशित किया है। ऋग्वेद की प्रत्येक देवता के बारे मे ऋग्वेद के ही वचन उद्धृत करके और संहितास्थ मंत्रों की व्यवस्थामें तनिक भी परिवर्तन न करते हुए तथा किसी प्रकार का बिगाड न करके मंत्रद्रष्टा ऋषियों ने उस देवता के संबंधमें क्या कहा है, सो पूर्णतया बतलाने के लिए इस ग्रन्थ-का निर्माण हुआ है। देवताओंका वर्णन करते समय स्वाभाविक रूप से अग्रपूजा का सम्मान अग्नि देवता को, द्वितीय

स्थान इन्द्र देवता को, तीसरा स्थान सोमदेवता को और चतुर्थ भाग मरुद्देवताको दिया है। इस प्रथम भागमें इन्हीं चार वैदिक देवताओंका समावेश किया है और इसके द्वितीय भाग में अश्विनौ, उषा, मित्र, वरुण इत्यादि देवताओंका मन्त्र-संग्रह पाठकोंके विचारके लिए इकट्ठा किया जायगा।

इस ग्रन्थ की रचना इस भाँति हुई है। संपादकजी ने प्रारंभ में उस विशिष्ट देवता के परिचय के तौरपर वेदके ही वचन उद्धृत करके उसके स्वरूप एवं पराक्रमका वर्णन किया है। पश्चात् उस देवता को लक्ष्य में रख वेदों में विद्यमान सभी मंत्रों की अकारादि वर्णानुक्रम से सूची दी गई है। यही इस ग्रन्थ का प्रमुख भाग है।

इसके बाद पुनरुक्त मन्त्र-सूची में दर्शाया है कि उस देवता के वर्णन की पुनरुक्ति कहाँ कहाँ हुई है। तदुपरान्त विशेषणसूची में उस देवता के लिए प्रयुक्त सभी विशेषणों का संग्रह किया है और अन्त में उपमासूची जोड दी है जिस मे उस देवता के बारे मे निर्दिष्ट सभी उपमाओं की तालिका दे दी है। इस तरह इस प्रथम विभाग में अग्नि, इन्द्र, सोम तथा मरुत् देवताओं का संपूर्ण परिचय पाठकों को पढने मिलता है।

चारों वेदों मे अग्नि देवता के लिए लगभग २५०० मन्त्र और इन्द्रदेवता के लिए साढे तीन सहस्र मन्त्र प्रयुक्त हुए हैं। ये सभी मन्त्र अग्नि, इन्द्र, सोम मरुत्, मित्र, वरुण, अश्विनौ, उषा के संबंध में क्या करते हैं, सो देखने के लिए इधर उधर बिखरे हुए मंत्र इस दैवतसंहिता में विविध सूचियोंसहित एकत्र किए गये है और उन मंत्रों के आधार पर उस विशिष्ट देवता के परिचय के नाते प्रारंभ में ही देवता-स्वरूप का अच्छा बोध कराया है। इस प्रकार इकट्ठे मुद्रित इन मंत्रों के अवलोकन से मन्त्रद्रष्टा ऋषियों की विशाल कल्पना, देवता का प्रभावोत्पादक चित्र एवं उस के पराक्रम आदि बातें बिलकुल साफ तौर पर दिखाई देने लगती हैं।

अग्नि की अपेक्षा इन्द्र के पराक्रम विविधरूपी हैं और इस ग्रन्थ के अवलोकन से इस बात का भली भाँति परिचय मिल जाता है कि कैसी जोशीली भाषा में उसके विक्रम का बखान किया गया है, तथा दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि विभिन्न स्थानों में पाये जानेवाले मंत्रों का एक स्थान में निरीक्षण करने से कई शब्दों का गूढसा प्रतीत होनेवाला अर्थ आसानी से सुलझाया जाता है और वैदिक मंत्रों का रहस्य ध्यान में आने लगता है। अग्नि, इन्द्र आदि शब्दों के जो विविध अर्थ देवता-परिचय-विभाग मे दिये हैं, उन पर दृष्टिपात करने से, ऋषियों की कल्पनाविपुलता पर अचंभा होने लगता है।

मरुद्देवता सैनिक-संगठन एवं सामर्थ्य की देवता हैं और इस देवता के स्तुतिके मन्त्र विशेष अर्थबोधक भी हैं, तथा मरुतों के गुण दर्शाने के लिए प्रयुक्त विशेषण अधिकतया सैनिक-संगठन एवं पराक्रमको दर्शानेवाले हैं। पं० सातवलेकरजीने देवतापरिचय-विभाग में इस संबंध में अधिक स्पष्टीकरण किया है।

साधारण रूप से ऋग्वेदके वर्णित अग्नि, इन्द्र, सोम तथा मरुत् चारों देवताओंके संबंध में वेदों मे जो कुछ भी कहनेयोग्य है, वह साराका सारा इस दैवत-संहिता ग्रन्थ के प्रथम भाग में समाविष्ट किया गया है और द्वितीय भाग में इसी भाँति मित्र, वरुण, उषा, प्रजापति आदि देवताओं के संबंध में सविस्तर वर्णन आनेवाला है। इससे पं० सातवलेकरजी के अद्भुत प्रचार-परिश्रम की एवं अगाध बुद्धिमत्ता तथा कल्पनाचातुरीका परिचय मिलता है। वैदिक ग्रन्थोंके बारेमें पौर्वात्य पंडितके इस तरह के परिश्रमोंका यह पहला ही उदाहरण है. इसलिए इसे प्रोत्साहन देना अभीष्ट है।

---

## ' देवकामा ' पर सम्मति ।

जगदीशपुर-गगाहा ( जि० गोरखपुर ) आश्विन कृष्ण १३ सं० २००० विक्रमीय ।

प्रणाम ! निःसंदेह आप का कार्य पवित्र, श्लाघ्य एवं स्तुत्य है। परमेश्वर आप जैसे महात्माओं को यदि अधिक मात्रा में उत्पन्न करें, तो अवश्य वैदिक धर्म की विजयवैजयन्ती का विश्वमें अचिरात् प्रसार हो सकता है।

आप का भेजा हुआ ' देवकामा ' वाला लेख पढा, तथा अपने इष्ट मित्रों को भी पढने को दिया। **बहुमत आपकी ही ओर है। किसी को भी विवाह-काल में ' देवृकामा ' पढने की इच्छा नहीं होती।** मुझे भी यही उचित जंचता है। आप ने इसे प्रकाशित कर समाजको अन्धकार की गर्त से बाहर किया है। एतदर्थ संपूर्ण समाज आप का कृतज्ञ रहेगा।

मेरे यहां न्यूनातिन्यून वेदोंकी दस प्रतियां चाहिये। वेदोंके ग्राहक हो गये हैं। भवदीय— **विन्ध्याचल शर्मा।**

ॐ

# स्वाध्याय-मण्डल

(Registered)

औंध, (जि. सातारा)

द्वारा प्रकाशित

## हिंदी पुस्तकोंका

# सूचीपत्र

स्वाध्याय-मण्डल, औंध, ( जि० सातारा )

( Post- AUNDH, Dt. Satara. )

Station- RAHIMATPUR ( M. S. M RY. )
[Via Poona.]

संवत् २०००, शक १८६५, सन् १९४३

( १-१२-१९४३ )

ॐ

# स्वाध्याय-मण्डल ।

## पुस्तक-विक्रीके नियम ।

(१) उधार पुस्तक देना बन्द किया है। सब पुस्तक वी० पी० द्वारा अथवा पेशगी मूल्य आनेपर रजिष्ट्री डाकसे अथवा रेलसे भेजे जाते हैं। पैकिंग अच्छा करने का विशेष ख्याल किया जाता है।

(२) व्यौपारियोंके लिये निम्नलिखित प्रकार कमिशन दिया जाता है—

१००) रु० के पुस्तकोंपर २०) फी सैकडा
५०) ,, ,, ,, १५) ,, ,,
२५) ,, ,, ,, १०) ,, ,,

[२५) रु० से कम मूल्य की पुस्तकोंपर कमिशन नही मिलेगा।]

(३) प्राय. एक रुपयाके पुस्तकों के लिए तीन या चार आने डाकव्यय लगता है। किसी अवस्थामें कुछ न्यून वा अधिक भी होता है। परन्तु साधारण अनुमान यही है। पुस्तकों का जो मूल्य इस सूचीपत्रमें लिखा है, वह डाकव्यय के विना है। वी० पी० मंगानेवालों को पुस्तको के मूल्य के अतिरिक्त उक्त हिसाबसे डाकव्यय देना पडेगा। किसी कारण भी वी० पी० मंगवानेवालों को कमिशन नहीं मिलेगा और डाकव्यय भी माफ नहीं होगा।

(४) कोई महाशय दूसरे के नामपर वी० पी० भेजने को न लिखें। हमारा अनुभव है कि इस प्रकार की वी० पी०याँ स्वीकृत नही होती। इसलिये ऐसी वी० पी० नहीं भेजी जायगी।

(५) बदलेमें पुस्तक नही दिये जाते।

(६) जो लोग २५) रु० अथवा अधिक मूल्य की पुस्तकें, पुस्तकों का सब मूल्य पेशगी म० आ० द्वारा भेजकर मंगवायेंगे, उनको नियमानुसार कमिशन मिलेगा। इनके लिये आधा प्रेषण-व्यय माफ होगा।

वी० पी० से पुस्तकें मंगानेवालों को पूरा डाकव्यय या रेलचार्ज देना पडेगा। पुस्तकों का वजन अधिक हो, तो रेलसे मंगाना अच्छा है। पेशगी मूल्य प्राप्त होनेपर ही ग्राहकों की पुस्तकें To pay रेलपार्सलसे भेजी जायगी।

(७) एक रु० से कम मूल्य की पुस्तके वी० पी० से मंगवानेमें डाकव्यय दुगना देना पडता है। १) एक रु० से कम मूल्य की पुस्तकें होंगी, तो ब्रिटिश पोस्टके टिकट भेजकर मंगानेमें लाभ है। उदाहरण- दो आनेकी पुस्तकपर वी० पी० व्यय।=) पांच आने लगता है और एक रु० के पुस्तकोंपर भी।-) लगता है। पुस्तक मंगानेवाले इसका अवश्य विचार करें।

(८) पत्रव्यवहार कृपया संस्कृत, हिंदी या आर्य भाषा, मराठी या अंग्रेजी में कीजिये। अन्य भाषाओं के पत्र यहां पढे नहीं जाते। यहाँ उर्दू पढनेवाला कोई नही है।

(९) वापस आई हुई पुस्तकें पुनः मंगवानी हों, तो डाकव्यय दुगना देना पडेगा। एक समय भेजी हुई पुस्तकें पुनः किसी भी कारण वापस नही ली जायगी।

(१०) **वैदिक संपत्ति, अक्षरविज्ञान, Sun-Adoration** और **उपनिषन्महावाक्यकोश** ये पुस्तकें **स्वाध्याय-मण्डल**द्वारा प्रकाशित न होनेसे इनपर तथा **संस्कृत-पाठमाला, महाभारत, भगवद्गीता (पु० बो०)** इन पुस्तकोंपर किसीको भी कमीशन नहीं मिलेगा।

**मंत्री- स्वाध्याय- मण्डल, औंध, (जि० सातारा)**

## केन उपनिषद् ।

केन-उपनिषद्का मनन, उपनिषद्-ज्ञानका महत्त्व, 'केन' शब्दका महत्त्व, उपनिषदोंमें ज्ञानका विकास, अग्निशब्दका भाव, शांतिमन्त्रोंमें तत्त्वज्ञान, इत्यादि विषय इस पुस्तकमें आ गये है। मू० १।) रु०, डा० व्य० ।=)

## शतपथ-बोधामृत ।

शतपथके बोधवचनोंका संग्रह । मूल्य ।) डा. व्य -)

## धर्मशिक्षाके ग्रन्थ ।

बालक और बालिकाओं की पाठशालाओं में तथा घरोंमें बालबच्चोंकी धार्मिक पढाईके लिये ये ग्रन्थ विशेष रीतिसे तयार किये है।

### बालकोंकी धर्म-शिक्षा ।

( १ ) **प्रथम भाग,** प्रथम श्रेणिकी धर्मशिक्षाके लिये, मू० -) डा. व्य. -)

( २ ) **द्वितीय विभाग,** द्वितीय श्रेणिकी धर्मशिक्षाके लिये, मू० =) डा. व्य.-)

( ३ ) **वैदिक पाठमाला।** तृतीय श्रेणिकी धर्मशिक्षाके लिये, मू० ≡)डा. व्य.-)

# श्रीमद् भगवद्गीता ।

**पुरुषार्थबोधिनी** भाषाटीका समेत।

( टीका-लेखक पं० श्री० दा० सातवलेकर )

इस '**पुरुषार्थबोधिनी**' भाषाटीकामें यह बात दर्शाई गयी है कि वेद, उपनिषद् आदि प्राचीन ग्रन्थोंके हि सिद्धात गीतामें नये ढंगसे किस प्रकार कहे है। **गीता**- के १८ अध्याय तीन विभागों में विभाजित किये हैं और उनकी एकही जिल्द बनाई है। पृष्ठसंख्या १२५०, मू० ९) रु०, डाक-व्यय १॥) रु०। म० आ० से ९) रु० भेजनेवालोंको डाकव्यय माफ होगा !

## भगवद्गीता-समन्वय ।

यह पुस्तक श्रीमद्भगवद्गीता का अध्ययन करनेवालोंके लिये अत्यंत आवश्यक है। '**वैदिक धर्म**' के आकार के १३६ पृष्ठ, चिकना कागज, सजिल्द का मू० १॥) रु०, डा० व्यय ।=)

## भगवद्गीता-श्लोकार्धसूची ।

इसमे श्रीमद्भगवद्गीताके श्लोकार्धोंकी अकारादिक्रमसे **आद्याक्षरसूची** है और उसी क्रमसे **अन्त्याक्षरसूची** भी है। मूल्य केवल ।=), डा० व्य० =)

## भगवद्गीता-लेखमाला ।

'**गीता**' मासिकमें प्रकाशित गीताविषयक लेखोंका यह संग्रह है। इसके छः भाग तैयार है, जिनका मू० ५) रु० और डा० व्यय १॥) है।

**गीता-समीक्षा ।** मू० =), डा० व्य० -)

## योगसाधन-माला ।

### १. संध्योपासना ।

योगकी दृष्टिसे संध्या करनेकी प्रक्रिया ( इसमें हमारा '**संध्याका अनुष्ठान**' यह पुस्तक संमिलित है।) मू०१॥), डा. व्य. ।=) ( समाप्त है। नया संस्करण छप रहा है। )

### २. वैदिक प्राणविद्या ।

प्राणायाम करने के समय जिस प्रकार 'मनकी भावना' रखनी चाहिए, उसका वर्णन इस पुस्तकमें है। मू० ॥) डा. व्य. =)

### ३. ब्रह्मचर्य ।

इस सचित्र पुस्तकमें 'अथर्ववेदीय ब्रह्मचर्य-सूक्त' का विवरण है। ब्रह्मचर्य-साधन और योगसाधन के योगासन तथा वीर्यरक्षण के अनुभवसिद्ध उपाय इस पुस्तकमें बताये हैं। मू० १) रु. डा. व्य. ।=)

### ४. आसन ।

इसमे आसनोंका वर्णन चित्रोंके समेत है। मू० २) रु., डा. व्य. ।≡)

**आसनोंका चित्रपट** १७×२० इंच कागजपर मू० ≡) डा. व्य. -)

### ५. सूर्यभेदन-व्यायाम ।

( सचित्र ) बलवर्धक योग के व्यायाम। मू० ॥) डा० व्य०=)

### ६. इन्द्रशक्तिका विकास।

मनुष्यमात्रमें इन्द्रशक्ति है, परंतु वह इतनी जाग्रत नहीं है। उसका संवर्धन करनेकी पद्धति इसमें दर्शायी है। मू० ॥) और डा० व्य० =)

## अथर्ववेदका सुबोध भाष्य ।

अथर्ववेद के १ से १८ काण्ड तीन पक्की जिल्दोंमें तैयार है।

| | | |
|---|---|---|
| १ से ५ काण्ड तक ( सजिल्द ) | मू० ८) | डा० व्यय १॥) |
| ६ से १० ,, ,, | ८) | १॥) |
| ११ से १८ ,, ,, | ८) | १॥) |

( तृतीय विभाग समाप्त है । पुनः छप रहा है । )

## आगम-निबंध-माला ।

वेद अनंत विद्याओं का समुद्र है । इस वेदसमुद्रका मंथन करनेसे अनेक 'ज्ञानरत्न' प्राप्त होते हैं, इन रत्नोंकी यह माला है।

| | मू० | डा०व्य० |
|---|---|---|
| १ वैदिक राज्यपद्धति । | ।-) | -) |
| २ मानवी आयुष्य । | ।) | -) |
| ३ वैदिक सभ्यता । | ॥।) | =) |
| ४ वैदिक स्वराज्य की महिमा । | ॥) | =) |
| ५ वैदिक सर्पविद्या । | ॥) | =) |
| ६ वेदमें चर्खा । | ॥) | =) |
| ७ शिवसंकल्प का विजय । | ॥) | =) |
| ८ तर्कसे वेदका अर्थ । | ॥) | =) |
| ९ वेदमें रोगजंतुशास्त्र । | ≡) | -) |
| १० ब्रह्मचर्यका विघ्न । | =) | -) |
| ११ वेदमें लोहेके कारखाने । | ।-) | -) |
| १२ वेदमें कृषिविद्या । | ≡) | -) |
| १३ इंद्रशक्तिका विकास । | ॥) | =) |

## देवता-परिचय-ग्रन्थ-माला ।

| | | | |
|---|---|---|---|
| १. रुद्रदेवताका परिचय । | मू० | ॥) | डा० व्य० =) |
| २. ऋग्वेदमें रुद्रदेवता । | " | ॥=) | " " =) |
| ३. देवताविचार । | " | ≡) | " " -) |
| ४. वैदिक अग्निविद्या । | " | १॥) | " " ।-) |

## वेदका स्वयं-शिक्षक ।

जो पाठक प्रति दिन आधा घंटा इसके अध्ययन के लिये देंगे, उनका प्रवेश वेदके मंदिरमें सुगमतासे हो सकता है । इस समय **दो भाग तैयार हैं** । प्रति भाग का मूल्य १॥), डा० व्यय ।=) [प्रथम भाग समाप्त है और नया संस्करण छप रहा है । ]

ऋग्वेदानुक्रमणी

## ऋगर्थदीपिका ।

पं० माधवभट्टकी माधवानुक्रमणीका मूल संस्कृत श्लोकोंके साथ यह अनुवाद पं० जयदेव शर्मा विद्यालंकार अजमेरने किया है । एक दृष्टिसे ऋग्वेदभाष्यका एक भाग होकर पूर्ण भाष्यका यह एक रहस्य-निदर्शक स्वतंत्र ग्रंथ कहा जा सकता है । मू० ३) रु.डाकव्यय ।॥) रु.

## छूत और अछूत ।

इस पुस्तक मे श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास, धर्मसूत्र आदिके प्रमाणोंसे छूताछूतका विचार किया है ।

प्रथम भाग मूल्य १) डा० व्य० ।-)

द्वितीय भाग मूल्य ॥) " " ।)

# संस्कृत-पाठ-माला ।

### चौवीस विभागोंमें

**संस्कृत-भाषाका अध्ययन करनेका सुगम उपाय ।**

**संस्कृत-पाठ-माला के अध्ययनसे लाभ—**

( १ ) अपना कामधन्धा करते हुए फुरसद के समय आप किसी दूसरे की सहायताके विना इन पुस्तकोंको पढकर अपना संस्कृत का ज्ञान बढा सकते है। ( २ ) प्रति दिन एक घंटा पढने से एक वर्ष के अन्दर आप रामायण-महाभारत समझने की योग्यता प्राप्त कर सकते है। ( ३ ) पाठशालामे जानेवाले विद्यार्थी भी इन पुस्तकोंसे बडा लाभ प्राप्त कर सकते है।

प्रत्येक पुस्तकका मूल्य ।=) छः आने और डा० व्य० =)

| | | |
|---|---|---|
| ३ पुस्तकों का | " १) | " " " ।) |
| १२ पुस्तकों का | " ४) | " " " ॥) |
| २४ पुस्तकों का | " ६॥) | " " " ॥=) |

## श्रीमद्भगवद्गीता ।

( प्रथम भाग )

( लेखक- कर्मयोगी श्रीगणेशानन्दजी गीतार्थी, प्रयाग । )

इस पुस्तक में विद्वान् लेखकने प्रसिद्ध कर्मयोगी श्रीमायानंदजी महाराज की पद्धति से भगवद्गीता का विवरण किया है । इस अर्थ के देखनेसे पाठक विज्ञान के नवीन क्षेत्रमें अवतीर्ण होंगे । पृष्ठसंख्या १४०, मू० १), डा० व्य० ॥)

# संपूर्ण महाभारत।

संपूर्ण १८ पर्व महाभारत पक्की दस जिल्दों में तैयार है और इसका मू० ६५) रु० रखा गया है। आपसे रुपया आतेही सब पुस्तकें आपको रेलपार्सलद्वारा हमारे व्ययसे भेजेंगे, जिससे आपको पुस्तक सुरक्षित पहुचेंगे। ऑर्डर भेजते समय अपने रेलस्टेशन का नाम अवश्य लिखे।

**सूचना–** महाभारतका कोईभी फुटकर पर्व आप मंगा सकते हैं। डाकव्ययसहित मूल्य भेज दीजिये। महाभारत वी. पी. से नहीं भेजा जाता।

### महाभारत की समालोचना।

दो भाग। प्रत्येक भागका मूल्य ॥), डा० व्य० ।-)

# महाभारत।

## आर्योंके विजयका प्राचीन इतिहास।

| पर्वका नाम | मूल्य | डाकव्यय |
| --- | --- | --- |
| १. आदिपर्व | ६) | १।) |
| २. सभापर्व | २॥) | ।॥) |
| ३. वनपर्व | ८) | १॥) |
| ४. विराटपर्व | २) | ॥) |
| ५. उद्योगपर्व | ५) | १।) |
| ६. भीष्मपर्व | ४॥) | १) |
| ७. द्रोणपर्व | ७॥) | १॥) |
| ८. कर्णपर्व | ३॥) | १) |
| ९ शल्यपर्व | २॥) | ॥।) |
| १०. सौप्तिकपर्व | ॥।) | ।-) |
| ११. स्त्रीपर्व | ॥।) | ।-) |
| १२. शांतिपर्व— | | |
| राजधर्मपर्व | ४) | १) |
| आपद्धर्मपर्व | १॥) | ॥) |
| मोक्षधर्मपर्व | ६) | १।) |
| १३. अनुशासनपर्व | ६) | १।) |
| १४. आश्वमेधिकपर्व | २॥) | ॥) |
| १५. आश्रमवासिकपर्व | १) | ।-) |
| १६. मौसलपर्व<br>१७. महाप्रास्थानिक पर्व<br>१८. स्वर्गारोहणपर्व | १) | ।=) |

सचित्र

# वाल्मीकि रामायण।

**बालकाण्ड, अयोध्याकांड** ( पू० ) और **सुदरकांड** तैयार है। **अयोध्याकाण्ड** ( उत्तरार्ध ) छप रहा है।

रामायणके इस संस्करणमें पृष्ठ के ऊपर श्लोक दिये हैं, पृष्ठ के नीचे आधे भाग में उनका अर्थ दिया है और आवश्यक स्थानों में विस्तृत टिप्पणियां दी है। जहां पाठ के विषय में सन्देह है, वहां हेतु दर्शाकर सत्य पाठ दर्शाया है।

इन काण्डोंमें रंगीन चित्र हैं और सादे चित्र कई हैं। जहां तक की जा सकती है, वहां तक चित्रोंसे बडी सजावट की है।

### इसका मूल्य।

सात काण्डोंका प्रकाशन १० भागोंमें होगा। प्रत्येक भाग करीब करीब ५०० पृष्ठोंका होगा। प्रत्येक भाग का मूल्य ३) रु० तथा डा० व्य० रजिस्ट्रीसमेत ॥=) होगा। यह सब व्यय ग्राहकों के जिम्मे रहेगा। प्रत्येक ग्रन्थ अधिक से अधिक तीन महीनों में प्रकाशित होगा। इस तरह सम्पूर्ण रामायण दो या ढाई वर्षोंमें ग्राहकों को मिलेगी। प्रत्येक ग्रन्थ का मूल्य ३) है, अर्थात् सब दसों विभागों का मूल्य ३०) और सब का डा० व्यय ६॥) है।

# सूर्य-नमस्कार।

श्रीमान् **बालासाहेब पंत, B. A , प्रतिनिधि, राजासाहब, औंध** रियासत, इन्होंने इस पुस्तकमें सूर्य-नमस्कार का व्यायाम किस प्रकार लेना चाहिये, इससे कौनसा लाभ होता है और वह क्यों, सूर्यनमस्कार का व्यायाम लेनेवालों के अनुभव, सुयोग्य आहार किस प्रकार होना चाहिए, योग्य और आरोग्यवर्धक पाकपद्धति, सूर्यनमस्कारोंके व्यायाम से रोगोंको प्रतिबन्ध कैसा होता है, आदि बातोंका विस्तारसे विवेचन किया है। पृष्ठसंख्या १४० मू० केवल ॥) और डा० व्य० =) दस आनेके टिकट भेजें।

**सूर्यनमस्कारोंका चित्रपट साईज १०''×१५''**
मूल्य -॥) डा. व्य. -)

# दैवत-संहिता ।

## प्रथम भाग तैयार है, द्वितीय भाग छप रहा है।

दैवत-संहिता में प्रत्येक देवता के मन्त्र एकही स्थानपर इकट्ठे किए हुए है। आज वेदकी जो संहिताएँ उपलब्ध है, उनमें प्रत्येक देवताके मन्त्र इधरउधर बिखरे हुए पाये जाते हैं। एकही जगह उन मन्त्रोंको इकट्ठा करके यह दैवतसंहिता बनवायी गयी है। यह दैवत-संहिता तीन विभागोंमें प्रकाशित होनेवाली है। प्रथम भाग तैयार हो गया है, जिसमें (१), अग्नि (२), इन्द्र (३), सोम तथा (४) मरुत् इन देवताओंके मंत्रोंका एकत्र संग्रह है

| देवत | मंत्रसंख्या | पृष्ठसंख्या | मूल्य | डाकव्यय |
|---|---|---|---|---|
| १. अग्निदेवता | २४८३ | ३४६ | ३) रु. | ।।।) |
| २. इन्द्रदेवता | ३३६३ | ३७६ | ३) रु. | ।।।) |
| ३. सोमदेवता | १२६१ | १५० | २) रु. | ।।) |
| ४. मरुद्देवता | ४६४ | ७२ | १) रु | ।=) |
| | ७५७१ | ९४४ | ९) रु. | २।=) |

इस प्रथम भाग का मू. ५) रु० और डा. व्य १॥) है।

इस मे प्रत्येक देवता के मूल मन्त्र, पुनरुक्त-मंत्रसूची, उपमा-सूची, विशेषणसूची तथा अकारानुक्रम से मंत्रोंकी अनुक्रमणिका का समावेश तो है, परंतु कभी कभी उत्तरपदसूची या निपात-देवतासूची इस भाँति अन्य भी सूचीयाँ दी गयी है। इन सभी सूचीयों से स्वाध्यायशील पाठकों की बडी भारी सुविधा होगी।

संपूर्ण दैवतसंहिताके इसी भाँति तीन विभाग होनेवाले है और प्रत्येक विभाग का मूल्य ५) रु. तथा डा. व्य. १॥) है। पाठक ऐसे दुर्लभ ग्रन्थ का संग्रह अवश्य करे। ऐसे ग्रन्थ बारबार मुद्रित करना संभव नही और इतने सस्ते मूल्य में भी ये ग्रन्थ देना असंभव ही है।

# वैदिक संपत्ति।

( पं० रघुनंदनशर्माजी लिखित )

यदि आपको अपने धर्मका अच्छी प्रकार अध्ययन करना है, तो आप यह पुस्तक मंगवाइये। यह पुस्तक आप प्रारम्भ से अन्ततक पढिये। एक बार यह पुस्तक आप पढेंगे, तो इसे आप छोड नहीं सकते। यह पुस्तक अपने साथ आजन्म रहने योग्य है।

**वैदिक सम्पत्ति।** मू० ६) रु०, डा० व्य० १।) रु० मिलकर ७।) रु०

**अक्षर-विज्ञान।** मू० १) डा० व्य० ।=) मिलकर १।=) रु०

# उपनिषद्वाक्यमहाकोश।

( पं० शम्भूशास्त्री साधले रचित )

पूर्वार्ध तथा उत्तरार्धसहित इस ग्रंथमें लगभग २४० उपनिषदोंके वेदान्त-योग-याग-परमार्थसाधक ऐसे ४०००० से अधिक वाक्य अकारादिक्रमसे मुद्रित हैं। ( मू० १२), डा० व्य० १॥)

# Sun Adoration

( by Shriman Rajasaheb of Aundh. )

One who performs SURYA NAMASKAR Exercise daily, as advised in this book, will be unaffected by any disorder of body & mind.

The book contains 19 chapters, 31 full-page illustrations. Pages 200, 5th Edition, Price Re. One Postage 0--6--0 extra.

SURYA NAMASKAR Chart, Price Ans. 2 Postage one Anna.

### यजुर्वेदकी

# चार संहिताएं।

| | मूल्य | डा.व्य. |
|---|---|---|
| १ काण्व-संहिता (शुक्ल-यजुर्वेद)तैयार है। | ३) | ।।।) |
| २ मैत्रायणी संहिता ,, ,, | ५) | १) |
| ३ काठक संहिता ,, ,, | ५) | १) |
| ४ तैत्तिरीय संहिता (कृष्ण-यजुर्वेद) (छप रही है) | ५) | १) |
| | १८) | ३।।।) |

वेदकी इन चारों संहिताओंका मूल्य १८) है, डा. व्य. ३।।।) है अर्थात् २१।।।) डा व्य. समेत है। परंतु जो ग्राहक पेशगी मूल्य भेजकर ग्राहक बनेंगे, उनको ये चारों संहिताएं १८) रु० में दी जायगीं। डाकव्यय माफ होगा।

—मंत्री, स्वाध्याय-मंडल, औंध (जि. सातारा.)

# दैवत-संहिता ।

## प्रथम भाग तैयार है । द्वितीय भाग छप रहा है ।

आज वेद की जो संहिताएँ उपलब्ध हैं, उन में प्रत्येक देवता के मन्त्र इधरउधर बिखरे हुए पाये जाते हैं । एक ही जगह उन मंत्रों को इकट्ठा करके यह **दैवत-संहिता** बनवायी गयी है । प्रथम भाग में निम्न लिखित ४ देवताओंके मंत्र हैं-

| देवता | मंत्रसंख्या | पृष्ठसंख्या | मूल्य | डाकव्यय. | देवता | मंत्रसंख्या | पृष्ठसंख्या | मूल्य | डाकव्यय |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ **अग्निदेवता** | २४८३ | ३४६ | ३) रु. | ॥।) | ३ **सोमदेवता** | १२६१ | १५० | १) रु. | ॥) |
| २ **इंद्रदेवता** | ३३६३ | ३७६ | ३) रु. | ॥।) | ४ **मरुद्देवता** | ४६४ | ७२ | १) रु. | ।) |

इस प्रथम भाग का मू. ५) रु. और डा. व्य. १॥) है ।

इस में प्रत्येक देवता के मूल मन्त्र, पुनरुक्त मंत्रसूची, उपमासूची, विशेषणसूची तथा अकारानुक्रम से मंत्रोंकी अनुक्रमणिका का समावेश तो है, परंतु कभी कभी उत्तरपदसूची या निपातदेवतासूची इस भाँति अन्य भी सूचीयाँ दी गयी हैं । इन सभी सूचीयों से स्वाध्यायशील पाठकों की बडी भारी सुविधा होगी ।

संपूर्ण दैवतसंहिताके इसी भाँति तीन विभाग होनेवाले हैं और प्रत्येक विभाग का मूल्य ५) रु. तथा डा. व्य. १॥) है । पाठक ऐसे दुर्लभ ग्रन्थ का संग्रह अवश्य करें । ऐसे ग्रन्थ बारबार मुद्रित करना संभव नहीं और इतने सस्ते मूल्य में भी ये ग्रन्थ देना असंभव ही है ।

# वेदकी संहिताएं ।

वेद की चार संहिताओंका मूल्य यह है-

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १ **ऋग्वेद** (द्वितीय संस्करण) | ५) डा० व्य० १।) | ३ **सामवेद** | ३) डा० व्य० ॥।) |
| २ **यजुर्वेद** | २) ,, ,, ॥) | ४ **अथर्ववेद** ( द्वितीय संस्करण) | ५) ,, ,, १) |

इन चारों संहिताओंका मूल्य १५) रु. और डा. व्य. ३) है अर्थात् कुल मूल्य १८) रु. है । परन्तु पेशगी म० आ० से सहूलियतका मू० १०) रु० है, तथा डा० व्यय ३) रु० है । इसलिए डाकसे मंगानेवाले १३) तेरह रु० पेशगी भेजें ।

यजुर्वेद की निम्नलिखित चारों संहिताओं का मूल्य यह है- ।

| | | | |
|---|---|---|---|
| १ **काण्व संहिता** (तैयार है) | ३) डा० व्य० ॥।) | ३ **काठक संहिता** (तैयार है) | ५) डा० व्य० १) |
| २ **तैत्तिरीय संहिता** | ५) ,, ,, १) | ४ **मैत्रायणी संहिता** ,, | ५) ,, ,, १) |

वेदकी इन चारों संहिताओं का मूल्य १८) है, डा. व्य. ३॥।) है अर्थात् २१॥।) डा. व्य. समेत है । परंतु जो ग्राहक पेशगी मूल्य भेजकर ग्राहक बनेंगे, उनको ये चारों संहिताएं १८) रु० में दी जायंगीं । डाकव्यय माफ होगा ।

**- मंत्री, स्वाध्याय-मण्डल, औंध, (जि० सातारा)**

मुद्रक और प्रकाशक- **वसंत श्रीपाद सातवळेकर, B. A.** भारतमुद्रणालय, स्वाध्याय-मंडल, औंध, (जि० सातारा.)